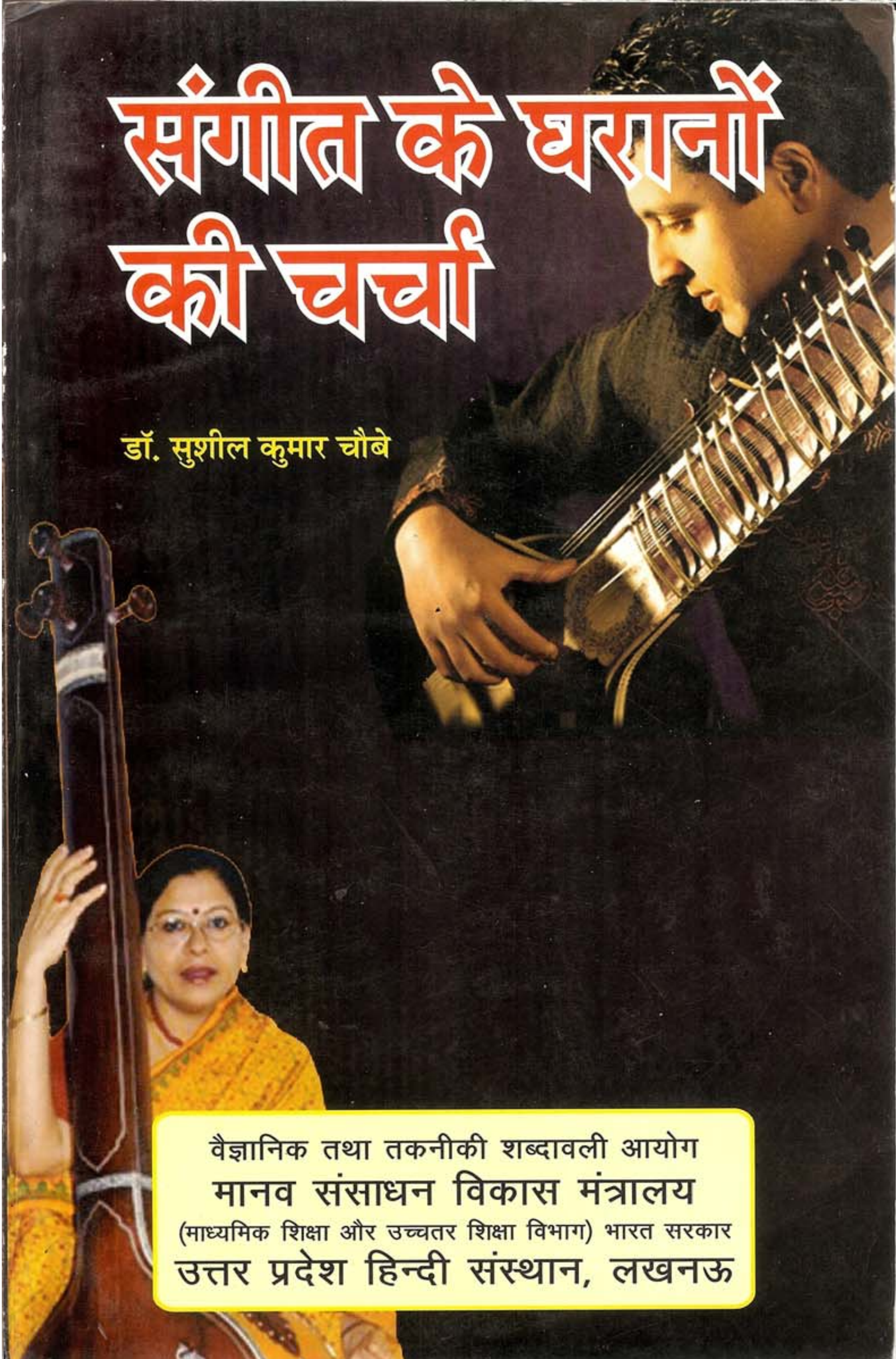
# संगीत के घरानों की चर्चा

डॉ. सुशील कुमार चौबे



वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

हि.ग्रं.अ. प्रभाग ग्रन्थांक —185

# संगीत के घरानों की चर्चा

लेखक
डॉ. सुशील कुमार चौबे
डी.लिट्.

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

प्रकाशक :

**डॉ. सुधाकर अदीब**

**निदेशक**

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय(माध्यमिक शिक्षा
और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार की
विश्वविद्यालयस्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग, उत्तर प्रदेश
हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित।



**पुनरीक्षक**

**डॉ. अजीत सिंह पैन्तल**

**संगीत विभाग,**

**दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम संस्करण | : | 1977 |
| द्वितीय संस्करण | : | 1984 |
| तृतीय संस्करण | : | 2005 |
| चतुर्थ संस्करण | : | 2014 |

प्रकाशित प्रतियाँ : 500

ISBN–978–93–82175–33–9

**मूल्य : ₹ 115=00 (एक सौ पन्द्रह मात्र)**

**मुद्रक :**

प्रकाश पैकेजर्स

257, गोलागंज, लखनऊ–226018

# प्रकाशकीय

भारतीय संस्कृति की विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धियाँ शास्त्रीय संगीत के उल्लेख के बिना पूर्ण नहीं होतीं। जहाँ तक हिन्दुस्तानी संगीत का सम्बन्ध है, उसका कोई परिचय संगीत के घरानों की विशेषताओं को जाने बिना नहीं जाना जा सकता। आधुनिक संगीत को भली भाँति समझने लिए भी घरानों की विशेषताओं को जानना अनिवार्य है। घरानों की संकल्पना केवल हिन्दुस्तानी संगीत में ही पायी जाती है इसलिए भारतीय संगीत में घरानों का अपना महत्व है।

कहा जाता है अकबर से लेकर अब तक का समय हिन्दुस्तानी संगीत का सिरमौर रहा है और यह परम्परा स्वामी हरिदास की ध्रुपद परम्परा और सदारंग व अदारंग की ख्याल परम्परा से चल कर वर्तमान ऊँचाइयों को छू रही है। ऐसा माना जाता है इस गौरवपूर्ण यात्रा में तानसेन का घराना, ग्वालियर घराना, आगरा घराना, सहारनपुर के ध्रुपद गायक बहराम खां का घराना, जयपुर घराना, खुर्जा घराना, सहसवान का घराना, अतरौली का घराना, मथुरा का घराना, फतेहपुर सीकरी और सिंकदराबाद का घराना तथा लखनऊ के ठुमरी और कथक नृत्य को समर्पित घराने विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ0 सुशील कुमार चौबे द्वारा 'संगीत के घरानों की चर्चा' पुस्तक में इन महत्वपूर्ण विषयों पर गम्भीर और विस्तृत चर्चा की गयी है।

डा0 सुशील कुमार चौबे ने 'संगीत के घरानों की चर्चा' में 15 सुप्रसिद्ध संगीत घरानों के बारे में विस्तृत जानकारी दी है, उससे विद्वान लेखक की इस विषय पर असाधारण पकड़ और प्रौढ़ता भी परिलक्षित होती है। ये अध्याय हैं– घराना, ध्रुपद की परम्परा और तानसेन का घराना, कव्वाल बच्चों का घराना और ग्वालियर घराना, आगरा घराना, सदारंग देहली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और तानरस खाँ का घराना, सहारनपुर के संगीतज्ञ और ध्रुपद– गायक बहराम खाँ का घराना, जयपुर का घराना, खुर्जा का घराना, सहसवान का घराना, मथुरा का घराना,

फतेपुर सीकरी का घराना सिकन्दरबाद का रंगीला घराना, लखनऊ की ठुमरी का घराना, लखनऊ के कथक नाच का घराना। इसका पहला संस्करण 1977 में प्रकाशित हुआ था और तब से अब तक इसकी लोकप्रियता अबाधित गति से आगे बढ़ती रही है। पुस्तक का यह चौथा संस्करण इस लोकप्रियता का स्वयं प्रमाण हैं । मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार की हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग योजना के अन्तर्गत इसका पुनर्मुद्रण करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। आशा है कि विद्वान संगीत विशेषज्ञों के बीच ही नहीं, शोध छात्रों और जागरूक पाठकों के बीच भी पुस्तक 'संगीत के घरानों की चर्चा' का चौथा संस्करण भी परम्परा के अनुरूप लोकप्रिय होगा, सराहा जायेगा।

**डॉ0 सुधाकर अदीब**

निदेशक

# निवेदन

भारतीय परम्परा में यह मान्यता है कि – नादः धीनं जगति। दर्शन हो या विज्ञान, सभी यह मानते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक लय में सक्रिय है। कालातीत, अनवरत और निरन्तर गतिशील है हमारा ब्रह्माण्ड कौन जाने, इसी की न्यूनतम इकाई के रूप में शास्त्रीय संगीत अभिव्यक्ति पाता हो क्योंकि यह एक सच्चाई है कि इसे सुनने के दौरान ऐसा लगता है मानो हम अलौकिकता से सीधा साक्षात्कार कर रहे हों। जब सामान्य श्रोता तक भावविभोर होता है, तो संगीत के जानकार लोगों की तो बात ही क्या! दुनिया में कहीं का भी संगीत हो, कई बार भावार्थ से अपरिचित श्रोता भी उसकी लयात्मकता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता। स्पष्ट है कि संगीत के विविध रूपों में चाहे जितने विभेद दिखायी दें वास्तव में अन्दर से एक ही होते हैं।

भारतीय संगीत मूलतः दो भागों में बँटा है– हिन्दुस्तानी संगीत और कर्नाटक संगीत। इसमें भी विविध घरानों के लिए हिन्दुस्तानी संगीत की ख्याति अलग ही है। संगीत के निष्णात विद्वान डॉ0 सुशील कुमार चौबे की पुस्तक 'संगीत के घरानों की चर्चा' इन्ही घरानों को समर्पित है। प्रत्येक घराने का एक संरक्षक या मार्गदर्शक होता था, जो उस घराने की शिक्षा विशेष को जीवित रखने के लिए समर्पित रहता था। हिन्दुस्तानी संगीत परम्परा में तानसेन के गुरु ब्रजवासी स्वामी हरिदास का नाम सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार, उत्तर भारतीय संगीत में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का प्रभाव सर्वोपरि माना गया है। अन्य प्रतिष्ठित घरानों में उस्ताद फैय्याद खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, रजब अली खाँ, और डागर–बन्धुओं की परम्परा के साथ–साथ पंडित ओंकार नाथ ठाकुर, कुमार गंधर्व, भीमसेन जोशी और पंडित जसराज आदि की साधनाएँ भारतीय संगीत को आज भी जीवन्त बनाये हुए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'संगीत के घरानों की चर्चा' में 15 प्रसिद्ध घरानों का इतिहास जिस तरह संजोया गया है, विवरण की जो रवानगी और

तथ्यात्मकता दिखती है, उसके लिए डॉ0 सुशील कुमार चौबे निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। आपके समक्ष उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान के इस गौरवमयी प्रकाशन का चौथा संस्करण उपलब्ध हो रहा है। यह पुस्तक की लोकप्रियता का स्वयं प्रमाण है। विश्वास है कि संगीत के अध्येयताओं के अतिरिक्त जागरूक पाठक भी इस लोकप्रिय और उपयोगी पुस्तक से लाभाविन्त होंगे।

**उदय प्रताप सिंह**
कार्यकारी अध्यक्ष

# इस पुस्तक के बारे में

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की जानकारी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उसकी मुख्य शैलियों के बारे में भी कुछ ज्ञान प्राप्त करें। शास्त्रीय संगीत के साथ लोकप्रिय संगीत की शैलियों को जानना भी एक मननशील विद्यार्थी के लिए अनिवार्य हो जाता है। इसके साथ-साथ हमें यह देखना पड़ता है कि आधुनिक संगीत में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं और वह किस दिशा की ओर जा रहा है। व्यावहारिक संगीत की क्या समस्याएँ हैं, इनका जानना भी बहुत आवश्यक हो जाता है। संगीतज्ञों का और उनके संगीत का समाज में क्या स्थान है यह भी अध्ययन का विषय बन जाता है।

परन्तु ऐसा अध्ययन हमें बाध्य करता है कि हम अपने देश के प्रमुख संगीतज्ञों तथा कलाकारों के बारे में भी कुछ जानें और उनकी कला का उचित मूल्यांकन करें। यह वह संगीतज्ञ हैं जिनसे संगीत का आनन्द उठाने वाली जनता परिचित है। इन गायकों और वादकों को हम आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न मानते हैं और उनकी कला और उनके व्यक्तित्व के बारे में पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम सदैव इच्छुक रहते हैं।

परन्तु इनमें से अधिकतर संगीतज्ञों का सम्बन्ध अपने घरानों से रहा है। यह घरानेदार गायक और वादक प्रसिद्ध घरानों से सम्बन्धित हैं। प्रस्तुत वर्णन में पन्द्रह नामी घरानों की व्याख्या की गयी है और उनकी गायकी और उनके बाज पर प्रकाश डाला गया है, यह बताते हुए कि परम्परागत संगीत क्या है और घरानेदार संगीत का घरानों से और घरानेदार संगीतज्ञों से क्या सम्बन्ध रहा है। इस पुस्तक में गायकों और वादकों की वंशावली का और उनके घरानों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है जो हर तरह से रोचक है।

हमें आशा है कि समाज का वह तरुण वर्ग जो हमारे विश्वविद्यालयों में पाया जाता है और जिसे संगीत में विशेष रुचि है, संगीत की इस तीसरी पुस्तक से बहुत लाभ उठायेगा और ऐसे तरुण छात्र अपनी संगीत की जानकारी को भी बढ़ा सकेंगे। संगीत का ज्ञान अधूरा रहता है जब तक हम अपने प्रसिद्ध गायकों और वादकों के प्रतिष्ठित घरानों के बारे कुछ न जानें।

इस कमी को देखते हुए ही इस पुस्तक की रचना की गयी है। हमें पूर्ण आशा है कि विश्वविद्यालयों के छात्रों के अतिरिक्त आम जनता भी घरानों की इस चर्चा का पूरा आनन्द उठायेगी। पुस्तक घरानों की चर्चा से सम्बन्धित है, परन्तु किसी प्रकार की गलतफहमी न हो इसलिए पुस्तक के नाम में दो शब्द "संगीत के" और जोड़ दिये गये हैं।

**- डॉ. सुशील कुमार चौबे**

# विषय-सूची

# 1

# घराना

## परम्परा और परम्परावाद

अक्सर जब कोई व्यक्ति गायकों और वादकों के घरानों की बात छेड़ देता है तो लोग इनको मनोहर कहानियों ही की श्रेणी में रखते हैं और इन पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते। लोग यह समझते हैं कि यह केवल दिलचस्प किस्में हैं और मन बहलाव ही के साधन हैं। संगीत के आम प्रेमी अथवा रसिक घरानों की बात-चीत को मनोरंजन मात्र ही समझते हैं। शिक्षित समाज में भी ऐसे विषय की ओर एक प्रकार की उदासीनता है। लोग गाना-बजाना सुनना चाहते हैं और उसका आनन्द भी उठाना चाहते हैं, परन्तु गायकों और वादकों के घरानों के बारे में उन्हें कोई रुचि नहीं होती। एक महाशय जो कलकत्ते के स्व० इनायत खाँ का सितार तो बड़े प्रेम से सुनते थे और उसे सुनकर बेचैन भी हो जाते थे परन्तु वह अपना मुँह उधर फेर लेते थे जब उनका कोई मित्र उन्हें यह बताने लगता था कि उ० इनायत खाँ के पूज्य पिता इमदाद खाँ इटावा के रहने वाले थे और वह इटावा के प्रसिद्ध सितारवादकों के घराने के थे। उनको उनके घराने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह केवल उनके सितार-वादन पर ही मोहित थे और शायद यह भी जानते थे कि उनके सितार की गतों के तिहैये बहुत मशहूर थे अथवा वह भैरवी और पीलू ऐसे राग बेजोड़ बजाते थे। इसके अलावा वह न कुछ जानते थे और न जानना चाहते थे। घरानों के बारे में माथापच्ची करना वह व्यर्थ समझते थे। वह संगीत का रस लेते थे परन्तु उसकी छानबीन

करना फिज़ूल समझते थे। और यदि वह उ० इनायत खाँ के सितार के अलावा स्व० उ० अब्दुल अजीज खाँ की विचित्र बीन का भी बहुत आनन्द लेते थे तो उनको यह जानने की आवश्यकता नहीं थी कि वह बड़ौदे के मशहूर बीनकार उ० जमालुद्दीन खाँ के शिष्य थे। अथवा वह इस बात को भी नहीं जानना आवश्यक समझते थे कि उ० जमालुद्दीन खां ग्वालियर के धुरन्धर सितार-वादक अमीर खाँ के सुपुत्र थे जिनके सामने उ० इमदाद खाँ ने अपना सितार बजाने में एक बार बहुत संकोच किया था। वह इस तरह की जानकारी को अपने आनन्द के लिए निरर्थक समझते थे। यह सुनना तो अवश्य गवारा कर सकते थे कि मशहूर सरोद-वादक स्व० हाफिज अली खाँ रामपुर के मशहूर बीनकार उ० वजीर खाँ के शिष्य थे परन्तु यह जानना वह जरूरी नहीं समझते थे कि वह सरोद वादन के अन्वेषक काबुल के गुलाम अली खाँ के वंशज थे। न वह यह जानना चाहते थे कि ग्वालियर के मशहूर गायक कृष्णराव पंडित ग्वालियर के स्व० शंकर पंडित के सुपुत्र हैं जो हद्दू-हस्सू खाँ की शिष्य-परम्परा में थे।

इन महाशय ऐसे सैंकड़ों लोग हमें मिलेंगे जो गायकों और वादकों के घरानों के बारे में कुछ नहीं जानना चाहते। ऐसे बहुत से लोग संगीत का पूरा आनन्द लेते हैं और उसको सुनकर उनके कान भी तृप्त हो जाते हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे भी होते हैं जो घंटों गाना बजाना सुन सकते हैं और वह कुछ प्रसिद्ध गायकों अथवा वादकों को पहचानते भी हैं और शायद उनके पास उनके चित्र भी होते हैं। परन्तु वह यह नहीं जानते कि यह मशहूर संगीतज्ञ किन नामी घरानों के वंशज हैं और इन घरानों की क्या विशेषतायें थीं और अब तक हैं। ऐसे रसिक और सुरीले कान वाले श्रोतागण सैंकड़ों की तादाद में हैं, परन्तु वह कुछ विशेष लोकप्रिय गायको और वादकों का संगीत ही सुनते हैं। परन्तु उनके बारे में वह जानते कुछ नहीं। ऐसा होना स्वाभाविक ही समझा जाता है। इनमें से एक आध ऐसा व्यक्ति यह भी कह बैठता है कि "आम खाने से मतलब, पेड़ गिनने से क्या फायदा ?" यह एक ऐसा अचूक तर्क होता है जिसके उत्तर में कुछ नहीं कहा जा सकता। क्या किसी श्रोता को इस बात का अधिकार नहीं होता है कि वह स्वतंत्र रूप से और अपने ही ढंग से संगीत का आनन्द उठाये और अपनी आत्मा को सुख पहुँचाये ? हम ज्ञान अथवा जानकारी अथवा सामान्य ज्ञान का प्रतिबन्ध उसके आनन्द पर क्यो लगायें ? ऐसा कहना किसी हद तक सच भी है। एक मनमौजी कनरसिया संगीत को आनन्द और लोकप्रियता की कसौटी ही पर

कसता है। वह संगीत का स्वाद लेता है परन्तु उसका इतिहास नहीं जानना चाहता।

यहाँ तक तो हमें इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि आमतौर से संगीत के श्रोता उसका आनन्द लेते हैं परन्तु उस पर वाद-विवाद कभी नहीं करते। परन्तु जब हम संगीत सीखने वालों और उसका मनन करने वालों में भी घरानों के प्रति ऐसी उदासीनता की भावना देखते हैं तो हमें आश्चर्य होता है। ऐसी दशा में इस प्रकार का अज्ञान अनुचित माना जायेगा। संगीत का कोई भी मननशील और सहृदय विद्यार्थी अपने को ऐसी जानकारी से वंचित नहीं कर सकता। ऐसा करने से वह संगीत के उचित ज्ञान की उपेक्षा ही करता है और उसकी अपनी जानकारी अधूरी रहती है। हम श्रोतागण को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहले तो वह हैं जो केवल संगीत का रस चखते हैं और उसे अपने मन बहलाव का विशेष साधन समझते हैं। परन्तु हम यहाँ उनका वर्णन नहीं कर रहे हैं जो फिल्मी संगीत और हलके-फुलके गाने ही सुनते हैं। हमारा मतलब उन श्रोताओं से है जो शास्त्रीय संगीत ही अधिकतर सुनते हैं। इनमें से बहुत से ऐसे भी हैं जो घरानों के बारे में कुछ नहीं जानना चाहते और ऐसी बातचीत को ठलुओं की निरी बकवास समझते हैं। इनमें से बहुत से सज्जन शिक्षित भी होते हैं और जिनमें अनुसंधान की प्रवृत्ति भी होती है। बहुत से ऐसे लोगों को भी कभी-कभी घरानों में कोई रुचि नहीं होती। वह संगीत की कला, उसकी शास्त्रीय पृष्ठभूमि, उसकी व्याकरण और उसकी तकनीक की ओर तो अपना ध्यान अवश्य देते हैं परन्तु गायकों और वादकों के मशहूर घरानों की ओर कोई ध्यान नहीं देते और उनके प्रति एक तरह से उदासीन ही रहते हैं। हम ऐसे किसी व्यक्ति की संगीत-साधना पर आक्षेप नहीं कर सकते और न उसकी योग्यता अथवा कुशलता ही पर कोई टिप्पणी कर सकते हैं। उसकी मनन-शीलता में कोई कमी नहीं होती और न हम उसकी कर्तव्यनिष्ठा पर अपनी उँगली उठा सकते हैं। परन्तु ऐसा व्यक्ति घरानों के अध्ययन को अपने संगीत-ज्ञान के लिए आवश्यक नहीं समझता। यह बताना शायद असम्भव है कि इस उदासीनता का क्या विशेष कारण है। हम केवल थोड़ा बहुत अनुमान ही लगा सकते हैं। सोच-विचार करने के बाद हम इस नतीजे पर अवश्य पहुँचते हैं कि संगीत के क्षेत्र में हमारी आधुनिक विचारधारा का भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ उत्तरदायित्व है। तो इसका क्या अर्थ है ? हम इसे समझने का प्रयत्न करेंगे।

सबसे पहले हमें इस बात को ध्यान में रखना पड़ेगा कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का दृष्टिकोण ही अब बहुत कुछ बदल गया है। साठ-सत्तर वर्ष पहले जो हिन्दुस्तानी संगीत की विचारधारा थी अब उसका वह रूप नहीं है। घरानेदार गायकों और वादकों की जगह अब शिक्षित कलाकारों और संगीत के शिक्षको ने बहुत कुछ ले ली है। आधुनिक संगीत-शिक्षा का भी बहुत कुछ सम्बन्ध आधुनिक संगीत प्रचार से हो रहा है। इस बात को समझ लेना भी जरूरी है कि आधुनिक युग में संगीत के व्यापक प्रचार का एक विशेष उद्देश्य यह भी रहा है कि संगीत को घरानेदार संगीत के एकाधिकार संगठन और उसके निरपेक्ष एकाधिकार से पूर्ण रूप से मुक्त किया जाये और इसके साथ-साथ घरानों के एकाधिकार नियंत्रण का भी अन्त किया जाये। आम जनता में संगीत का अधिक से अधिक प्रचार तभी हो सकता है जब घरानेदार संगीत के एकाधिपत्य का अन्त किया जाये। संगीत-प्रचारकों का यह मत था कि वह हिन्दुस्तानी संगीत को परम्परागत, घराने-दार संगीत के बन्धनों से छुटकारा दें। यह तभी हो सकता है जब घरानों की सत्ता अथवा उनके अधिकार की उपेक्षा की जाये और संगीत-प्रचार और संगीत-शिक्षा के नए साधनों का आविष्कार किया जाये तथा उनकी नई-नई खोज की जाय। इसलिए परम्परावाद का सबसे पहले बहिष्कार करना अनिवार्य था और शास्त्रीय संगीत की पारम्परिक नीति की अवहेलना करना भी आवश्यक था। तो संगीत की आधुनिक अथवा नवीन शिक्षा-पद्धति को भी आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होना स्वाभाविक हो गया। प्रचार और शिक्षा के नये साधनों की खोज करने से प्राचीन साधनों का बहिष्कार भी आवश्यक हो गया। संगीत-प्रचारकों ने आधुनिक साधनों का सदुपयोग करने में कोई कसर न छोड़ी; उनका लक्ष्य वही था कि आम जनता में शीघ्राति-शीघ्र संगीत का अधिक से अधिक प्रचार हो और संगीत को अधिक सरल भी बनाया जाये। जनता शास्त्रीय संगीत को तभी अपना सकती थी और उसे आसानी से सीख सकती थी जब उसका बहुत बड़े पैमाने पर सरलीकरण किया जाये। आम जनता भी उसे हज्म कर सकती थी जब वह सुगम और सरल बनाया जाये। इसलिए "सरल संगीत की कुंजी" ऐसी पुस्तकें बाजार में सस्ते दामों में बिकने लगीं।

इसका मतलब यह भी था कि जब तक शास्त्रीय संगीत अपनी गरिमा अथवा अपने गौरव का थोड़ा-बहुत परित्याग नहीं करेगा और अपने को सुगम और सरल नहीं बना सकेगा, आम जनता उसे नहीं अपनायेगी। इसका तो

यह भी अर्थ था कि आम जनता अब उसके भेदों को जान सकती है और उसे आसानी से सीख भी सकती है। अर्थात् संगीत किसी का एकाधिकार नहीं है और न वह किसी की बपौती है। उसे सब सीख सकते हैं और इसलिए यह आवश्यक था कि संगीत के प्रचारक और शिक्षक सीखने के नये-नये साधन उपलब्ध करें। ऐसा कहने में लोगों ने कोई संकोच नहीं किया। हारमोनियम और स्वरलिपि ऐसे साधनों ने इस महान कार्य में अपना हाथ बँटाया और आम जनता के लिए हिन्दुस्तानी संगीत सरल बनाया गया। आम जनता में भी यह भावना फैल गयी कि वह राग-रागिनियों का पूरा आनन्द ले सकती है। लोग यह सोचने लगे कि आधुनिक संगीत-शिक्षा के माध्यम से अब वह शास्त्रीय संगीत का अधिक से अधिक आनन्द ले सकते हैं। संगीत की नई शिक्षा ही उन्हें यह आत्मविश्वास दे सकती थी। परन्तु इसके साथ-साथ लोग एक और विचार के वश में भी हो गये। जिस मत के अनुसार शास्त्रीय संगीत सीखने में और उसका आनन्द लेने में घरानेदार संगीत की उपेक्षा आसानी से की जा सकती थी उसमें एक और विचार का भी साहचर्य था। वह विचार यह था कि घरानेदार संगीतज्ञ "अशिक्षित" और "असभ्य" थे और इसलिए संगीत के मामले में उनकी जानकारी अधूरी ही नहीं थी परन्तु वह लोगों को बहुत कुछ पथभ्रष्ट भी करते थे। तो जब घरानेदार गायकों और वादकों की उपेक्षा की जा सकती थी तो संगीत के क्षेत्र में घरानों का क्या मूल्य हो सकता था? आधुनिक संगीत-शिक्षा की श्रेष्ठता अथवा महानता इसी बात में थी कि वह घरानेदार संगीत और घरानों की उपेक्षा करके ही अपने अधिकार को स्थापित करे। यथार्थ में वह घरानों की सबसे बड़ी प्रतिक्रिया थी और उस संगीत का विरोध करके ही वह अपनी उपयोगिता का प्रचार कर सकती थी और आम जनता के हृदय में अपना घर बना सकती थी।

परंतु इस सिद्धांत के विरोध में जिन सगीतज्ञों अथवा शिक्षकों ने घरानों और घरानेदार संगीत की उपेक्षा नहीं की उन्होंने पुरानी "तालीम" की विशेषताओं से अधिक लाभ उठाया और उन्होंने परंपरागत संगीत का पूर्ण बहिष्कार नहीं किया। संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने बड़ी समझ से काम लिया और संतुलन के सिद्धान्त का पालन किया। इनके साथ वह लोग भी थे जिन्होंने तालीम के नियमों से पूरा-पूरा फायदा उठाया और सीखने और सिखाने में घरानेदार संगीत ही को सबसे पहला स्थान दिया। परन्तु ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम थी। आम जनता संगीत की नयी और वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा ही का पालन करने लगी और स्वरलिपि को संगीत-

प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत के प्रति एक तरह की पुनीत भावना है। उसी के द्वारा हमें प्राचीन संगीत का सच्चा दर्शन हो सकता है। इस कला का यथार्थ मूल्य जानने के लिए परम्परावाद का सहारा लेना अनिवार्य है। कला के अतीत को भुलाने से हम उसकी सार्थकता को नहीं समझ सकते। वृक्ष की मजबूत जड़ों ही पर वृक्ष खड़ा रह सकता है। और जिस मिट्टी में एक पौधा अथवा वृक्ष उगता है वह उसके पुष्पों और फलों के सौंदर्य और उनकी मिठास को भी निर्धारित करती है। क्या हम संगीत की अमर आत्मा को संगीत की परंपरा के बिना पहचान सकते हैं। इसीलिए बिना परम्परावाद की सहायता के हम परम्परागत हिन्दुस्तानी संगीत का भी ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकते।

जिस हिन्दुस्तानी संगीत की हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं वह एक प्राचीन कला रही है जिसको कई सदियों ने सजाया और सँवारा है। हम उसके परंपरागत रूप को न जाने हुए उसके बारे में कोई सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते और न उसकी आत्मा को ही पहचान सकते हैं। सदियों पुराना व्यावहारिक संगीत अपनी परंपरा से अलग नहीं किया जा सकता और न हम उसके परंपरागत शाश्वत मूल्यों ही का परित्याग कर सकते हैं। परम्परा तो उसकी रग-रग में समाई हुई है और वह उसकी अदृश्य आत्मा है। पूछा जा सकता है कि क्या हम ध्रुपद और ख्याल ऐसी प्राचीन शैलियों को बिना परंपरा की पृष्ठभूमि जाने हुए ठीक-ठीक जान सकते हैं। उनका ऐतिहासिक और परंपरागत विकास जानना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में परंपरागत संगीत का क्या विशेष प्रभाव इन शैलियों पर पड़ा है, इसे भी हम तभी जान सकते हैं जब हम इनकी परम्परा के ऐतिहासिक क्रम को भी ठीक-ठीक समझें। सदारंग और अदारंग की ख्याल-परंपरा को ठीक-ठीक जानकर ही हम ख्याल ऐसी शैली की विलक्षण विविधता का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इससे संबन्धित जो मशहूर ख्याल-गायकों का संगीत रहा है उसका और परंपरा का भी चोली-दामन का साथ रहा है।

इसी तरह बिना तानसेन परम्परा को जाने हुए हम ध्रुपद ऐसी प्राचीन शैली के आधुनिक अनुवाद को ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। बासत खाँ, प्यार खाँ और जाफर खाँ की परम्परा के अन्तर्गत बीन, रबाब, सुरसिंगार, सरोद और सितार की जिन घरानेदार शैलियों का विकास हुआ था वे व्यावहारिक संगीत की परम्परा ही से संबन्धित थीं। सादिक अली

सच तो यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत ऐसी जीती-जागती कला में परंपरा का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यह भी सच है कि बिना संगीत की परंपरा को ध्यान में रखे हुए हम हिन्दुस्तानी संगीत की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह बात नहीं है कि इसमें नये प्रयोगों और आविष्कारों की गुंजाइश नहीं है। यह तो इसमें सदैव होते चले आये हैं। परन्तु यह सब प्राचीन, परंपरागत संगीत की सीमाओं के अन्दर ही थे और उन्होंने संगीत की मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं किया और न प्राचीन सिद्धान्तों की अवहेलना ही की। किसी ऐसे नये आविष्कार ने संगीत के असली चेहरे को नहीं बिगाड़ा और न उसके विकृत रूप को हमारे सामने रखा। परंपरागत संगीत की मर्यादा को भंग करके किसी आविष्कार का जन्म नहीं किया गया। आधुनिक संगीत में जो प्रयोगवाद की तेज लहर चली है उसके सहारे प्रगतिवाद कई दिशाओं में बेथकान बहने लगा है। आविष्कारों की धुन में नये-नये रागों का और उनके अद्‌भुत प्रकारों का आविष्कार किया जा रहा है जिन्हें आम जनता का कुतूहल ही अनुमोदन दे सकता है। ऐसी दशा में केवल एक प्रश्न पूछा जा सकता है। क्या हमने अपने शास्त्रीय संगीत के सारे रागों को खँगाल डाला है? और क्या हम उनका सच्चा अनुवाद अपने व्यावहारिक संगीत में अब तक कर पाये हैं? तो क्या हम इन नये प्रयोगों और नये आविष्कारों को भी संगीत की नई प्रगति के नाम से पुकारें? और क्या हम आधुनिक संगीत-शिक्षा के माध्यम से जो संगीत-प्रचार हो रहा है उसे भी पुनर्जागरण के नाम से पुकारें? क्या यह संगीत जो परंपरागत और घरानेदार संगीत की उपेक्षा करता है हमारे संगीत की कला की पैतृक सम्पत्ति माना जा सकता है? परंपरागत हिन्दुस्तानी संगीत की अवहेलना करके क्या हम किसी नये हिन्दुस्तानी संगीत का निर्माण कर सकते हैं। अथवा क्या हम संगीत में परम्परा की उपेक्षा कर सकते हैं? क्या परम्परावाद संगीत के पुनर्जागरण का सहायक नहीं रहा है? क्या वह हिन्दुस्तानी संगीत को सदैव प्रोत्साहित नहीं करता रहा है। क्या हम संगीत की प्राचीन परंपरा को बिना ध्यान में रखे हुए हिन्दुस्तानी संगीत की कल्पना कर सकते हैं? इन प्रश्नों का सही उत्तर हम अपने आप दे सकते हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत की परंपरागत व्याख्या परंपरा ही के माध्यम से होती है। संगीत की आत्मा और उसके पुनीत संस्कार भी इसी परम्परा के अंतर्गत हैं। वह उसमें अन्तर्निहित हैं। संगीत की परम्परा में उसकी अमर आत्मा छिपी है। परंपरावाद इसी परंपरागत का एक सुन्दर प्रतीक है। वह

शिक्षा का सबसे बड़ा हथियार मानने लगी। संगीत की इस आधुनिक विचारधारा का सही विश्लेषण करके हमें दो एक और बातों का भी ज्ञान होता है और हम आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की प्रबल प्रवृत्तियों को और अच्छी तरह से समझ पाते हैं। पहली बात तो यह है कि आधुनिक संगीत प्रचार में परम्परावाद का जबरदस्त विरोध है। इस तथ्य की सार्थकता को समझना हमारे लिए बहुत आवश्यक है। प्रश्न उठता है कि किसी जीती-जागती कला का परम्परा और परम्परावाद से क्या विशेष संबन्ध होता है। अथवा आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का प्राचीन, घरानेदार हिन्दुस्तानी संगीत से क्या संबन्ध है। तो पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि हिन्दुस्तानी संगीत में परम्परा और परंपरावाद का क्या विशेष स्थान है। क्या संगीत में परम्परा कोई विशेष मूल्य रखती है ?

इसके उत्तर में हम एक ही वाक्य में यह कहेंगे कि संगीत की परम्परा ही में संगीत के उत्तम संस्कार छिपे होते हैं। प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत के संस्कार हमें जहाँ जहाँ सुरक्षित दिखाई देते हैं वहाँ परम्परा ही उन्हें सुरक्षित रखती है और उन्हें प्रकाशित करती है। प्रगतिशील कला के कुछ आधुनिक समर्थक और उसकी व्याख्या करने वाले परम्परा और परम्परावाद का विरोध करते हैं और बहुधा उनका मिथ्यानिरूपण भी करते हैं और कभी-कभी संगीत के क्षेत्र में उनकी तुलना वह अंधविश्वास से करते हैं। परन्तु हम हिन्दुस्तानी संगीत को ऐसी आधुनिक विचारधारा के तराजू पर नहीं तौलेंगे, परन्तु भारतीय संस्कृति के संदर्भ में ही उसका सही मूल्यांकन करने का प्रयत्न करेंगे। ऐसा मूल्यांकन परंपरा और परंपरावाद की उपेक्षा किसी कीमत पर नहीं कर सकता। जहाँ तक हिन्दुस्तानी संगीत का संबन्ध है हम परंपरा का परित्याग नहीं कर सके। कला के आधुनिक सिद्धान्तों के मानने वाले और उनके स्वतन्त्र और साहसी समर्थक उसकी क्रान्तिकारी प्रगतिशीलता पर तो बल देते हैं परन्तु उसके प्राचीन रूप को पूर्ण मान्यता देने से इंकार करते हैं। प्रगति की दुहाई देकर वह परम्परा को भी नहीं मानते। पाश्चात्य कला-संबन्धी विचारों के अधीन होकर और उनसे बहुत अनुचित ढंग से प्रभावित होकर वह जिसे हम परंपरावाद कहते हैं उसका पूर्ण विरोध करते हैं। वह कला (संगीत) के नये प्रयोगों और आविष्कारों ही का समर्थन करते हैं और प्राचीन संगीत को एक पिछड़ा हुआ संगीत ही मानते हैं। वह उसे रूढ़ि अथवा प्रथा ही का गुलाम समझते हैं और इस तरह परंपरावाद का उपहास भी करते हैं।

खाँ, मुहम्मद अली खाँ, निर्मल शाह, बहादुर हुसैन खाँ, अमीर खाँ और वजीर खाँ इसी सैनिया परम्परा के प्रमुख संगीतज्ञ थे और इसी परम्परा के अधीन थे। इनके संगीत का सही मूल्यांकन हम इसी परम्परा के अन्तर्गत कर सकते हैं। इसी तरह अमृत सेन, रहीम सेन और निहाल सेन के सितार-वादन का सही मूल्यांकन भी हम उनकी विशेष परंपरा के सहारे ही कर सकते हैं। संगीत के जिन विशेष मूल्यों को हम ध्यान में रखते हैं उनका विशेष संबन्ध परंपरागत संगीत ही से होता है। परंपरागत संगीत का अर्थ ही है परंपरा से संबन्धित संगीत अथवा वह संगीत जिस पर संगीत की परंपरा की छाप पड़ी है।

यही कारण है कि परम्परावाद का इतना घनिष्ठ संबन्ध हिन्दुस्तानी संगीत से रहा है। परम्परावाद पिछड़ापन अथवा पूर्वगामिता के नाम से नहीं पुकारा जा सकता और न उसे हम उन्नति अथवा प्रगति की प्रतिक्रिया ही कह सकते हैं। प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत को हम परम्परागत संगीत ही मानेंगे। यदि हम उसका सही ऐतिहासिक मूल्यांकन करना चाहते हैं तो हम परम्परावाद का परित्याग कभी नहीं कर सकते। हम इस परंपरागत संगीत को कला के नये-नये आधुनिक सिद्धान्तों में तराजू पर नहीं तौल सकते और न हम अपने संगीत का कोई अभारतीय मूल्यांकन ही कर सकते हैं। इसके साथ-साथ हम उसे कला के सारे आधुनिक मतों और आदर्शों के अधीन भी नहीं कर सकते। हमें उसकी भारतीय आत्मा का मूल्यांकन अपने ही ढंग से करना है। इस बात में परम्परावाद ही हमारा सहायक बन सकता है। जिस हिन्दुस्तानी संगीत का घरानेदार परम्परा से इतना गहरा संबन्ध रहा है वह परम्परा से अलग नहीं किया जा सकता। न तो परम्परावाद किसी मिथ्या निरूपण को जन्म देता है और न वह किसी अंधविश्वास ही का पोषक है। वह तो ऐसी सूक्ष्म दृष्टि है जिससे हम संगीत की परम्परा और उसके अतीत की तह में पहुँच जाते हैं और अपने प्राचीन संगीत की आत्मा को एक बार पहचान लेते हैं। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की ऐतिहासिक समीक्षा तभी ठीक ढंग से हो सकती है जब हम परम्परावाद का उचित प्रयोग करके उसकी जीती-जागती परम्परा को जानें और फिर से पहचानें। इस संगीत के अध्ययन में हम तभी सूक्ष्मदर्शी बन सकते हैं जब हम उसकी परम्परा में उसके संस्कारों की खोज करें। यह दृष्टिकोण भारतीय दृष्टिकोण है। जिस हिन्दुस्तानी संगीत की चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं वह हर तरफ से अपनी परम्परा से संबन्धित है और उसकी रगों में सदियों के व्यावहारिक संगीत

का खून दौड़ता है। इसलिए उसकी पुरंपरागत पृष्ठभूमि की अवहेलना हम कभी नहीं कर सकते।

## घरानेदार संगीत

इतना सब कहने के बाद हमें यह भी जानना चाहिए कि "घरानेदार संगीत" हम किसे कहते हैं और इस वाक्यांश का क्या असली अर्थ है। इसके साथ-साथ हमें यह भी जान लेना चाहिए कि घरानेदार गायक अथवा वादक हम किन्हें मानते हैं। संगीत ऐसे विषय पर बातचीत सुनकर कभी-कभी हमें ऐसे वाक्य भी सुनाई पड़ते हैं जैसे "यह प्रथम श्रेणी के गायक हैं और इनका घराना बड़ा ऊँचा और नामी घराना है" अथवा "यह बड़े ऊँचे तंत्रकार हैं। इनके सुरबहार पर सेनिया बाज बजता है क्योंकि यह सेनियों की शिष्य-परंपरा में है।" अथवा "यह बड़े नामी पखावजिये हैं और कुदऊ सिंह की शिष्य-परंपरा में हैं।" जब कभी हम ऐसे प्रशंसात्मक वाक्य सुनते हैं तो उनका संकेत घरानेदार संगीत ही की ओर होता है। तानसेन के युग से लेकर अब तक इसी घरानेदार संगीत का विकास हुआ है जिसका बड़ा गहरा संबन्ध हमारे संगीत की परम्परा से रहा है। कुछ प्रगतिशील तरुण कलाकारों को छोड़ कर जिनके बड़े-बूढ़ों अथवा बुजुर्गों ने ही घरानेदार संगीतज्ञों से संगीत की शिक्षा पाई थी हिन्दुस्तानी संगीत के क्षेत्र में अधिकांश सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ ऐसे हैं जो परम्परावादी हैं और जो समझ-बूझ कर ही परम्परावाद का समर्थन करते हैं। ऐसे संगीतज्ञ आधुनिक प्रयोगवाद की अव्यवस्था अथवा अराजकता का विरोध करते हैं। आधुनिकीकरण की इस प्रबल और घातक प्रवृत्ति को वह अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता का ही रूप मानते हैं और उसकी निन्दा करते हैं। इसमें उनके द्वेष की भावना नहीं होती परंतु प्राचीन परम्परागत हिन्दुस्तानी संगीत की प्रतिष्ठा के प्रति उचित सम्मान का भाव होता है। इस प्रकार की श्रद्धा अथवा ऐसा समादर विवेकहीन नहीं माना जा सकता, परंतु वह एक तरह से आधुनिक प्रयोगवाद की आलोचना ही है। परम्परावाद प्रगति का विरोध नहीं करता परन्तु उसको उचित प्रोत्साहन ही देता है। प्राचीन संगीत के पुनर्जागरण और उसकी सच्ची जागृति को प्रोत्साहित करने वाली शक्ति इस तरह का संतुलित परम्परावाद ही बन सकता है। संगीत की प्राचीन परम्परा की जगह हम किसी नई, आधुनिक परम्परा को स्थापित करने में असमर्थ हैं। यदि आधुनिकीकरण की सनक अपनी सीमा को लाँघ रही है तो संगीतज्ञों को उस पर कड़ा

प्रतिबन्ध लगाना पड़ेगा। इसलिए हम किसी दशा में भी परम्परावाद का विरोध और तिरस्कार नहीं कर सकते।

इसका एक विशेष कारण यह है कि जब तक संगीत के पुनर्जागरण का महान कार्य पूरा नहीं हो जाता तब तक हम अवांछनीय प्रयोगों के गुलाम बनने का अधिकार नहीं रखते और न नये नये आविष्कारों की अनुशासन-हीनता का ही समर्थन कर सकते हैं। अपने प्राचीन और परम्परागत संगीत की प्रतिष्ठित परम्परा की उपेक्षा करके हम घरानेदार संगीत का न तो सम्मान कर सकते हैं और न उसकी जागृति में हाथ बटा सकते हैं। यदि घरानेदार संगीत हमारे प्राचीन और अमर संगीत की अमूल्य निधि है तो उसको सुरक्षित रखना हमारा धर्म है। यह तो एक ऐसा संचित धन है जिसे हमें सेंत कर रखना है। घरानेदार संगीत हमारी पूँजी है जिसकी सहायता से हमारे संगीत की दौलत दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती जा सकती है। "पिछली ताहि बिसार दे आगे की सुध ले" वाली कहावत हमारे आधुनिक संगीत पर लागू नहीं हो सकती। यदि हम अपने पिछले संगीत की याद भूल जायें और उसकी प्रतिष्ठित परम्परा से अपने को बिल्कुल अलग कर लें, तो हम उसकी अनमोल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी कभी नहीं बन सकते। घरानेदार संगीत हमारे संगीत की नींव है जिसके आधार पर वह अब तक खड़ा है। वही उसके जीवन को प्रोत्साहित करता है और उसे जीवित रखता है। यदि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को इस घरानेदार संगीत का सहारा न मिलता और न उसको कोई प्रोत्साहन ही मिलता तो वह सचमुच निर्जीव अथवा बेजान बन जाता। घरानेदार संगीत ही ने इस संगीत में प्राण फूँका है और उसे जीवन प्रदान किया है। उसी ने इसे सजीव बना कर रखा है। जो कुछ भी गतिशील जीवन हमारे संगीत में अब तक है उसका पोषक हमारा परंपरागत, घरानेदार संगीत ही रहा है। बगैर उसके न इसमें जान होती और न कोई स्फूर्ति होती। जहाँ तक आधुनिक संगीत पर घरानेदार संगीत की अमिट छाप पड़ी है वहाँ तक वह प्रामाणिक माना जाता है। उसकी प्रामाणिकता इसी बात में है कि वह घरानेदार गायकों और वादकों के संगीत का सही अनुवाद है। जहाँ तक यह अनुवाद अथवा भाषान्तर प्रामाणिक है वहाँ तक वह प्रतिष्ठित माना जाता है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की प्रतिष्ठा का आधार भी यही है।

घरानेदार संगीत को हम "टकसाली" ऐसे विशेषण से भी सुशोभित करते हैं। जिस संगीत को हम टकसाली कहते हैं वह सच्चा और प्रामाणिक

घरानेदार संगीत ही होता है। संगीत की टकसाल हम उस घरानेदार संगीत को कहते हैं जिसके सिक्के सच्चे होते हैं, और जाली कभी नहीं होते। संगीत के बाजार में उनका सच्चा मूल्य होता है। ऐसे संगीत के राग सच्चे होते हैं और शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत होते हैं। इस संगीत की बंदिशें भी प्रतिष्ठित और बेजोड़ होती हैं और सब संगीतज्ञ उनका सम्मान करते हैं। इस संगीत की शैलियाँ भी गायकी और बाज के उच्चतम आदर्शों का पालन करती हैं और हर तरह से बेजोड़ होती हैं। उनका ठीक-ठीक अनुवाद करके ही और शैलियों का विकास होता है। सच तो यह है कि घरानेदार संगीत को हम "टकसाली संगीत" ही मानेंगे और उसको पूरी मान्यता देंगे। यदि प्रतिष्ठित, घरानेदार संगीत ही संगीत की टकसाल माना जाता है तो उसकी प्रामाणिकता पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उसके आधिपत्य को सारे संगीतज्ञ, गायक तथा वादक मान्यता देते हैं और उसकी सत्ता अथवा उसके अधिकार का विरोध कोई भी संगीतज्ञ, चाहे वह कोई भी हो, नहीं कर सकता। तो इस घरानेदार संगीत का वही अधिकार है और उसका वही गौरव है जो विज्ञान और साहित्य की किसी प्रतिष्ठित अकादमी का होता है चाहे वह इंगलैंड की हो अथवा फ्रांस की अथवा अमेरिका की। इस देश में सामूहिक रूप से घरानेदार संगीत ही को एक प्रतिष्ठित अकादमी का पद और गौरव मिला है। धुरन्धर गायक ही गायन शैली अथवा गायकी की आलोचना कर सकते थे और उन्हीं के फैसलों को अधिकारपूर्ण अथवा प्रामाणिक माना जाता था। ऐसा निर्णय सब को मानना पड़ता था। आधुनिक काल में जो मान्यता सरकार की ओर से कलाकारों और संगीतज्ञों को दी जाती है उसकी तुलना हम ऐसे विद्वानों के अनुमोदन से नहीं कर सकते और न उसकी प्रतिष्ठा ही इस ढंग की होती है। संगीत के विद्वान संगीतज्ञ जिस फैसले को पहले करते थे वह संगीत का अंतिम फैसला ही माना जाता था और उसे संगीत-संसार वेदवाक्य के समान मानता था। आम जनता भी उस पर कोई आक्षेप नहीं कर सकती थी। प्रामाणिक, घरानेदार संगीत पर कोई उँगली नहीं उठा सकता था। यही उसकी प्रतिष्ठा का मुख्य कारण था।

घरानेदार संगीत परम्परागत संगीत है। जो संगीत परम्परा की उपेक्षा करता है अथवा उसके प्रभाव से वंचित रहता है उसे हम बहुत हद तक प्रामाणिक सगीत मानने को तैयार नहीं होते। संगीत अपनी प्राचीन परम्परा को त्याग करके प्रामाणिक नहीं बन सकता। यह बात विशेष रूप

से हिन्दुस्तानी संगीत पर लागू है। इसीलिए हमने यहाँ घरानेदार संगीत की बात छेड़ी है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की पृष्ठभूमि जानने के लिए घरानेदार संगीत की जानकारी अनिवार्य है। बिना उसको जाने हम उसकी प्रामाणिकता को और उसकी सच्ची आत्मा को नहीं जान सकते। घरानेदार संगीत आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का अपेक्षाधिक तत्व नहीं है परन्तु उसका अनिवार्य अंग है। इस सारगर्भित तथ्य को समझना हमारा कर्तव्य है। ऐसा किये बिना हम शास्त्रीय संगीत का सच्चा मूल्यांकन नहीं कर सकते। घरानेदार संगीत की प्रतिष्ठा ही के कारण घरानेदार गायकों और वादकों का इतना सम्मान होता है। परंतु हम यहाँ उन्हीं घरानेदार संगीतज्ञों की ओर संकेत कर रहे हैं जो ऊँचे परम्परागत संगीत से संबन्धित होते हैं।

परंतु इस सम्बन्ध में एक और बात कहना बहुत आवश्यक है। व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में घरानेदार गायकों और वादकों को जो सम्मान मिलता है वह और संगीत को आसानी से नहीं मिलता। उनकी अपेक्षा वह संगीतज्ञ जो घरानेदार गायक अथवा वादक नहीं होते प्रायः इतना आदर नहीं पाते। इसलिए घरानेदार कलाकारों को जैसा आदर मिलता है और जिस ढंग से वह सम्मानित किये जाते हैं वैसी प्रतिष्ठा और संगीतज्ञों को आमतौर से नहीं मिलती। ऐसे ही ऊँचे संगीतज्ञों और कलाकारों को संगीत के क्षेत्र में हम हर तरह से सम्मानित करते हैं और कभी भी शिक्षा के अभाव का आरोप उन पर नहीं लगाते। वह संगीत की असली संस्कृति उसके साहित्य. उसकी उच्चतम कलात्मक व्याख्या के मर्मज्ञ और विशेषज्ञ होते हैं। ऐसे संगीतज्ञों को ऐसा कौन मूर्ख है जो अशिक्षित और अनपढ़ा कह सकता है? ऐसी निर्मूल और निरर्थक टिप्पणी वे ही लोग करते हैं जो थोड़ी बहुत अंग्रेजी और हिन्दी अथवा ऊर्दू तो अवश्य जानते हैं परन्तु संगीत में निरक्षर ही होते हैं। ऐसे ही लोग ऐसा भद्दा और अशिष्ट आक्षेप घरानेदार संगीतज्ञों पर बिना सोचे समझे करते हैं और फिर भी पढ़े लिखे होने का दावा करते हैं।

हम इस बात को मान लेने पर मजबूर हैं कि घरानेदार संगीतज्ञों का आदर-सम्मान उचित हैं और उन्हें शोभा देता है। कला और प्रतिष्ठा की दृष्टि से वह इस योग्य हैं कि उनका सम्मान किया जाये। यथार्थ में यह उनका व्यक्तिगत सम्मान ही नहीं है परंतु परंपरागत घरानेदार संगीत का भी उचित सम्मान है। इस प्राचीन घरानेदार संगीत की जो उत्तम व्याख्या हम उनके मुख से, हाथ से और उनके कण्ठ से सुनते हैं उस पर परम्परागत संगीत की छाप पड़ी होती है। यह वह परम्परागत संगीत है

जिसे इन प्रतिष्ठित घरानेदार संगीतज्ञों ने कड़े परिश्रम से और अपनी निरंतर साधना से सुरक्षित रखा है और दूसरों तक पहुँचाया है। बड़ी उदारता से उन्होंने अपने संगीत के ज्ञान—भण्डार को अपने शिष्यों और अपनी शिष्य-परम्परा को बाँटा और इस तरह घरानेदार संगीत को जीवित रखा। इसी को हम उत्तम संगीत मानते हैं और संगीत की टकसाल भी मानते हैं। प्रतिष्ठित गायकों और वादकों को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होंने संगीत की इस दौलत को सँभाल कर रखा। इसीलिए यह संचित धन संगीत की पूँजी बन गया और बढ़ता ही गया और अंत में उनकी शिष्य-परंपरा की सम्पत्ति कहलाने लगा। संगीत की प्रगति का यह क्रम अथवा सिलसिला कई शताब्दियों तक जारी रहा। आज भी आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत इस पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है। परंतु यह अधिकार उससे छिन जायेगा जिस दिन वह परम्परागत, घरानेदार संगीत का विरोध करेगा अथवा उसकी तिरस्कारपूर्ण उपेक्षा करेगा। यही कारण है कि आज जब हम संगीत का पुनर्जागरण चाहते हैं तो हम घरानेदार संगीत के प्रति उदासीन अथवा तटस्थ नहीं रह सकते। इसलिए जैसे हम परम्परा और परम्परावाद का तिरस्कार नहीं कर सकते, उसी तरह हम परम्परागत, घरानेदार संगीत की भी उपेक्षा नहीं कर सकते। सच तो यह है कि आधुनिक संगीत का उत्थान तभी हो सकता है जब हम घरानेदार संगीत को उसके प्रोत्साहन का स्रोत बनायें। तभी हमारे संगीत का भविष्य उज्वल हो सकेगा। इस युग में जब हम संगीत के पुनर्जागरण का नारा उत्साह से ऊँचा उठाते हैं तो हमारा संकेत इसी परंपरागत संगीत की ओर होता है और जिसे हम बोल-चाल की भाषा में घरानेदार संगीत के नाम से भी पुकारते हैं।

## घराना

तो प्रश्न उठता है कि "घराना" क्या है? सामान्य रूप से इस शब्द की परिभाषा शायद आसानी से की जा सकती है। परन्तु इसको हम एक स्वगुणनिर्देशक पद मान कर केवल इसकी स्वगुणार्थक परिभाषा से संतुष्ट नहीं हो सकते। हम यह जानना भी आवश्यक समझते हैं कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के संदर्भ में हम घराना किसे कहते हैं और हम उसका क्या अर्थ लगाते हैं। इसके पहले कि इस विषय में हम कुछ खुलासा बातचीत करें, हमें इस बात को याद रखना चाहिए कि संसार के और किसी संगीत में घराने नहीं होते। यह विषेश संकल्पना हिन्दुस्तानी संगीत ही में पाई जाती

है और एक तरह हम इसे इस संगीत का मानो एक लाक्षणिक गुण ही मानेंगें। गुरुओं का विशिष्ट सम्प्रदाय और उनकी शिष्य-परम्परा तो क़र्नाटक संगीत में भी पायी जाती है, मगर इसमें भी संगीतज्ञों के विशेष घराने नहीं होते। "घराना" ऐसी विशेषता हिन्दुस्तानी संगीत ही में पाई जाती है। संसार के और किसी संगीत में घरानों की प्रथा नहीं है। ऐसी संकल्पना का अस्तित्व संसार के और किसी संगीत में नहीं रहा है। यह कहना गलत न होगा कि "घराना" हिन्दुस्तानी संगीत ही की देन है। इसके साथ-साथ यह जानना भी आवश्यक है कि बिना घरानों के संगीत को जानें हुए हम प्राचीन अथवा पिछले परम्परागत हिन्दुस्तानी संगीत को ठीक तरह से नहीं जान सकते। बिना इस जानकारी के हमारा ज्ञान अधूरा ही रहेगा। यहाँ हम संगीतशास्त्रों में लिखे हुए संगीत का वर्णन नहीं कर रहे हैं। परन्तु विशेष रूप से हम व्यावहारिक संगीत ही की बात करते हैं जिसका पोषण कम से कम पिछली दो तीन शताब्दियों में गायकों और वादकों ने किया था। अकबर के युग से लेकर अब तक के संगीत को हम आम तौर से आधुनिक संगीत ही मानेंगे। अथवा उस संगीत को जो तानसेन की ध्रुपद-परम्परा और सदारंग और अदारंग की ख्याल-परम्परा से विशेष रूप से संबन्धित रहा है, हम आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के नाम ही से पुकारेंगे। और इसके साथ-साथ हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस संगीत का विशेष संबन्ध घरानों ही से रहा है। इस सगीत का सही ऐतिहासिक मूल्यांकन हम तभी कर सकते हैं जब हमें प्रतिष्ठित घरानों का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान हो। घरानों के संगीत का अध्ययन ऐसे मूल्यांकन के लिए सदैव अनिवार्य होता है।

इस संगीत को हम व्यावहारिक संगीत ही मानते हैं। हम इसे "शास्त्रीय संगीत" के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि यह शास्त्रों में लिखे हुए संगीत के आधार पर है और उनके ही मूल सिद्धांतों का पालन करता है। एक तरह से यह व्यावहारिक संगीत माने हुए संगीत शास्त्रों के संगीत का अनुवाद है। प्रतिष्ठित गायकों और वादको ने इस संगीत का अनुवाद अपने गायन और अपने वादन से किया और उसे हर तरह से प्रामाणिक बनाया। जो लोग घरानेदार संगीत को शास्त्रीय संगीत का बहुत कुछ विकृत रूप ही मानते हैं उसके साथ सरासर अन्याय करते हैं और पक्षपात और द्वेष की भावना ही से प्रेरित होते हैं। उच्च कोटि का घरानेदार संगीत शास्त्रीय संगीत का सुन्दर अनुवाद माना गया है और इस पर दो रायें नहीं हो सकतीं। यही घरानेदार संगीत की मुख्य विशेषता है। जो संगीत व्यवहार

में लाया जाता है अथवा गाया और बजाया जाता है उसी को हम व्यावहारिक संगीत कहते हैं। इसमें और शास्त्रों में दिए हुए संगीत में कोई विशेष विरोध नहीं होता। इस संगीत की व्याख्या तरह तरह ढंग से की जाती है और इसकी विविधता में विलक्षणता का गुण होता है। परंतु वह परम्परागत हिन्दुस्तानी संगीत अथवा शास्त्रीय संगीत ही होता है और उसकी आत्मा एक-सी रहती है। व्यावहारिक संगीत केवल उसका सुन्दर अनुवाद है। गायकों और वादकों ही ने शास्त्रों की मूक भाषा को वाणी दी और स्वरों के माध्यम से उसे सजीव और जीता जागता बनाया। यदि शास्त्र गूँगे थे तो गायकों और वादकों ने उन्हें बोलना चालना सिखाया और स्वरों की मीठी वाणी प्रदान की। उन्होंने शास्त्रों में लिखे हुए संगीत का ठीक-ठीक अनुवाद अपने गायन और वादन से किया। अपने कंठ और अपने हाथों के द्वारा उन्होंने सरस्वती की उपासना को जीता-जागता और सजीव बनाया और अपने श्रोताओं के रसिक हृदयों को स्वरों का अमृत चखाया। यदि प्रष्ठित गायक और वादक शास्त्रों के संगीत का अनुवाद अपनी कला के द्वारा न करते तो संगीत विद्वानों और पंडितों ही का किताबी एकाधिकार बन कर रह जाता और आम श्रोतागण उसके रस का आनन्द कभी न ले पाते। गायकों और वादकों के व्यावहरिक संगीत के द्वारा ही प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत आम जनता तक पहुँचा और जन-समुदाय के हृदय में उसने अपना घर बनाया। यहाँ हम इसी व्यावहारिक संगीत की चर्चा कर रहे हैं जो घरानों का भी संगीत रहा है।

इस संबन्ध में यहाँ एक और बात कहना अनावश्यक नहीं समझा जायेगा। पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव हमारी सभ्यता पर पड़ा है। हमारे साहित्य और हमारी कला पर भी वहाँ के साहित्य और वहाँ की कला का काफी प्रभाव पड़ा है। रही वहाँ के संगीत की बात, इस बात को हम जानते हैं कि उच्च कोटि के पाश्चात्य संगीत से हमारा बहुत थोड़ा संपर्क रहा है। आधुनिक काल में हमारी फिलम कंपनियों ने केवल वहाँ के तीसरी श्रेणी अथवा चौथी श्रेणी के लोकप्रिय संगीत को अपनाकर अपनी आवश्यकताओं के अनुसार एक तरह के भावुक और बाजारू संगीत ही का निर्माण किया है जिसकी बाजार में बहुत माँग है। वहाँ के उच्च कोटि के संगीत में कला और शैली की विलक्षण विविधता होती है और सगीत के विद्वान ही इस संगीत की महानता को जानते हैं। परन्तु वह हमारे संगीत से बिल्कुल अलग है और सैद्धान्तिक रूप

से दोनों के बीच में कोई साम्य नहीं है। हम इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि पाश्चात्य संगीत में घराने नहीं होते। इस संगीत के अलग-अलग प्रकार और मत तो अवश्य हैं परन्तु इसमें घराने नहीं होते। पाश्चात्य साहित्य और वहाँ की कला में भी अलग-अलग मत और वाद तो अवश्य होते हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में एक विशेष मत "स्कूल" के नाम से तो अवश्य पुकारा जाता है परन्तु वह एक विशेष वाद अथवा मत की शैली ही से अधिकतर संबन्धित होता है। वह किसी घराने से संबन्धित नहीं होता।

सच तो यह है कि जिसे "घराना" कहते हैं वह हिन्दुस्तानी संगीत की निराली विशेषता है। संसार का और कोई संगीत घरानों के लिए अनुकूल अथवा उपयुक्त नहीं बना और न बन सकता है। हिन्दुस्तानी संगीत ही में घराने हुए हैं। उसके विकास में इनका बड़ा हाथ रहा है। यह कहना भी आपत्तिजनक न होगा कि यदि घराने न होते तो हमारे संगीत की पैतृक सम्पत्ति सुरक्षित न रहती और हमें पिछले युगों के संगीत का कोई भी ज्ञान न होता। एक तरह से घराने हमारे मार्गदर्शक अथवा पथप्रदर्शक रहे हैं। इनकी संरक्षणता ही में संगीतज्ञों ने प्रगतिशील संगीत का निर्माण किया और उसे उन्नति का रास्ता दिखाया। इन्हीं घरानों में हमारे संगीत का उत्तराधिकार अथवा उसकी विरासत सुरक्षित रहे हैं। अथवा यह कहना भी ठीक होगा कि घराने हमारे संगीत के संचित धन की रक्षा करते रहे हैं। सच तो यह है कि हमारा आधुनिक संगीत सदैव उनका आभारी रहेगा।

पिछले दो तीन सौ वर्षों में संगीत के हित में जो महान कार्य बहुत से प्रतिष्ठित घरानों ने किया है वह संसार की कोई बड़ी से बड़ी संस्था भी नहीं कर सकती थी यदि उसे सब तरह के साधन भी मिल जाते। "घराना", जिसे हम कुटुम्ब, परिवार अथवा कुल के नाम से भी पुकारते हैं, जन-समुदाय अथवा मानव समाज का एक, एकांश अथवा युनिट ही माना जाता है। घरानों के माध्यम से एक तरह से संगीतज्ञों के एक विशेष वर्ग का सामुदायिक विकास भी होता है और एक वृहत् समुदाय का भी जन्म होता है जिसमें एक विशेष जातीय बिरादरी का समावेश होता है जो मानव हितों की समता से प्रभावित होती है। यह सामुदायिकता कभी-कभी साम्प्रदायिकता का रूप भी धारण कर लेती है परन्तु इसका विशेष संबन्ध गायकों और वादकों के सामुदायिक जीवन से होता है और यह संगीत के उद्देश्यों और हितों की पूर्ति ही में अपना हाथ बँटाती है। घरानों के पारस्परिक संपर्क में जिस प्रबल प्रतियोगिता की भावना का जन्म होता है वह भी यथार्थ में प्रगति-

शील संगीत ही का पोषक बनती है। घरानों के पारस्परिक संपर्क और संघर्ष में जिस प्रतियोगिता अथवा प्रतिद्वन्द्विता का जन्म हुआ वह व्यावहारिक संगीत के हित में था और उससे उसको बहुत अधिक प्रोत्साहन भी मिला। इसीलिए संगीत की महफिलों को "अखाड़ा" अथवा "दंगल" माना गया है और प्रतियोगिता की भावना से उच्चतम संगीत को सदैव प्रोत्साहन मिला है। पुरानी महफिल इसी जीते-जागते संगीत का माध्यम और प्रतीक थी जिसका स्थान अब "संगीत सम्मेलन" और "कौनसर्ट" अथवा "संगीत गोष्ठी" ने ले लिया है। "तलाऊपर गाना-बजाना", "दंगली गाना-बजाना" ऐसे वाक्यांश अब निरर्थक से बन गये हैं और गायकों और वादकों की महफिलों का भी अंत सा हो गया है। इससे जो क्षति हमारे व्यावहारिक संगीत को पहुँची है उसका अनुमान हम अभी तक नहीं लगा पाये हैं। पुराना सीखना-सिखाना सुनना-सुनाना, गाना-बजाना, रियाज की कसरत और महफिलों का दंगल, यह बातें अब भूले हुए सपनों की तरह हो गयी हैं। वह गायक और वादक भी जो अब संगीत-सम्मेलनों और आकाशवाणी ही से अपना संगीत प्रसारित करते हैं, संगीत की महफिलों को भूल-सा गये हैं और उनमें बहुत कम गाते बजाते हैं। पहले जमाने में तरुण, होनहार गायक अथवा वादक महफिल के गाने-बजाने को दंगली गाना-बजाना समझते थे और वहाँ की हार-जीत को कसौटी मानते थे। वहीं से उनके संगीत को नया प्रोत्साहन मिलता था और वह अपनी कमियों को पूरा करके और प्रतियोगिता की भावना से प्रभावित होकर आगे बढ़ते चले जाते थे। वहीं से गायक गायक बनते थे और वादक वादक बनते थे। यह प्रतिभाशाली कलाकार किसी कक्षा में संगीत सीख कर और अपने कमरे अथवा कोठरी में अभ्यास करके गायक अथवा वादक बनने का दावा कभी नहीं करते थे। महफिल तो ऐसे मेहनती और होनहार संगीतज्ञों की कसौटी होती थी।

यथार्थ में घरानों को हम एक तरह का जातीय समूह ही मानेंगे। प्रत्येक घराने की अपनी विशेषता अथवा विशिष्टता होती थी और वह अपनी परम्परा और अपनी शैली ही का सच्चा अनुयायी होता था। अपनी संगीत शैली का विशेषज्ञ बनना ही उसका लक्ष्य होता था और उसी में वह कुशलता और प्रवीणता प्राप्त करता था। जहाँ तक संगीत के मूल सिद्धान्तों का संबन्ध था सब घराने उनका एक-सा पालन करते थे। रागों की व्याख्या में अन्तर हो सकता था परन्तु उनके सैद्धान्तिक आधार में कोई अन्तर नहीं था और उनकी शास्त्रीय प्रामाणिकता एक-सी होती थी। गायकों और वादकों के यह

अलग-अलग समूह, दल अथवा वर्ग एक ही लोक-समाज अथवा समुदाय के अन्तर्गत थे जो संगीत की एक सामूहिक परम्परा और विचारधारा का अनुयायी होता था। गायकों और वादकों का जन—समुदाय एक ही भारतीय संस्कृति और एक ही संगीत के सूत्रों से बँधा हुआ था। संगीत के व्यापक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान संगीतज्ञ एक ही सांस्कृतिक बंधुता अथवा सादृश्य के अधीन थे। दोनों की आत्मा भारतीय थी। जो कुछ भी मुसलिम सभ्यता का प्रभाव हमारे संगीत पर पड़ा वह किसी भयंकर प्रतिक्रिया के रूप में नहीं आया और न वह किसी तरह से हमारे संगीत के लिए घातक ही साबित हुआ। यथार्थ में वह हमारे संगीत की संस्कृति और उसकी मौलिक विचारधारा में घुल-मिल गया और मुसलिम प्रतिभा ने भी अपने को हर तरह से भारतीय बनाया। सच तो यह है कि मुसलिम संगीतज्ञों ने हमारे संगीत को सजाया और सँवारा और उसमें चार चाँद लगाये। उन्होंने उसकी भारतीय व्याख्या की। वही कृष्ण और राधा, वही कुब्जा और वही गोपियाँ और वही राम और वही सीता उनकी रचनाओं के विषय बने। उनके राम और रहीम, उनके दरिद्र नारायण और उनके "गरीबनिवाज" भी सांस्कृतिक संश्लेषण के और संगीत में हिन्दू मुसलिम एकता की पुनीत भावना के प्रतीक बने। हिंदुस्तानी संगीत का बँटवारा अथवा विभाजन कभी नहीं हुआ और न हो सकता है। संगीत के वह कट्टर विद्वान और विचारक जो मुसलमान संगीतज्ञों की महान सेवा की उपेक्षा अथवा निन्दा करते हैं और आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर मुसलिम सभ्यता के घातक और हानिकारक प्रभाव का वर्णन करते हैं, केवल द्वेष और असहिष्णुता का शिकार बन जाते हैं और विवेक से काम नहीं लेते। हिन्दुस्तानी संगीत सदैव अविभाज्य रहा है और वह सांस्कृतिक संश्लेषण का माध्यय बन कर हिन्दू-मुसलिम एकता का अमर प्रतीक रहा है। राजनीतिक बँटवारा अथवा विभाजन हो सकता है, परन्तु हिन्दुस्तानी संगीत का बँटवारा कभी नहीं हो सकता। जो कोई भी अब हिन्दुस्तानी संगीत के संबन्ध में हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न उठाता है वह शायद अनजाने संगीत के बँटवारे की बात करता है और साम्प्रदायिकता का बीज बोता है। सच तो यह है कि हमारे देश में हिन्दुस्तानी संगीत सांस्कृतिक संश्लेषण का सबसे बड़ा प्रतीक और सुबूत माना गया है।

प्रत्येक घराने का एक मुख्य गुरु, संरक्षक अथवा मार्गदर्शक होता था जो उस घराने की शिक्षा का आयोजन करता था और परिवार के होनहार सदस्यों की संगीत—शिक्षा का भार अपने ऊपर लेता था। हम इस बात को

उदाहरण देकर समझायेंगे। आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ गायकों में 1923-24 तक अलवर के उ० जाकिरुद्दीन खाँ और अलाबंदे खाँ का बहुत नाम था। वह अपने जमाने में इस देश के अद्वितीय ध्रुपद-गायक माने जाते थे और उनके वंशज भी प्रसिद्ध ध्रुपदिये हुए हैं। जिस घराने के वह थे उसके अन्वेषक, संरक्षक और मार्गदर्शक उ० बहराम खाँ थे जिन्होंने अपने घराने की ध्रुपद शैली का प्रचार अपने घराने की शिष्य-परम्परा द्वारा किया। इस शैली के थोड़े बहुत चिह्न अब तक उनके वंशज के संगीत में मिलते हैं। उनका ध्रुपद-गायन इसी प्रतिष्ठित ध्रुपद शैली पर आधारित है। इस बात को माना जा सकता है कि इस प्राचीन ध्रुपद-संगीत की महानता में बहुत कुछ कमी आ गयी है और उसकी व्याख्या की शैली का स्तर भी कुछ गिर सा गया है। परन्तु इस ध्रुपद-गायन की प्राचीन पद्धति में कोई अंतर नहीं आया है। बहराम खाँ की ध्रुपद शैली ही इस घराने की पथ-प्रदर्शक रही है। एक अकेले बहराम खाँ की विलक्षण प्रतिभा ने इस घराने की संगीत शैली का पोषण किया और उसको प्रामाणिकता दी। इसी तरह ख्याल-गायन के क्षेत्र में घग्घे खुदाबख्श ही आगरा घराने के अन्वेषक और मार्गदर्शक थे। उनके बाद उनके सुपुत्र गुलाम अब्बास खाँ ही इस युग में इस घराने के गुरु और संरक्षक बने। यथार्थ में उन्होंने ही अपनी शिक्षा के द्वारा इस घराने की शैली का प्रचार किया और उसे सुरक्षित रखा। और इसी प्रकार देहली ख्याल घराने के अन्वेषक और संरक्षक तानरस खाँ थे और उन्हीं की शिष्य-परम्परा ने इस घराने के संगीत को अब तक जीवित रखा। वादन-संगीत में भी जयपुर के स्व० रजबअली खाँ बीनकार की शिष्य-परम्परा अभी भी मौजूद है। रामपुर के वजीर खाँ बीनकार के वंशज और उनके प्रमुख शिष्य अब नहीं रहे परन्तु फिर भी उनके बाज के कुछ बचे-खुचे नक्शे अभी भी इधर-उधर सुनाई पड़ते हैं।

किसी घराने के एक-दो गायक अथवा वादक ही उसके संगीत का और उसकी शैली का निर्माण करते हैं और वह उसके संरक्षक और मार्गदर्शक बन जाते हैं। जहाँ तक तालीम अथवा शिक्षा का सम्बन्ध होता है वह उनकी भी नींव डालते हैं और उसका प्रचार करते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह अपने घराने की विशेष शैली का भी निर्माण करते हैं। अपने-अपने कण्ठ की कुशलता और विशेषता के अनुसार एक घराने के शिष्य उसकी शैली की व्याख्या करते हैं। परन्तु यह बात माननी पड़ेगी कि सब शिष्य अपने पूज्य गुरु के कण्ठ की मिठास, उसके गाम्भीर्य और उसके कला-

त्मक चमत्कार की नकल करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते हैं। कुछ को सफलता मिलती है और कुछ को नहीं। अथवा कुछ पूर्ण रूप से सफल होते हैं और कुछ आधे अथवा एक चौथाई ही सफल होते हैं। साधारण योग्यता के शिष्य शैली की तकनीक ही की तरफ अधिक ध्यान देते हैं। परन्तु विशेष अथवा असाधारण प्रतिभा वाले होनहार शिष्य अपने गुरु के गाने की मौलिकता का भी अनुवाद करते हैं और उसके संगीत की आत्मा की झलक भी उनके गायन में दिखाई देती है। कुछ शिष्य तो अपने घराने के संगीत के शरीर अथवा उसकी तकनीक के औपचारिक आडम्बर ही को प्रदर्शित करते हैं और कुछ उसकी आत्मा की झलक भी दिखाते हैं। पहले वर्ग के शिष्य साधारण अथवा मध्यश्रेणी की योग्यता रखते हैं और दूसरे वर्ग के शिष्यों की उत्तम प्रतिभा होती है किसी घराने के संगीत का भविष्य इसी दूसरे वर्ग वाले शिष्यों पर आलंबित होता है। वे ही उसके कर्णधार बनते हैं।

प्रत्येक घराने का आवाज लगाने का ढंग, उसका उतार चढ़ाव और उसका कला-चातुर्य अपने ही ढंग का होता है। आवाज का फैलाव भी विशेष ढंग का होता है। कुछ आवाजें मद्र सप्तक और मध्य सप्तक पर आसानी से घूमती हैं। कुछ गले तार सप्तक तक चले जाते हैं और कभी-कभी बिना आवश्यकता के भी वह ऊँचे स्वरों पर बड़े उत्साह से आने जाने की आदत डाल लेते हैं। परन्तु यह बात माननी पड़ेगी कि प्रत्येक घराने का आवाज लगाने का ढंग अलग होता है और यह भी बहुत हद तक सच है कि होनहार शिष्य अपने गुरु की आवाज की नकल करने का पूरा पूरा प्रयत्न करते हैं।

कोई भी घराना क्यों न हो, वह अपनी शैली से जाना जाता है। शैली हम किसे कहते हैं, गायन की शैली को हम "गायकी" के नाम से पुकारते हैं। इसी तरह वादन की शैली को हम "बाज" कह कर पुकारते हैं। आम तौर से यह शब्द घरानेदार और व्यावसायिक संगीतज्ञों के संगीत ही पर लागू होते हैं अथवा उन संगीतज्ञों पर जिनमें व्यावसायिक योग्यता होती है अथवा जो परम्परागत संगीत के विशेषज्ञ होते हैं। आम तौर से अव्यवसायी संगीतज्ञों के संगीत पर यह शब्द लागू नहीं होते जब तक वह घरानेदार संगीत में पारंगत नहीं होते अथवा जब तक वह घरानेदार गायकों और वादकों से संगीत की शिक्षा प्राप्त नहीं करते। संगीत का किताबी ज्ञान रख कर और ठीक ढंग से सुर और ताल में गा-बजा कर ही कोई शिक्षित अथवा सभ्य व्यवसायी अथवा अव्यवसायी गायक अथवा वादक गायकी अथवा बाज जानने का दावा नहीं कर सकता। कोई भी पढ़ा-लिखा संगीत का विद्वान

किसी को गाना सिखाकर गायकी का ज्ञान नहीं दे सकता जब तक उसने स्वयं घरानेदार संगीत की किसी विशेष गायकी को नहीं सीखा है। ऐसी शैली का प्रवेश जिस किसी शिष्य अथवा शिष्या के कण्ठ में होगा वह एक तरह से गुमनाम, बिना सिर-पैर वाली होगी और उसकी कोई सनद अथवा छाप नहीं होगी और उसको सर्वश्रेष्ठ गायकों से मान्यता भी नहीं मिलेगी। पिछले जमाने में गाना गायकी की कसौटी पर कसा जाता था। किसी संगीत के विद्वान की जानकारी अथवा विद्वत्ता ही उसके गायन को स्वीकार के योग्य नहीं बनाती थी, यदि उसमें गायकी का अंश नहीं होता था। गाने की शिक्षा देने का दावा बहुत से विद्वान करते हैं, परन्तु गायकी का उनको कोई ज्ञान नहीं होता। हम यहाँ संगीत की व्यावहारिक कला ही की बात कर रहे हैं और केवल शास्त्रों में लिखे हुए संगीत के सिद्धान्तों की बात नहीं कर रहे हैं। यही कारण है कि आम तौर से संगीत शास्त्रों के मर्मज्ञ व्यावहारिक संगीत से बहुत कम परिचित होते हैं और उसका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। यही कारण है कि व्यावहारिक संगीत से संबंधित कार्यों में वह प्रायः असफल रहते हैं और उनकी संगीत-सेवा किसी तरह भी सृजनात्मक कभी नहीं बन पाती। शास्त्रों का कोरा ज्ञान किसी उत्साहपूर्ण विद्वान को गायकी का ज्ञान नहीं दे सकता।

उच्च कोटि की गायन-कला गायकी की कसौटी पर कसी जाती है, विशेष रूप से व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में। पहले जमाने में यदि कोई तरुण गायक दूसरे गायकों के संपर्क में आता था कि वह अमुक घराने का सदस्य अथवा शिष्य है तो पहले उसके संगीत की परीक्षा ली जाती थी और तब उसका उचित आदर-सत्कार होता था और वह महफिल में उचित स्थान पर बिठाया जाता था। यदि उसका दावा झूठा निकलता था तो वह आदर से तो वंचित हो ही जाता था परन्तु अपराधी बन कर दण्ड भी भोगता था। किसी घराने की गायकी जानना और किसी नामी गायक का शिष्य होना एक गायक के लिए सबसे बड़ा प्रमाण-पत्र होता था। उसके संगीत पर लगी मुहर अथवा छाप को सारा गायक-समाज मानता था और गुणी जन-समाज में उसका आदर होता था। किसी धुरन्धर गायक का शिष्य होना भाग्य और इज्जत की बात होती थी। आधुनिक संगीत के इतिहास में हम एक विशेष घटना की चर्चा यहाँ करते हैं जिससे यह बात और साफ हो जायेगी।

पटियाला के प्रसिद्ध गायक फ़तह अली खाँ और अली बख्श जिनका बहुत नाम हुआ है, उस्ताद बहराम खाँ, ध्रुपद-गायक की शिष्या गोकी बाई

के शिष्य हो गये थे और अली बख्श के पिता मियाँ कालू गोकी बाई के साथ सारंगी की संगत करते थे। एक गायिका अथवा गाने वाली का शिष्य होकर इन दोनों होनहार गायकों को मर्दों के गायक-समाज में कोई आदर नहीं मिल सकता था। इसलिए इस कमी को जान कर जयपुर की एक महफ़िल में मियाँ कालू ने बड़ी चतुरता से इन दोनों तरुण गायकों को देहली के मशहूर गायक तानरस खाँ का शिष्य करवा दिया। इसके बाद ही इन तरुण गायकों का भारत वर्ष भर में नाम हुआ। ये दोनों देहली ख्याल घराने की गायकी की व्याख्या भी बेजोड़ करते थे और घराने वाले गायकों ने भी इन्हें पूरी मान्यता दी।

गाने में गायकी ही उसकी शैली का उच्चतम रूप होता है। जिसे हम गायकी कहते हैं वह आम तौर से किसी घराने से अथवा किसी विशेष घरानेदार संगीत से संबन्धित होती है। उसका विकास भी उस घराने में कुछ समय के पश्चात् होता है और प्रतिभाशाली अथवा साधारण प्रतिभा वाले गायक ही उसका निर्माण करते हैं और उसे गायन कला के साँचे में ढालते हैं। इस तरह प्रत्येक प्रतिष्ठित गायकी का एक सुव्यवस्थित और परिमार्जित रूप होता है और उसकी अपनी कुछ विशेषतायें भी होती हैं। इसके साथ-साथ प्रत्येक गायकी अपनी तकनीक का भी निर्माण करती है और उसकी विशेषज्ञ होती है। किसी विशेष घरानेदार गायकी में ऐसा आकर्षण होता है कि किसी और घराने की गायकी भी उसकी ओर आकर्षित होती है और उससे बहुत अधिक प्रभावित भी होती है। ऐसी गायकी की कुछ मुख्य विशेषतायें ही दूसरे घरानों के गायकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। उदाहरण के लिए आगरा घराने की बोल-तानें ऐसी सुन्दर और प्रभावोत्पादक होती हैं कि और घराने के गायक भी उनसे प्रभावित होते हैं और उनकी नकल करने का प्रयत्न करते हैं और इस तरह अपनी गायन-कला को उनके आभूषणों से सजाते हैं। कभी-कभी इस तरह की नकल अनायास अनुकरण अथवा अनैच्छिक अनुकरण का रूप धारण करती है और कभी-कभी यह अनुकरण अचेतन अनुकरण ही होता है। परन्तु कुछ गायक इस प्रतिष्ठित गायकी का सप्रयोजन अनुकरण भी करते हैं और इसकी बोलतानों का जान-बूझ कर अभ्यास करते हैं। वह गायक ही ऐसा करते हैं जिनमें प्रबल अनुकरणात्मक प्रवृत्ति होती है और जो अपने में पुरुषत्व चाहते हैं अथवा स्वर और ताल सहित उसे जोरदार बनाना चाहते हैं।

चाहे कोई भी गायकी हो, उसकी अपनी कुछ मुख्य विशेषतायें होती

हैं जिसका निरन्तर अभ्यास उसके अनुयायी करते हैं। वह उसी को मांझते और साफ करते हैं और उसी को सँवारते-सजाते भी हैं। किसी गायकी को अधिकार में लाने के लिए कण्ठ की साधना सबसे अधिक आवश्यक होती है। कुछ आवाजें स्वभाविक रूप से सुरीली और अच्छी होती हैं और रियाज़ उन्हें और चमका देता है। परन्तु कुछ आवाजें मामूली और भद्दी होती हैं और मेहनती और अनुभवी गुरु ही उन्हें बड़ी सावधानी से अच्छा बनाते है। आवाज को किसी विशेष गायकी के लिए अनुकूल बनाना बड़ा परिश्रम चाहता है। परन्तु यह परिश्रम किसी विद्वान गुरु की संरक्षता में होना जरूरी है। जो आवाज "डोक" में आ जाती है उसे एक अनुभवी शिक्षक ही डोक से निकाल सकता है और विशेष गायकी के मतलब का बना सकता है। विदेशी संगीत में आवाज को बनाने के बहुत से साधन हैं। हमारे संगीत में भी गला बनाने की बहुत सी विधियाँ हैं जिनसे खराब से खराब गले भी सुधर जाते हैं और लोग गाने लगते हैं। परन्तु जैसा पहले कहा गया है, गायकी का माध्यम गला ही होता है और इसीलिए प्रत्येक गायक को अपने गले को अपनी गायकी के लिए अनुकूल बनाना पड़ता है। परंतु आजकल के जो संगीत-शिक्षक गायकी के झगड़े में नहीं पड़ते और अपने ही ढंग से गाने की शिक्षा देते हैं, वह इन आवश्यकताओं को नहीं जानते। गायकी का संबन्ध गले से होता है। इसलिए हर बुद्धिमान और होनहार गायक को अपनी गायकी के अनुसार ही अपने गले को बनाना पड़ता है। हमारे संगीत में गला बनाने का भी हुनर रहा है, जिसे आज भी घरानेदार गायक उपयोग में लाते हैं। गला बनाने की इस कला का आधार वैज्ञानिक ढंग का ही है और वह एक विशेष अनुशासन पर ही अवलम्बित है आधुनिक संगीत-शिक्षा-पद्धति के समर्थक आम तौर से इस ज्ञान से वंचित हैं। पुराने घरानेदार संगीत में रियाज़ के और गला बनाने के साधन मौजूद थे जिन्हें हमने ठीक तरह से जाना-पहचाना नहीं और न हमारी आधुनिक संगीत-पद्धति ही ने उन्हें दिल खोल कर अपनाया। परन्तु जो लोग गायकी के मूल्य को जानते हैं, वह इन बातों से अनभिज्ञ नहीं रहते।

इसी तरह वादन-संगीत की घरानेदार शैली को हम "बाज" के नाम से पुकारते हैं। जो प्रतिष्ठा पुराने तंत्रकारी के बाज की थी और जिसका संबन्ध बीन, रबाब और सुरसिंगार ऐसे वाद्यों से था, वह प्रतिष्ठा प्रचलित बाज की नहीं है जो आम तौर से आलाप और गत ही पर आधारित होती है और किसी प्राचीन वाद्य संगीत की शैली अनुशासन का पालन नहीं करती।

प्रचलित सितार, सरोद और वाइलिन ऐसे साजों के बाज में गला भी बजता है जो तंत्र के बाज में वर्जित था और है। अभी भी सेनिया घराने के वादक गले की हरकतों का बहिष्कार करते हैं और गला बजाना बाज की मनमानी अनुशासनहीनता और उसकी मर्यादा का विरोध और अपमान मानते हैं। वीणा की प्राचीन, परम्परागत शैली, जो ध्रुपद की प्राचीन शैली से संबान्धत थी, इस खालिस बाज का स्रोत अथवा उद्गम स्थान थी। आधुनिक सरोद-वादन और सितार-वादन की शैलियों ने प्रतिक्रिया का ही रूप धारण किया है और इन्होंने गले पर कोई विशेष रोकथाम नहीं लगाई है। लोकप्रिय और रुचिकर बाज में आजकल गला बजाना कला और मिजाजदारी का चमत्कार समझा जाता है और श्रोतागण इस तरह के मिश्रित बाज का पूरा आनन्द लेते हैं। प्रसिद्ध सरोद-वादक स्व० उ० हाफ़िज़अली खाँ तो कभी-कभी श्रोताओं के मनोरंजन के लिए अपने सरोद पर बैंड भी बजाते थे। वह सरोद के प्राचीन बाज में पारंगत थे और उनका वादन बहुत सुरीला था परन्तु आम जनता के मनोरंजन के लिए वह ऐसा करने में संकोच नहीं करते थे और न इसे वाद्य संगीत की मर्यादा का कोई विशेष अपमान समझते थे। इस बात पर और भी तरह के विचार हो सकते हैं जिनकी व्याख्या यहाँ नहीं की जा सकती।

तो जब हम पुराने बाज को छोड़ कर प्रचलित बाजों की ओर ध्यान देते हैं तो हम उनकी विविधता और उनकी असीम स्वतन्त्रता से ही अधिक प्रभावित होते हैं। कोई भी बाज हो, चाहे प्राचीन अथवा प्रचलित, वह वाद्य संगीत की एक शैली ही माना जायेगा। परन्तु जिस किसी बाज को मान्यता मिलती है वह उसे कुछ समय के बाद ही मिलती है और किसी घराने की शिष्य परम्परा ही उसका प्रचार करती है और उसे लोकप्रिय बनाती है। जैसे किसी विशेष गायकी का निर्माण कुछ विशेष गायक करते हैं, उसी तरह किसी विशेष बाज का निर्माण कुछ विशेष वादक ही करते हैं। आधुनिक युग में सितार के सबसे अधिक लोकप्रिय बाज का आविष्कार कलकत्ते के प्रसिद्ध सितार-वादक उ० इनायत खाँ और उनके पिता उ० इमदाद खाँ ने किया था। पिछले तीस वर्षों के उभरते हुए सितार-वादकों ने, चाहे वह किसी भी घराने के रहे हों, अधिकतर इसी बाज का अनुकरण किया और लोकप्रिय वादक बनने का भरसक प्रयत्न किया। इस बाज पर अधिकार उन्हीं को मिलता था जो उसकी सच्ची साधना करते थे। बिना परिश्रम के किसी भी बाज में निपुणता प्राप्त नहीं हो सकती। यदि वह घरानेदार बाज होता है

तो किसी विद्वान गुरु की शिक्षा और संरक्षता दोनों अनिवार्य हो जाती हैं। जो आवश्यक शिक्षा अथवा मेहनत गायकी पर लागू होती है वही बाज पर भी लागू होती है। किसी माने हुए घरानेदार बाज का ज्ञान किसी कुशल घरानेदार वादक ही से प्राप्त हो सकता है चाहे वह वीणा का बाज हो अथवा सितार और सरोद का बाज हो।

हर अच्छा बजाना किसी बाज के अन्तर्गत नहीं आ सकता। बिना "बाज" की विशेषताओं को जाने हुए और माँझे हुए कोई भी प्रवीण वादक बाज का विशेषज्ञ नहीं बन सकता और कुशल घरानेदार वादकों के समाज में उसको आदर नहीं मिल सकता। बाज के मामले में किसी वादक को मान्यता तभी मिलती है जब उसको उसका विशेष ज्ञान होता है। यह तभी हो सकता है जब उसे उत्तम शिक्षा की सुविधा होती है और वह कड़ा परिश्रम करता है। किसी वादक का बाज ही उसका प्रमाण-पत्र होता है। उसे और किसी सिफारिश की आवश्यकता नहीं होती। गुणीजन उसके प्रामाणिक बाज ही की प्रशंसा करते हैं। जिस किसी वादक के वादन में बाज की छाप अथवा मुहर मिलती है, उसको कुशल वादकों का अनुमोदन भी मिलता है। सही बाज सीखने के लिए भी किसी सुयोग्य और प्रतिष्ठित गुरु का सहारा लेना पड़ता है। आधुनिक वादन-शिक्षा में इस वात की बहुत कम सुविधा होती है जब तक ऐसे शिक्षक स्वयं कुशल वादक नहीं होते। जो आवश्यकतायें गायकी पर लागू होती हैं वही बाज पर भी लागू होती हैं। घरानेदार संगीत का मूल्य इस संबन्ध में अपना अलग महत्व रखता है। वादकों का प्रगतिशील तरुण वर्ग भी इस बात से भलीभाँति परिचित है।

तो घराने ही गायकी अथवा बाज के माध्यम होते हैं और इसीलिए वह इस देश के उच्चतम संगीत से संबन्धित रहे हैं। हिन्दुस्तानी संगीत के ज्ञान भण्डार को और उसकी प्रतिष्ठित शैलियों को जीवित रखने वाले घराने ही रहे हैं। इन घरानों ने शैलियों के अलावा पुरानी बंदिशों और मशहूर प्रबन्धों को भी जीवित और सुरक्षित रखा जो हमारे संगीत की मौलिकता और उसके वैभव को अभी भी प्रकाशित करते हैं और उसकी उत्तम और सुन्दर व्याख्या करते हैं। वह व्यावहारिक संगीत के और उसकी परिवर्तन-शीलता के उद्गम-स्थान माने गये हैं। यह मानना पड़ेगा कि घरानों की शैलियों में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहा है जिसको प्रभावित करने वाले कुछ विशेष गायक और वादक ही रहे हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी शैली की मौलिकता और प्रामाणिकता में भी बहुत अन्तर आ जाता

है। ग्वालियर की पुरानी गायन-शैली का अब अंत-सा हो गया है। जो गायक अभी भी ग्वालियर घराने से अपने को संबन्धित करते हैं वह उसकी पुरानी गायकी का बहुत कम प्रदर्शन कर पाते हैं। इस गायकी के गौरव का भी एक तरह से पतन ही हो गया है। परन्तु इस गायकी के मूल सिद्धान्त अभी भी गायकों के समाज में अनुमोदन और श्रद्धा प्राप्त करते हैं और उनका अनुसरण करके अभी तरुण होनहार गायक बहुत लाभ उठा सकते हैं।

परन्तु यह मानना पड़ेगा कि किसी गायकी अथवा बाज का उत्तम अनुवाद और उसकी प्रामाणिक व्याख्या एक घराना ही कर सकता है। यह उस घराने की शिष्य-परम्परा ही का उत्तरदायित्व है कि वह उस विशेष शैली को जीवित रखे। यदि किसी घराने के संगीत की शैली और उसकी कलात्मक व्याख्या की मौलिकता का अंत हो जाता है और उसकी तकनीक का औपचारिक आडम्बर ही बच रहता है तो खतरा है कि ऐसे घरानेदार संगीत का विकृत रूप ही हमारे सामने आये। घरानेदार संगीत का समर्थन करना हर तरह से उचित माना जायेगा। परन्तु इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि जिन घरानों की शिष्य-परम्परा अभी भी मौजूद है उसका यह कर्तव्य और धर्म है कि वह उसकी मौलिक शैली को सुरक्षित और जीवित रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न करे और उसकी कला के अनुशासन की उपेक्षा किसी भी कीमत पर न करे। किसी भी घराने के गायक अथवा वादक अपने घराने के एकाधिकार की भावना के अधीन होकर अपने कर्तव्य को न भूल जायें और स्वार्थवादी नीति को छोड़ कर संगीत की सेवा ही में जुट जायें। तभी घराने सुरक्षित और जीवित रह सकते हैं और गायक और वादक हिन्दुस्तानी संगीत में नई शक्ति संचारित कर सकते हैं और उसके उज्ज्वल भविष्य का भी निर्माण कर सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो घराने व्यावहारिक संगीत का अपवाद ही बन कर रहते।

अंत में एक और बात कहना भी आवश्यक है। किसी भी नई विलक्षण गायकी अथवा नये बाज का घराना अपने आप नहीं बन सकता। घराना बनने की भी एक शर्त होती है जो अनिवार्य है। किसी घराने की शैली की सुव्यवस्थित परम्परा और उसके विशेष संगीत का क्रम ही उसे घराना बनने का अधिकार देते हैं। गायकों अथवा वादकों की कम से कम तीन या चार पीढ़ियों के बाद ही किसी घराने का जन्म हो सकता है और संगीत में प्रगति हो सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि एक विलक्षण अथवा अनोखी गायकी अथवा बाज का घराना ऐसे ही बन जाये जब तक उसके

प्रतिभाशील अनुयायी उसे प्रचलित न करें और उसे सम्पूर्ण मान्यता के योग्य न बनायें। कोई बहुत बुद्धिमान अथवा विलक्षण गायक अथवा वादक अपनी अलग शैली का निर्माण कर सकता है और अपने व्यक्तिगत मत को भी स्थापित कर सकता है परन्तु यह जरूरी नहीं है कि उसका एक घराना भी बन जाये। जैसे "किराना गायकी" अवश्य मानी जाती है परन्तु किराना घराना बनने में अभी देर है और कुछ समय के बाद ही उसकी और प्रतिष्ठित घरानों में गणना हो सकेगी। परन्तु कुछ लोग उसके असंगठित रूप को भी घराना मानने लगे हैं। यथार्थ में संगीत का प्रत्येक मत घराना नहीं बन सकता परन्तु उसका औपचारिक ढोंग अवश्य रच सकता है। हवाई कल्पना से घराना नहीं बनता। इसी तरह स्व० उस्ताद अल्लादिया खाँ की गायकी का घराना भी माना जाता है जब कि उनकी तीसरी पीढ़ी के गायकों की संख्या नहीं के बराबर है। परन्तु अल्लादिया खाँ घराना बनना संभव हो सकता है यदि उनके सुपुत्र भूरजी खाँ और मंजीर खाँ और उनकी प्रसिद्ध शिष्या केसर बाई की शिष्य-परम्परा ऐसे कार्य में जुट जाये।

घराने बड़े भी हैं और छोटे भी, प्रसिद्ध भी और मामूली भी। हम यहाँ हर तरह के भेद-भाव का त्याग करके इसी बात पर जोर देना चाहते हैं कि सब प्रसिद्ध घराने परम्परागत संगीत ही से संबन्धित रहे हैं। और जिसे हम घरानेदार संगीत कहते हैं उसकी अपनी अलग प्रतिष्ठा रही है और वह आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत से हर तरह से संबन्धित रहा है। इसीलिए जब हम इस संगीत का वर्णन करते हैं तो उसकी आधुनिक परिस्थितियों का वर्णन करने के अलावा हमें उसके प्रमुख गायकों और वादकों के साथ उनके विभिन्न घरानों की चर्चा करना आवश्यक ही नहीं परन्तु अनिवार्य भी हो जाता है। बिना घरानों की चर्चा के ऐसा वर्णन अधूरा ही माना जायेगा।

# 2

# ध्रुपद की परम्परा और तानसेन का घराना

प्राचीन काल में भारतीय संगीत दिव्य और अलौकिक माना जाता था और उसका सम्बन्ध ऋषियों और मुनियों से होता था। धर्म, अध्यात्म और साधन के वातावरण ही में उसका जन्म और विकास हुआ और मन्दिरों और आश्रमों में उसका पालन-पोषण हुआ। वैदिक संगीत और गन्धर्वों का संगीत, इन दोनों का करीब करीब एक ही तरह के वातावरण में विकास हुआ। मार्ग संगीत ने भी एक विशेष वातावरण में उन्नति की। मंदिर, राज-महल और राजदरबार संगीत के मुख्य केन्द्र बने। राजा और महाराजा भी संगीत की उन्नति के लिए और संगीतज्ञों के निर्वाह के लिए सब तरह के आवश्यक साधनों का आयोजन करते थे और संगीत का उचित संरक्षण करते थे। वह उन्हें वेतन, पारितोषिक, धन और जमीन इत्यादि भी देते थे और उन्हें जीविकानिर्वाह के आर्थिक संकटों से भी मुक्त करते थे। शांतिपूर्वक जीवन ही में संगीत की साधना हो सकती थी। मन्दिरों और राजमहलों के वाता-वरण में ही संगीत, नृत्य और नाटक के अभिनय का आयोजन आम जनता के लिए किया जाता था। संगीतज्ञों का भी घनिष्ठ सम्बन्ध मन्दिरों से होता था। संगीत और धर्म का चोली-दामन का साथ था। मथुरा का हवेली सगीत इस बात का प्रमाण है। परन्तु यह बात भी सच थी कि उस युग के राजे-महाराजे भी संगीतज्ञों के कुटुम्ब-परिवार, उनकी सन्तान और उनके

वंशज का भी पालन-पोषण करते थे। तभी तो समाज में संगीत की उन्नति हो सकती थी।

हिन्दू राजाओं के संगीत-संरक्षण की प्रथा का पालन पठान और सुल-तान शासकों ने भी किया। इनके दरबारों में भी भारतीय और ईरानी संगी-तज्ञ नियुक्त किये जाते थे और इन्हें उचित आश्रय मिलता था। अलाउद्दीन खिलजी का दरबार अपने संगीत और संगीतज्ञों के लिए प्रसिद्ध था। इसी दरबार में गोपाल नायक ऐसे धुरन्धर गायक अपना ध्रुपद सुनाते थे और अमीर खुसरू भी अपने कव्वाली संगीत की व्याख्या करते थे। संगीत का प्रदर्शन भी उच्च श्रेणी के सम्मानित और प्रतिष्ठित श्रोताओं के सामने होता था जिनमें दरबार के बड़े-बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति भी होते थे जिनकी संगीत की अभिरुचि ऊँचे दर्जे की होती थी और इन्हें संगीत का उत्तम ज्ञान होता था। उत्तरी भारत का सबसे पहला संगीत-सम्मेलन जौनपुर के सुलतान हुसैन शर्की ने आयोजित किया था। इस शानदार संगीत-सम्मेलन में उसने बहुत से विद्वान और प्रसिद्ध ध्रुपद-गायकों, कव्वालों और संगीत के मर्मज्ञ विद्वानों को निमन्त्रित किया, जिन्होंने उसकी बनाई रागें जौनपुरी टोड़ी और हुसैनी कान्हरा को मान्यता दी थी और इस विषय में अपना-अपना अनुमोदन दिया था।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत की एक संस्था स्थापित की थी, जिसमें संगीत के चार श्रेष्ठ नायक थे जिनका काम संगीत सुनाना था और गुणियों के सामने संगीत-चर्चा की उत्तम गोष्ठी का आयोजन करना था जिसमें संगीत के प्रश्नों और उसकी समस्याओं पर वाद-विवाद और विचार-विनिमय होता था।

संगीत का सुनहरा युग अकबर के राज्य काल में आया जब सम्राट अकबर ने तानसेन को राजा राम बघेला के राज दरबार से अपने दरबार में बुलाया। उसके कुछ समय पश्चात् ही "नव रत्न" स्थापित किया गया। अकबर वैसे तो मुगल वंश का था परन्तु अपनी विचारधारा में वह उदारचित्त था और समदर्शी भी था। उसमें किसी तरह की धार्मिक संकीर्णता अथवा असहिष्णुता की भावना नहीं थी। उसने हिन्दुस्तानी संगीत की ध्रुपद शैली को फिर से जागृत किया और ध्रुपद संगीत को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। संगीत के क्षेत्र में ऐतिहासिक दृष्टि से अकबर का युग तानसेन की ध्रुपद शैली के वैभव का युग माना जायेगा जब ध्रुपद ऐसी प्राजीन शैली अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची थी और तानसेन परम्परा का भी जन्म हुआ था। यह संगीत आगामी हिन्दुस्तानी संगीत का निदेशक और मार्गदर्शक था। यथार्थ में यह

संगीत इसके पहले के संगीत और भविष्य के संगीत के बीच की वास्तविक कड़ी थी और इसके प्रोत्साहन से परम्परागत संगीत का जन्म हुआ। एक अकेले तानसेन की व्यक्तिगत प्रतिभा ने उस संगीत में नया जीवन संचारित किया और अपनी गतिमूलक शक्ति से उसमें नयी स्फूर्ति का प्रवेश किया। तानसेन का ध्रुपद-संगीत घरानेदार ध्रुपद-संगीत का स्रोत बना और उसकी शिष्य-परम्परा तानसेन परम्परा और तानसेन (सेनिया) घराने का सैद्धान्तिक आधार बनी। तानसेन ही गायकों और वादकों के सेनिया घराने का आदि पुरुष और जन्मदाता माना जाता था। दीवाने-खास में बड़े-बड़े गुणियों, विद्वानों और प्रतिभा-सम्पन्न दरबारियों के सामने तानसेन का और अन्य गायकों का ध्रुपद-गायन होता था और बादशाह अकबर को घण्टों संगीत सुनने की आदत थी। आम जनता के लिए भी दीवाने-आम में ऐसे संगीत का आयोजन किया जाता था। इस प्रथा का इतना अधिक प्रभाव बाद के शासकों पर पड़ा कि मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में बादशाह मुहम्मद शाह के दरबार में भी संगीत की चहल-पहल होती थी और उसका बोल-बाला था।

## तानसेन

तानसेन के बारे में कहा जाता है कि वह गौड़ ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम मकरन्द पाण्डे था। कहा जाता है कि इनकी बानी गौड़ी थी जो बाद में गोबरहारी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि ग्वालियर रियासत के किसी गाँव में इनका जन्म हुआ था। यह भी कहा जाता है कि जब तानसेन ने होश सँभाला तो ग्वालियर में आकर हजरत मुहम्मद गौस के दर्शन किये और उनके सामने अपनी संगीत सीखने की अभिलाषा को प्रकट किया। उन्होंने ही तानसेन को बताया कि वृन्दावन में हरिदास स्वामी नाम का विद्वान गुरु उसे मिलेगा। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि मुहम्मद गौस ने भी तानसेन को बड़े अद्भुत ढंग से अपनी दैवी शक्ति के द्वारा अथवा गैब की आवाज के द्वारा नौ वर्ष तक संगीत की शिक्षा दी। तानसेन मुसलिम सूफी मत के रहस्यों से भी परिचित था और हजरत मुहम्मद गौस का भक्त था। परन्तु तानसेन की आत्मा भारतीय थी।

संगीत की असली शिक्षा उसे हरिदास स्वामी ही से मिली और उन्हीं को तानसेन ने अपना पूज्य गुरु माना। अपने गुरु से उत्तम शिक्षा पाकर और कड़ा परिश्रम करके जब तानसेन एक सुयोग्य गायक बना तो महाराजा

रीवाँ के यहाँ उनका गुरु बन कर वह निवास करने लगा। रीवाँ से ही वह अकबर के दरबार में पहुँचा। अबुल फजल ने अपनी प्रसिद्ध रचना "आईने अकबरी" में तानसेन की बहुत प्रशंसा की है और यह भी लिखा है कि एक हजार वर्ष में ऐसा गायक पैदा नहीं हुआ। परन्तु अबुल फजल ने और भी गायकों और वादकों की चर्चा छेड़ी है जिनके बारे में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं है। परन्तु फिर भी यहाँ हम इनमें से कुछ के नाम दे रहे हैं।

**गायक**

सुरजान खाँ, मियाँ चंद, मुहम्मद खाँ, वीरमंदल खाँ, दाऊद खाँ, सईद खाँ, मियाँ लाल, तानसेन के सुपुत्र तानतरंग खाँ, मुल्लाइशाक दाढ़ी और उनके भाई रहमुतुल्ला, नामक चिरचू, सुलतान हाफ़िज़ हुसैन मशहदी, रंग सेन, मीर अबदुल्ला, मीरजादा खुरासानी इत्यादि।

**वादक**

रबाब के आविष्कारक कासिम उर्फ कोहबर, बीनकार शाहाब खाँ, बीनकार प्रवीन खाँ, बाँसुरी-वादक दोस्त मुहम्मद मशहदी, शहनाई-वादक शाहमुहम्मद, कानून-वादक मीरअबदुल्ला, तंबूरा-वादक मुहम्मद अमीर और मुहम्मद हुसैन, काशवेग कुवचाक कुँबरी, शेखडावन दाढ़ी, मीर सईद अली मशहदी इत्यादि।

इनके अलावा अकबर के दरबार के प्रतिष्ठित गायकों में बाबा रामदास भी बहुत प्रसिद्ध थे। यह ग्वालियर के रहने वाले थे परन्तु देहली पहुँच कर यह फिर कहीं और नहीं गये। इन्होंने ही राग रामदासी मल्हार का आविष्कार किया था जो आज तक गायक गाते हैं। यह राग मुश्किल होते हुए भी लोकप्रिय बन गया है।

बाबा रामदास के सुपुत्र सूरदास भी संगीत के प्रकाण्ड पण्डित थे। सूरदासी मल्हार की रचना इन्होंने ही की थी। संभव है कि इन्होंने और भी रागों की रचना की जिनका हमको कोई ज्ञान नहीं है।

अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गायकों में बिलास खाँ ध्रुपद गायक का भी बहुत नाम था और वह तानसेन के सुपुत्र माने जाते हैं। इन्होंने ही बिलासखानी टोड़ी की रचना की जो गायक आज भी बहुत प्रेम से गाते हैं।

**ध्रुपद की चार बानियाँ**

हिन्दुस्तानी ध्रुपद-पद्धति में हम ध्रुपद की चार अलग-अलग बानियों का वर्णन पाते हैं। पहले ग्राम राग पाँच भिन्न-भिन्न शैलियों में गाये जाते

थे। "संगीत रत्नाकर" ऐसे प्रसिद्ध शास्त्र में 'पंच गीत' की चर्चा की गयी है। स्वरों का अलग-अलग प्रयोग इन शैलियों में बताया गया है। इन पांचों के नाम हैं शुद्ध गीत, भिन्न गीत, गौड़ी गीत बेसरा गीत और साधारण गीत। पाँचवें प्रकार में अर्थात् साधारणी गीत की विशेषता यही थी कि इसमें पहली चारों की विशेषताओं का सम्मिश्रण होता था। हिन्दुस्तानी संगीत में चार निम्नलिखित बानियाँ मानी गयी हैं।

## (१) गौड़हार बानी

यह शुद्ध गीत से मिलती-जुलती है। तानसेन ध्रुपद-पद्धति के अनुसार इस बानी को सच्चे स्वरों में और बहुत सुरीले ढंग से गाया जाता है। इसमें मींड का अधिक प्रयोग किया जाता है। तानसेन इसी बानी को गाता था और इसका विशेषज्ञ था। परन्तु उसका और बानियों पर भी अधिकार था। उसका छोटा सुपुत्र बिलास खाँ भी इसी बानी में पारंगत था और इसका बेजोड़ गायक माना जाता था।

## (२) डागुर बानी

यह बानी भिन्न गीत से मिलती जुलती है। इसमें मींड एक विशेष ढंग से लगाई जाती है और गमक का भी बहुत सुन्दर और कलात्मक प्रयोग किया जाता है। इस बानी में ध्रुपद बड़े सुन्दर ढंग से गाया जाता है। तानसेन के गुरु वृन्दावन हरिदास स्वामी इसी बानी का प्रयोग करते थे और उनकी शिष्य-परम्परा भी इसी बानी के अनुशासन का पालन करती थी। तानसेन की सुपुत्री सरस्वती देवी जिसका विवाह वीणावादक मिश्री सिंह से हुआ था, इसी बानी को व्यवहार में लाती थी।

## (३) खंडार बानी

यह बानी बेसरा गीत से मिलती-जुलती है और इसमें तेज़ लय वाली गमक का प्रयोग अधिक किया जाता है। बाज़ बहादुर इसको अपने गायन में और मिश्री सिंह इसको अपने गायन और अपने वीणा-वादन दोनों में प्रयोग में लाते थे। बाद में मिश्री सिंह के वंशज डागुर बानी और खंडार बानी दोनों को प्रयोग में लाने लगे।

## (४) नौहार बानी

यह बानी गौड़ी गीत से बहुत मिलती जुलती है। इस बानी में अलंकार का प्रयोग किया जाता है जिसमें स्वर गमक के साथ एक विशेष ढंग

से लगाये जाते हैं। सुना जाता है कि श्रीचंद जो हरिदास स्वामी के शिष्य थे, इस बानी को बहुत सुन्दर ढंग से गाते थे और उसके विशेषज्ञ थे।

तानसेन की एक ध्रुपद रचना में इन चारों बानियों का वर्णन किया गया है और उनके गुण बखाने गये हैं। इस विशेष रचना में तानसेन ने बताया है कि गौड़हार बानी सब बानियों में राजा के तुल्य है। उसने खंडार को सेनापति बताया है। इसी तरह डागुर बानी को मंत्री बताया गया है और नौहार को निम्न श्रेणी का पदाधिकारी अथवा अफसर बताया है।

इन बानियों में शब्दों का विशेष महत्व और मूल्य था। यह शब्द इसलिए उचित और उपयुक्त माने जाते थे कि राग के और ध्रुपद की शैली के अनुसार यह बहुत अनुकूल थे। इस तरह भाषा, भाव, राग, रस और शैली में एक तरह का सामंजस्य होता था और संश्लेषण की भावना होती थी। गौड़हार बानी के लिए उन रागों को चुना जाता था जिनमें शांतरस होता था। डागुर बानी की रचनाओं के लिए वह राग चुने जाते थे जिनमें मधुर रस और करुण रस होता था। खंडार बानी में विशेष रूप से वीर रस संचारित होता था। इसी तरह नौहार बानी की रचनाओं में अद्‌भुत् रस की प्रधानता होती थी। रागों को भी इसी हिसाब से चुना जाता है कि उनमें यह रस अलग-अलग ढंग से प्रदर्शित हों। इस तरह की चयनशीलता ऐसे संगीत के लिए आवश्यक थी।

परन्तु तानसेन और अकबर के युग के पश्चात् यह विचार नहीं रखा गया। इसका एक विशेष कारण यह था कि मुगल साम्राज्य के अंत होने पर ध्रुपद के बहुत से नये-नये घरानों का जन्म हुआ जो इन चार बानियों की अलग-अलग व्याख्या करने लगे। परन्तु ध्रुपद के पुराने नियमों और उनके अनुशासन का उसी ढंग से पालन किया जाता था। जैसे ध्रुपद का कोई विशेष घराना जो किसी एक बानी का विशेषज्ञ माना जाता था, दूसरी बानियों को भी व्यवहार में लाने लगा। कुछ घराने एक से अधिक बानियों का प्रयोग करने लगे। इसका परिणाम यह भी हुआ कि ध्रुपद के परम्परागत अनुशासन में भी थोड़ी-बहुत कमी आ गयी। नये-नये घरानों के विकास के साथ-साथ परिवर्तनों का होना स्वाभाविक था और एक तरह से अनिवार्य भी था।

## तानसेन के वंशज

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में तानसेन के वंशज और उनके शिष्य तीन विशेष घरानों में फैल गये। जयपुर के सैनिये घराने ने डागुर

बानी के ध्रुपद में विशेष प्रवीणता प्राप्त की। लखनऊ, बनारस और रामपुर में सैनिया घराना दो अलग वर्गों में बंट गया। बिलास खाँ की परंपरा के अनुयायी जाफ़र खाँ, प्यार खाँ और बासत खाँ ने ध्रुपद की गौड़हार बानी का पालन किया। परन्तु यह गायक डागुर बानी का भी प्रयोग करते थे। मिश्री सिंह के सेनिये वंशज डागुर और खंडार बानियों दोनों का प्रयोग करने लगे। ध्रुपद के और घराने भी थे जिनमें कुछ तो सेनियों के शिष्य थे और कुछ हरिदास स्वामी की शिष्य-परम्परा में थे, जैसे बेतिया के ध्रुपद-गायक जो खंडार बानी को मानते थे। इसी तरह विष्णुपुर के ध्रुपद-गायकों ने गौड़हार बानी ही का पालन किया। मथुरा नाम के मशहूर ध्रुपद-गायक ने डागुर बानी ही में विशेष कुशलता प्राप्त की थी। एक दूसरे प्रसिद्ध गायक उस्ताद बहराम थे जो रहने वाले तो सहारनपुर जिले के अम्बैठा गाँव के थे, परन्तु जयपुर में जाकर बस गये थे और डागुर बानी की व्याख्या करते थे। यह घराना अपने को हरिदास स्वामी से भी जोड़ता है और इसलिए डागुर घराना कहलाता है। इस घराने में जाकिरुद्दीन खाँ और अलाबन्दे खाँ ऐसे प्रसिद्ध ध्रुपद-गायक हुए हैं। इस घराने के गायकों ने डागुर और खन्डार दोनों बानियों को गाया है। परन्तु कभी-कभी वह नौहार बानी का भी आनन्द लेते थे।

## तानसेन की संगीत-परम्परा

उत्तरी भारत में अकबर के युग में ध्रुपद शैली अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची थी। उसको हम ध्रुपद संगीत का सुनहरा युग भी कह सकते हैं। वृन्दावन के संत हरिदास स्वामी का परम शिष्य तानसेन ही इस काल का सर्वश्रेष्ठ गायक था। उसी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रोत्साहन से इस युग में ध्रुपद संगीत की विलक्षण जागृति हुई और हिन्दुस्तानी संगीत की रगों में नया खून दौड़ने लगा। हिन्दुस्तानी संगीत के सांस्कृतिक संश्लेषण में यूनानी संगीत और अरब संगीत भी थोड़ा-बहुत घुल-मिल गया था और तानसेन ही इस नयी विचारधारा का अगुआ, निदेशक और मार्गदर्शक था। वह इस तरह के संश्लेषण के सिद्धान्त का समर्थक और पथ-प्रदर्शक था। इस संगीत के निर्माण में तानसेन का बहुत बड़ा हाथ था। उसने उस काल के संगीत को एक नई दिशा में मोड़ा और उसे एक नया रास्ता दिखाया। एक मार्ग-दर्शक की हैसियत से उसने उसकी ध्रुपद-शैली को परिमार्जित रूप ही नहीं दिया परन्तु उसने उसे उन्नति का मार्ग भी दिखाया। इसलिए हम उसे इ.ा

संगीत का जन्मदाता ही नहीं मानते हैं परन्तु उसका निर्माता और उसकी विशेष शैली का विलक्षण टीकाकार भी मानते हैं। उसके संगीत में कला का अनोखा संश्लेषण था और उसने विदेशी संगीत के स्वरों को भी भारतीय संगीत के साँचे में ढाला। इस तरह भारतीय संस्कृति का अमर सिद्धान्त "भिन्नता में एकता का विचार अथवा भाव" संगीत में सही-सही और ठीक उतरा। हिन्दुस्तानी संगीत ही ऐसे संश्लेषण का सुन्दर प्रतीक बना। इस बात को दोहराने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि अब तक हमारा संगीत ऐसे सांस्कृतिक संश्लेषण का प्रतीक माना जाता है और उसके इस रूप में कोई भी अंतर नहीं आया है।

यह बात हमको माननी पड़ेगी कि तानसेन के ध्रुपद संगीत पर प्राचीन संगीत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और उसका चरित्र भारतीय था। उसके संगीत पर और किसी संगीत का कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ा और न उसे कोई क्षति पहुँची। उसकी मौलिकता में कोई अन्तर नहीं आया। प्रत्येक महान और प्रगतिशील संगीत की कला में यह गुण होता है कि वह और प्रभावों का अवशोषण करती है और उन्हें अपने साँचे में ढाल कर अपना बनाती है और उन्हें अपने ही रंग में रँग लेती है। यदि हमारे संगीत ने ऐसा किया तो इसमें हमारी जीत थी हार नहीं। यह हमारे संगीत की आत्मा की उदारता और महानता थी। इसमें भारतीय संगीत की विश्वव्यापकता की भावना थी।

तानसेन की विचारधारा बहुत कुछ सैद्धान्तिक ढंग से "संगीत रत्नाकर" के मूल सिद्धान्तों ही पर अवलम्बित थी—इस विचारधारा के अनुसार ब्रह्मा ने ही सामवेद के संगीत से मार्ग संगीत का निर्माण किया था जिसे नाद विद्या भी कहते थे। महादेव ही इस विद्या के पहले शिक्षक थे और उन्हीं से इस अलौकिक विद्या को पार्वती और सरस्वती ने भी सीखा। इसके बाद हम गणेश, नारद और हनुमान आदि का नाम भी सुनते हैं। इन्हीं नारद और हनुमान से गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओं ने भी इस विद्या को सीखा। तानसेन के संगीत में हम पौराणिक युग के रावण, वाल्मीकि, लव-कुश, हनुमान, अर्जुन इत्यादि के नाम भी पाते हैं। इसी प्रसंग में हम भरत, मतंग, शारंग देव और कालिनाथ की भी चर्चा सुनते हैं।

तानसेन के संगीत का आधार शिवमत और हनुमान मत दोनों हैं। जिनमें प्राचीन अथवा मूल रागों भैरव, मालकोश, हिंडोल, श्री, मेघ, दीपक का वर्णन मिलता है और इनके साथ इनकी रागनियों और पुत्रों इत्यादि का वर्णन भी है। "संगीत-दर्पण" ऐसे शास्त्रों में राग-रागिनियों का आधार

अधिकतर कल्पित अथवा काल्पनिक था। यह तो हम जानते ही हैं कि अकबर भरत के बाद तानसेन ही को इस देश का सर्वश्रेष्ठ गायक मानता था। अबुल फज़ल ने भी इस बात को लिखा है। तानसेन की शिष्य-परम्परा ने भी इस बात पर जोर दिया है कि तानसेन के संगीत के विचार और सिद्धान्त प्राचीन विचारधारा ही पर अवलम्बित थे।

यह भी कहा जाता है कि तानसेन अवध के बाबा रामदास और वृन्दावन के हरिदास स्वामी दोनों के शिष्य थे जो शिव को संगीत का जन्मदाता और हनुमान को उसकी रागों और रागिनियों का भाषान्तर करने वाला मानते थे। हम यह भी जानते हैं कि प्राचीन संगीत के सिद्धान्तों के अलावा तानसेन मध्य पूर्वीय देशों के संगीत के सिद्धांतों से भी थोड़ा बहुत परिचित था और उनसे भी वह प्रभावित हुआ था।

जहाँ तक बाहर के देशों के संगीत का संबन्ध है, हम इस बात को जानते हैं कि अरब और ईरान के संगीत के उद्गम अथवा उसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध यूनान के संगीत से भी रहा है। परन्तु हमको यह भी मालूम है कि यूनान के लोग दर्शन, विज्ञान, संगीत और भिन्न कलाओं के क्षेत्र में मिस्र और भारत ऐसे देशों के आभारी थे। तानसेन को ग्वालियर के पीर मुहम्मद गौस के संपर्क से अरब और ईरान के संगीत का ज्ञान प्राप्त हुआ था और वह उनसे प्रभावित हुआ था। मुहम्मद गौस तानसेन के धार्मिक गुरु थे और उन्होंने ही सूफ़ी मत के विचारों में उसका प्रथम दीक्षा-संस्कार किया था। हरिदास स्वामी ने उसे संगीत की शिक्षा दी थी और ब्रह्म विद्या और नाद विद्या की ओर प्रेरित किया था। उसका विवाह एक मुसलमान स्त्री से अवश्य हुआ था परन्तु हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों और आदर्शों का परित्याग उसने नहीं किया था। उसकी आत्मा भारतीय थी, परन्तु उसकी विचारधारा में वैदिक धर्म के सिद्धान्तों, भक्ति के भावों और विचारों और फ़ारस के सूफ़ी मत की धार्मिक तन्मयता, इन तीनों का संश्लेषण था। उसकी ध्रुपद की रचनाओं में हिन्दू धर्म के देवता और अवतारों का वर्णन भी था और इसके साथ-साथ हज़रत मुहम्मद के प्रति श्रद्धा के भाव का प्रदर्शन भी था। इस कारण कि तानसेन विदेशी संगीत-परम्परा से भी प्रभावित हुआ था, यह उचित है कि हम विदेशी संगीत-परम्परा के बारे में भी दो चार बातें संक्षेप में कहें।

अरब और ईरान के संगीतज्ञों और संगीत के विद्वानों ने सबसे पहले यूनान के पाइथोगोरस का नाम बताया है। ईसा के पांच सौ वर्ष पहले पाइ-

थोगोरस ने "मौसूकी" नाम की एक किताब यूनानी भाषा में लिखी थी। यूनानी भाषा में "मौ" का अर्थ है हवा और "सीक" का अर्थ है हवा में गिरह बांधना। फ़ारस और अरब के लोग भी संगीत को "मौसिकी" के नाम से पुकारते थे। यह कहा जाता है कि पाइथोगोरस ने एक प्रसिद्ध दार्शनिक होकर भारतीय सांख्यदर्शन के अतिरिक्त भारतीय संगीत का भी अध्ययन किया था और वह उसके मूल सिद्धान्तों से परिचित था।

हमें यह भी मालूम है कि यूनानी सभ्यता के युग में एक और संगीतज्ञ और सगीत का विद्वान था जिसका नाम था अरसा-ता तालिस और उसके तीन अरब के शिष्य थे जो संगीतज्ञ थे और चिकित्सा के हकीम भी थे। इनके नाम थे (1) हकीम सुकरात, (2) हकीम बुखरात और (3) हकीम जलीनस।

फ़ारस के बादशाह मारुन दशीद के शासन-काल में एक मुतरबिन कुंडी नाम का संगीत-शास्त्री था जो इन तीनों हकीमों की संगीत-परम्परा का अनुयायी था और जिसने अरबी भाषा में पाइथोगोरस की पुस्तक का अनुवाद किया था। अबू अली सीना ऐसे सुविख्यात विद्वान ने इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिया था।

बग़दाद के खलीफ़ा हारुनल रशीद के काल में संगीत पर जो कड़ा प्रतिबंध लगाया गया था, अलग कर दिया गया, जिसके कारण उच्चकोटि के संगीतज्ञों का प्रवेश संगीत-संसार में हुआ था।

ग्वालियर के पीर मुहम्मद गौस, जिन्होंने तानसेन को सूफी धर्म की दीक्षा दी थी, अरबी संगीत की विचारधारा से भली-भाँति परिचित था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इस परम्परा का थोड़ा-बहुत प्रभाव तानसेन के संगीत पर भी पड़ा।

परन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हज़रत मुहम्मद गौस पहले व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने ईरानी और अरबी संगीत की व्याख्या की थी। तुर्की संगीत का प्रभाव शाक और हुन जातियों के साथ हिन्दू युग में उत्तरी भारत में आ चुका था। तुर्किस्तान का संगीत ईरान के संगीत से बहुत-कुछ मिलता जुलता था। बाद में पठान बादशाहों के राज्य-काल में सुविख्यात विद्वान कवि और संगीतज्ञ अमीर खुसरू ईरान के संगीत को सबसे पहले देहली के दरबार में लाया। उसने फ़ारसी शैली में बहुत से गेय प्रबन्धों की रचना की जो "कव्वाली" के नाम से पुकारे जाते थे। फ़ारस के ईरानी संगीत की पद्धति का आधार बारह मुकाम (प्रधान रागें) चौबीस सूभा (रागिनी) और

अड़तालिस गुस्सा (उपराग) था। अमीर खुसरु ने भी कई रागों की रचना की जिनमें भारतीय और ईरानी संगीत के स्वरों का सम्मिश्रण था।

अमीर खुसरु के समकालीन युग में एक और धुरन्धर गायक हुआ जिसका नाम बैजू बावरा था जिसने ध्रुपद की एक विशेष शैली का अविष्कार किया था। इस शैली का मुख्य आधार था प्राचीन काल के संस्कृत के प्रबन्ध और ध्रुव गीत की शैलियां। बैजू बावरा ने राग-रागिनियों के सिद्धान्तों की व्याख्या भी की थी। परन्तु जिस ध्रुपद संगीत की व्याख्या उसने की उसे पठान शासकों के राजदरबारों में कव्वाली संगीत की तुलना में बहुत कम आदर मिला।

जैसा पहले बताया गया है, पाठन शासन के युग के अंत होने पर ग्वालियर के राजा मान तोमर ने अपने राज दरबार में संगीत की एक विशेष संस्था को स्थापित किया था जिसमें चार संगीत नायक नियुक्त किये गये थे जिनके नाम थे भाम चूर्ज, ढुंढीबर और चंचल शशि। उनकी सहायता और उनके सहयोग से राजा मान ने ध्रुपद शैली का पुनर्जागण करके उसके महत्व को फिर से स्थापित किया। ऐसा करने से कव्वाली संगीत की अपेक्षा ध्रुपद संगीत का मूल्य अधिक बढ़ गया।

ग्वालियर का पीर मुहम्मद गौस राजा मान के मित्रों में था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह ईरानी संगीत का और फ़ारस के सूफी मत का अनुयायी था। परन्तु यह भी सच था कि वह संगीत की ध्रुपद-पद्धति और भारतीय भक्ति योग के पुनीत और प्रभावोत्पादक विचारों और भावों का भी सच्चा मानने वाला था और उनका प्रशंसक था।

उस समय वृन्दावन के संत हरिदास स्वामी का एक महान संगीतज्ञ और विद्वान होने के नाते बहुत आदर और सम्मान था। लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और वह संत और संगीतज्ञ दोनों थे। वह बैजू की ध्रुपद-पद्धति को मानते थे और उनका अपना गायन विलक्षण और अलौकिक था जिसको एक बार बादशाह अकबर भी भेष बदल कर तानसेन के साथ सुनने गये थे। अकबर ऐसा कला का प्रेमी और पारखी ही जिसमें असाधारण कुतूहल था, ऐसा कर सकता था। हरिदास स्वामी का गायन सुनकर और उसकी झलक तानसेन के संगीत में देखकर अकबर को ज्ञात हुआ कि प्राचीन संगीत कितना प्रभावोत्पादक था। तानसेन इन्हीं हरिदास स्वामी का परम शिष्य था और इसीलिए उसके संगीत में भी इतना अद्भुत चमत्कार था। ग्वालियर के मुहम्मद गौस ने तानसेन को ईरानी संगीत की ओर प्रेरित

अवश्य किया था और उससे प्रभावित भी किया था परन्तु वह इस बात से भी बहुत प्रसन्न था कि उसने ध्रुपद शैली को हरिदास स्वामी ऐसे अद्वितीय विद्वान से सीख कर उसकी घोर तपस्या की थी और उसको कलात्मक सौंदर्य से सुशोभित किया था। ऐसा विलक्षण गायक किसी भी संगीत की सुन्दर व्याख्या कर सकता था और उसे अनोखा बना सकता था। मुहम्मद गौस प्राचीन ध्रुपद के विशेष गुणों से परिचित थे। वह सहृदय और सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति थे और भारतीय संस्कृति और संगीत के पारखी थे। उन्हें इस बात की प्रसन्नता कि थी तानसेन को ऐसा धुरन्धर गुरु मिला था जिसने उसे प्राचीन संगीत के रहस्यमयी भेदों की ओर प्रेरित किया था। हरिदास स्वामी ही ने तानसेन की प्रतिभा को नई आँखे दीं और उसकी कल्पना और विचारों को नई उड़ान देकर उसके संगीत को प्रामाणिक तथा प्रगतिशील बनाया। यदि तानसेन के संगीत में अपूर्ण शक्ति न होती तो सेनिया परम्परा जीवित न रह पाती और न उसका इतना जबरदस्त प्रभाव तानसेन की शिष्य-परम्परा पर ही पड़ता। ध्रुपद शैली के आधिपत्य की जिम्मेदारी तानसेन की व्यक्तिगत प्रतिभा थी जिसने ध्रुपद संगीत की प्रामाणिकता को बहुत काल तक सुरक्षित ही नहीं, जीवित भी रखा और उसको प्रगति के पथ की ओर प्रेरित किया।

यथार्थ में तानसेन आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का जन्मदाता और अन्वेषक अथवा मार्गदर्शक था। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का आरम्भ अकबर के युग से अथवा तानसेन के ध्रुपद संगीत ही से होता है। हरिदास स्वामी तानसेन शिष्य-परम्परा इस ध्रुपद शैली की पथ-प्रदर्शक बनी और उसे जीवित रखा। सेनिया घराने के मान-सम्मान का कारण भी यही है। अकबर के व्यक्तित्व का भी तानसेन संगीत और तानसेन परम्परा पर काफी प्रभाव पड़ा। यदि वह संगीत का रसिक और पारखी न होता तो उस काल के ध्रुपद-संगीत को इतना जबरदस्त प्रोत्साहन न मिलता। एक मुगल शासक होते हुए भी वह भारतीय संस्कृति का सहृदय समर्थक और प्रशंसक था। उसका अपना विचार था कि भिन्न-भिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का उचित संश्लेषण हो। उसका "दीने इलाही" उसके समदर्शी होने का सुबूत था। सांस्कृतिक संश्लेषण के महत्व को वह भली-भाँति जानता था और उसकी एकता के सिद्धान्त को भी पहचानता था। बादशाह अकबर के इतने घनिष्ट संपर्क में आकर यह असम्भव था कि तानसेन अपने विचारों में उदार चित्त और समदर्शी न बनता। तानसेन की सबसे बड़ी देन यह थी कि उसने

प्राचीन ध्रुपद शैली को सुव्यवस्थित और परिमार्जित बनाकर उसे संगीत की कला के उच्च शिखर पर सुशोभित किया। साथ-साथ उसने ध्रुपद शैली की परम्परा को भी स्थापित किया। ध्रुपद तानसेन की संगीत-कला से प्रभावित और सुशोभित होकर सर्वश्रेष्ठ संगीत-कला के शिखर पर विराजमान हो गया। इसी ध्रुपद ने आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की मजबूत नींव डाली और उसके कला-सम्बन्धी विचारों का प्रभाव बाद में ख्याल शैली पर भी पड़ा।

तानसेन ने एक हजार से अधिक ध्रुपदों की रचना की जो अपने संगीत की प्रामाणिकता, अपने रागों की निर्दोषिता और अपने शब्दों और भावों के लालित्य और चमत्कार के लिए अबतक प्रसिद्ध हैं। सेनिया घराने के गायकों को इनमें से कुछ ध्रुपद याद हैं। परन्तु यह भी हुआ कि कुछ गायकों ने तानसेन के नाम से भी कुछ ध्रुपद गढ़े और उनमें तानसेन का नाम जोड़ दिया। ऐसी रचनाओं को हम प्रामाणिक न मान कर संदिग्ध कृति लेख की श्रेणी ही में रखेंगे और उनका मूल्यांकन इसी प्रकार करेंगे। परन्तु तानसेन के असली ध्रुपदों की बात ही निराली है। इनमें बहुत सी रचनायें ऐसी हैं जिनमें ईश्वर की स्तुति, आराधना और भक्ति के भावों का वर्णन है और देवताओं की भी चर्चा है। कुछ ध्रुपद ऐसे भी हैं, जिनमें राजाओं और महाराजाओं की भी प्रशंसा की गयी है। यह बताना भी आवश्यक है कि तानसेन की कुछ रचनाओं में वेदान्त, भक्ति और सूफीमत के विचारों और उनकी सूक्ष्म कल्पनाओं का भी सम्मिश्रण है।

तानसेन ने ध्रुपद-संग्रीत को नये-नये आभूषणों से सुशोभित किया जिनमें मींड और गमक का अधिक महत्व था। उसकी रचनाओं में एक विशेष भावात्मक चमत्कार था और एक निराली रचनात्मक विलक्षणता थी। अकबर के गुरु होने के नाते उसको बहुत अधिक सम्मान मिला और उसकी ध्रुपद शैली सर्वश्रेष्ठ मानी गई। वास्तव में उसकी प्रतिभा विलक्षण और बेजोड़ थी। ध्रुपद के संगीत को उसने अपनी कला से सुशोभित किया और उसे परिमार्जित भी बनाया। भारतीय वाद्यों को भी उसकी सृजनात्मक प्रतिभा की देन मिली। हिन्दुस्तानी सरस्वती वीणा और रबाब (रुद्रवीणा) इन दोनों का आविष्कार उसी ने किया। उसकी शिष्य-परम्परा ने ध्रुपद गायन और वाद्य संगीत, वीणा, रबाब—दोनों को सुरक्षित और जीवित रखा। आगे चलकर इस संबन्ध में हम कुछ और कहेंगे।

अकबर के युग से लेकर आधुनिक युग तक तानसेन-परम्परा के बहुत से संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीत के सर्वश्रेष्ठ कलाकार माने गये हैं। सेनिया

घराने की प्रतिष्ठा और उसके आधिपत्य को संगीतज्ञों से मान्यता मिली है। उसके उच्च कोटि के संगीत को सदैव आदर-सम्मान मिला है। तानसेन की शिष्य-परम्परा भी कई नयी रागों से सम्मानित हुई है जिनमें से कुछ के नाम हैं बिलासखानी टोड़ी, तिलककामोद, पूरिया कल्यान, कौशिकी कान्हरा इत्यादि। हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत वीणा, रबाब, सुरसिंगार, सरोद और सितार ऐसे वाद्यों की शैलियाँ भी ऐसी परम्परागत संगीत परम्परा के आधार पर उन्नतिशील और प्रगतिशील होती चली गईं। इसी तरह देहली के शाह सदारंग ने जो तानसेन घराने का था और ध्रुपद परम्परा का अनुयायी था, ध्रुपद और कव्वाली शैलियों के अद्‌भुत सम्मिश्रण से ख्याल की शैली का आविष्कार किया। परन्तु फिर भी ख्याल शैली के गायक और विशेषज्ञ उच्च कोटि की ध्रुपद शैली का सदैव आदरपूर्वक सम्मान करते थे। आजतक सब गायक और वादक तानसेन को हिन्दुस्तानी संगीत का अन्वेषक अथवा मार्गदर्शक मानते हैं। अभी भी बहुत से गायक तानसेन का नाम लेकर श्रद्धा से अपना कान छूते हैं। भक्ति के क्षेत्र में जैसे किसी संत का आदर होता है और कविता के क्षेत्र से जैसा सूर और तुलसी का सम्मान होता है, उसी तरह आज भी इस देश के संगीतज्ञ और संगीत-भक्त तानसेन के प्रति गहरी श्रद्धा की भावना रखते हैं। आज भी हिन्दुस्तानी संगीत में बहुत से घरानों की शिष्य-परम्परा मौजूद है। इन घरानों में आपस में कितना भी मतभेद हो परन्तु वह सब एक बात में सहमत हैं। सब मिलकर एक आवाज से तानसेन के संगीत की प्रतिष्ठा का गुणगान करते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत की एकता का सिद्धान्त तानसेन संगीत की परम्परा में केन्द्रित है। संगीत की शैलियों की विभिन्नता और विविधता से इस सैद्धान्तिक और प्रामाणिक संगीत पर कोई आँच नहीं आती। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत अपने पिछले मार्गदर्शकों को नहीं भूल सकती। आगे बढ़ना ठीक है परन्तु पिछे मुड़कर देखना भी आवश्यक है कि हम कितनी दूर आ गये हैं और अब किस दिशा में जा रहे हैं।

सच तो यह है कि यदि हम हिन्दुस्तानी संगीत का पुनर्जागरण और उसकी उन्नति चाहते हैं तो हम तानसेन के युग से लेकर अब तक के ध्रुपद-संगीत की उपेक्षा नहीं कर सकते। न हम ध्रुपद-शैली के मूल सिद्धान्तों का ही परित्याग कर सकते हैं जो विशेष रूप से हमारे संगीत से संबन्धित हैं और जो एक तरह से उसका सैद्धान्तिक आधार भी मानते हैं। यह धारणा गलत है कि ध्रुपद एक प्राचीन अप्रचलित शैली है जो अब हमारे मतलब की नहीं

है। जैसा पहले बताया गया है, संगीत की प्राचीन परम्परा का तिरस्कार करके और आधुनिकता और आधुनिकीकरण के नारे लगाकर न तो हम अपने संगीत का पुनर्जागरण कर सकते हैं और न उसकी मौलिकता और प्रामाणिकता की व्याख्या ही कर सकते हैं। संगीत के आधुनिक वादों और विचारों के वश में होकर हम हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परागत प्रतिष्ठा का समर्थन किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते। यह तो ऐसा ही होगा कि कालिदास, सूर और तुलसी के काव्य को हम आधुनिक हिन्दी कविता पर कुर्बान कर दें। प्राचीन ध्रुपद संगीत की उपेक्षा करके हम अपने संगीत को प्रगतिशील नहीं बना सकते। आधुनिक अवांछनीय प्रयोगों से न तो हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति हो सकती है और न उसकी कोई ठीक सेवा ही हो सकती है। तानसेन-परम्परा और उसके संगीत से आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को नई प्रेरणा ही मिल सकती है। ध्रुपद हमारे संगीत की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का सुन्दर प्रतीक है।

## वाराणसी की तानसेन परम्परा

काशी भारतवर्ष की सबसे अधिक पवित्र भूमि मानी गई है। अध्यात्म, धर्म और विद्या का केन्द्र होने के अतिरिक्त यह हिन्दुस्तानी संगीत का भी प्रमुख केन्द्र मानी गई है। कुछ लोगों का कहना है कि तानसेन का असली नाम रामतनु था और उसका जन्म बनारस में हुआ था और वहीं उसका पालन-पोषण भी हुआ था। लोगों का ऐसा विश्वास है कि उसका पिता मकरंद पाण्डे एक कथक अथवा कथावाचक ब्राह्मण था जो बनारस के मन्दिरों में पौराणिक कथाओं को गाकर सुनाया करता था। इसके बाद ही उसे हरिदास स्वामी से प्राचीन संगीत में अथवा गंधर्व विद्या में शिक्षा मिली। सूफी मत के सैद्धान्तिक विचारों का ज्ञान उसे ग्वालियर के मुहम्मद गौस से प्राप्त हुआ था। यह भी कहा जाता है कि सम्राट अकबर ही ने उसे तानसेन नाम दिया था और देहली दरबार में उसकी नियुक्ति करके उसे अपना पूज्य गुरु बनाया था। उसकी शिष्य-परम्परा को भी देहली के दरबार ने सम्मानित किया था। उसकी परम्परा के संगीतज्ञों का बनारस में बराबर आना-जाना रहा और वह बनारस को संगीत की पुण्य भूमि मानते थे।

अठारहवीं शताब्दी के अंत में मुगल-साम्राज्य का अंत हो रहा था। उस समय तानसेन के वंशज तीन घरानों में बँट गये थे। वह घराना जो तानसेन के सबसे बड़े लड़के सुरत सेन के नाम से संबन्धित था, जयपुर में

जाकर बस गया। इस घराने की शिष्य-परम्परा में ध्रुपद-गायक और सितार-वादक दोनों थे। तानसेन के सबसे छोटे लड़के विलास खाँ के घराने और उसके दामाद मिश्री सिंह के घराने में गहरा संपर्क था। विलास खाँ के घराने के गायक ध्रुपद की "शुद्ध बानी" के विशेषज्ञ थे और वाद्यों में उन्होंने रबाब ही में विशेष कुशलता प्राप्त की थी। मिश्री सिंह के वंशज वीणा के और ध्रुपद की डागुर और खंडार बानियों के विशेषज्ञ थे। आठरहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में जाफ़र खाँ, प्यार खाँ और बासत खाँ ये तीनों भाई विलास खाँ के घराने के प्रमुख और प्रतिनिधि माने गये। यह ध्रुपद-गायन भी करते थे और रबाब भी बजाते थे। इन दोनों घरानों के संगीतज्ञों ने देहली छोड़ कर बनारस ही को अपना-अपना निवास-स्थान बनाया। बनारस के कबीरचौरा में यह सब रहते थे। ये संगीतज्ञ लखनऊ-दरबार से भी संबन्धित थे। दुर्गा-पूजा के अवसर पर ये सब बनारस में जमा होते थे। काशी-नरेश भी इन्हें जब बुलाते थे, तब ये आते थे और श्रोताओं के सामने अपना संगीत-चमत्कार दिखाते थे। इन्हें काशी-नरेश ने जमीन इत्यादि भी दे रखी थी।

जाफ़र खाँ एक अद्वितीय रबाबिये थे। इनका रबाब एक खास ढंग से बनाया गया था। जोड़ और तार परन के बाज में वह अपना जवाब नहीं रखते थे। विलम्बित आलाप और झाला वीणा के बाज की विशेषतायें थीं। कभी-कभी काशी और लखनऊ के दरबारों में कई बार जाफर खाँ और निर्मल शाह साथ मिलकर और प्रतियोगिता की भावना से भी प्रोत्साहित होकर बजाये। परन्तु ऐसे तलाऊपर के बाज में कोई मलिनता अथवा द्वेष का भाव नहीं होता था। उत्तम कला-कौशल ही ऐसे वादन का उद्देश्य होता था और इस तरह श्रोतागण संगीत का बड़ा आनन्द उठाते थे।

जाफर खाँ ने सुरसिंगार ऐसे वाद्य का भी आविष्कार किया था। इनके दूसरे भाई प्यार खाँ ने इस नये वाद्य में बड़ी असाधारण प्रवीणता प्राप्त की थी और उसके पहले के बाज को कला के नये आभूषणों से सुशोभित किया था। वह इस वाद्य के बेजोड़ कलाकार माने गये हैं। निर्मलशाह के निधन के पश्चात् उनके भतीजे उमराव खाँ ही सर्वश्रेष्ठ बीनकार माने जाते थे। इन्होंने ही सुरबहार का आविष्कार किया और गुलाम मुहम्मद खाँ ऐसे प्रसिद्ध वादक को तैयार किया। प्यार खाँ के छोटे भाई बासत खाँ धुरन्धर ध्रुपदिये और रबाबिये थे और देश भर में उनकी ख्याति थी। बनारस में बहुत बार प्यार खाँ के सुरसिंगार और उमराव खाँ की वीणा के दंगल भी

हुए। बासत खाँ ने अपने संगीत-अध्ययन के लिए बनारस के पंडितों से संस्कृत भी सीखी थी। कलकत्ते के राजा हरकुमार टैगोर की "संगीत सभा" की ओर से उन्हें "संगीत-नायक" की उपाधि भी दी गयी थी। गदर के पश्चात लखनऊ के दरबार का अंत हुआ और वह अपने दो सुयोग्य और होनहार लड़कों, अली मुहम्मद खाँ (सुरसिंगार वादक) और मुहम्मद अली खाँ (ध्रुपदिये और रबाबिये), को साथ लेकर गया में जाकर बस गये। जाफर खाँ के लड़के सादिक अली खाँ और उनके भाई मिसर अली खाँ काशी-नरेश के दरबार में सम्मिलित हो गये।

सादिक अली खाँ संगीत-शास्त्र का विद्वान था और रबाब बजाने में बहुत निपुण था। परन्तु वह वीणा भी बहुत अच्छा बजाता था। बनारस के संस्कृत के विद्वानों से भी उसका अच्छा संपर्क था और वह संस्कृत के अलावा फारसी भी बहुत अच्छी जानता था। कहा जाता है कि लड़ीजोड़ और लड़-गुथाव के बाज का वह विशेषज्ञ था। तार परन में तो वह अच्छे-अच्छे पखा-वाजियों को पराजित कर सकता था। वह एक साधु अथवा सन्त के समान अपना जीवन व्यतीत करता था और बहुत धार्मिक पुरुष था। उसको लोक-प्रिय संगीत में कोई रुचि नहीं थी। रबाब की शिक्षा उसने केवल अपने छोटे भाइयों को दी। परन्तु ध्रुपद-गायन, वीणा और सितार में उसके बहुत से शिष्य थे। सितार में उसके प्रमुख शिष्य एक बाजपेई जी नाम के व्यक्ति थे। इसी तरह वीणा में उसके अच्छे शिष्यों में महेशचन्द्र सरकार और मिठाई-लाल जी नाम के व्यक्ति थे। सुनते हैं कि जब रामकृष्ण परमहंस बनारस की तीर्थयात्रा करने आये तो महेश सरकार की वीणा सुनकर वह समाधि में चले गये।

सादिक अली खाँ की मृत्यु के पश्चात् "संगीत नायक" बासत खाँ के सबसे बड़े लड़के अली मुहम्मद खाँ काशी-नरेश के दरबार के मुख्य दरबारी कलाकार नियुक्त हो गये। उसी समय बासत खाँ का देहान्त हुआ था और इस कारण वह बनारस ही में आकर बस गये। वह काशी नरेश के महल के पास ही रामनगर में रहते थे। अली मुहम्मद खाँ बड़े खुले-डुले, उदार चित्त व्यक्ति थे और वह घण्टों अपना सुरसिंगार अपने शिष्यों के सामने बजाया करते थे। इस तरह वह अपने शिष्यों को उच्चकोटि के संगीत की ओर प्रेरित करते थे। वह जानते थे कि उत्तम संगीत सुनना भी उतना ही आवश्यक और लाभदायक है जितना संगीत की शिक्षा पाना। प्रत्येक घराने का यह भी काम रहा है कि वह अपने शिष्यों को संगीत सुनाये और सुनवाये जिससे

उनके कान सुरीले हो जायें और वह उत्तम संगीत ही के लिए लालायित रहें। यह भी एक अच्छे घराने की संगीत-शिक्षा का अनिवार्य अंग होता था। सादिक अली खाँ ऐसे विद्वान का वादन निरन्तर सुनना उनके भावुक शिष्यों के लिए बड़े सौभाग्य की बात थी। उन्हें रागों का बड़ा अच्छा ज्ञान था और वह उनमें नई-नई तानें बगैर दुहराये हुए घण्टों बजा सकते थे।

सुरसिंगार में भी उन्होंने कुछ लोगों को तैयार किया था जिनमें कुछ के नाम थे पन्नालाल जैन, वैद्य अर्जुनदास और गया प्रसाद मिश्र। इस वाद्य में उनके सबसे सुयोग्य और प्रवीण शिष्य जलंधर के सैयद मीर नासिर खाँ थे। उन्होंने ध्रुपद-वीणा और सुरसिंगार में रामपुर के प्रसिद्ध बीनकार वजीर खाँ को भी शिक्षा दी थी जो उनसे मिलने बनारस अकसर आया करते थे। अली मुहम्मद खाँ ने बंगाल के नायक हरिनारायन मुकर्जी को भी बहुत से ध्रुपदों और सरगमों की शिक्षा दी थी। एक और बंगाली रईस ने जिनका नाम ताराप्रसाद घोष था, इनसे शिक्षा ली थी। यह महाशय इसलिए मशहूर हो गये थे कि यह गायकों और वादकों को बहुत पैसा और इनाम दिया करते थे। तारा प्रसाद घोष ने अली मुहम्मद खाँ से काफी सीखा भी।

अली मुहम्मद खाँ के छोटे भाई मुहम्मद अली खाँ जो गया में रहते थे, उनसे मिलने बनारस आया करते थे और उनसे रबाब की शिक्षा लिया करते थे। यह दोनों भाई और संगीतज्ञों के आगे, जो अकसर बनारस आया करते थे, अपने संगीत-कला को प्रस्तुत करत थे और उन्हें बहुत हार्दिक प्रशंसा मिला करती थी। यह दोनों भाई अपने-अपने ढंग के बेजोड़ वादक थे। अली मुहम्मद की मृत्यु के बाद उनके भाई मुहम्मद अली खाँ ध्रुपदिये और रबाबिये ही इस घराने के आखिरी कलाकार थे जिन्होंने रामपुर और गिद्धौर ऐसी रियासतों में रह कर अपने घराने की प्रतिष्ठा का पालन किया। सेनिया घराने के और गायक और वादक रामपुर और जयपुर ऐसी रियासतों में जाकर बस गये थे। इसलिए बनारस में धीरे-धीरे तानसेन घराने की परम्परा का अंत हो गया। इन उस्तादों के शिष्यों में केवल हरिनारायन मुकर्जी ऐसे ध्रुपदिये और मिठाईलाल ऐसे बीनकार ही बच रहे थे जिन्होंने बनारस की ध्रुपद-परम्परा के प्रसिद्ध गायकों और वादकों की कला का चमत्कार थोड़ा-बहुत देखा था और जिनके कानों में उस संगीत के स्वर कई वर्षों तक पड़े थे।

## घरानों का विस्तार

उत्तर प्रदेश में बनारस और रामपुर सेनिया घराने की परम्परा के

मुख्य केन्द्र बने। आधुनिक युग में रामपुर के दरबार की ख्याति इस सम्बन्ध में काफी हुई जिसके बारे में आगे चलकर हम कुछ कहेंगे।

अलाउद्दीन खिलजी के बाद हम दो ही घरानों की चर्चा सुनते हैं। (1) पहला घराना कलावंत घराना था जिसको बैजू बावरा ने स्थापित किया था। इस घराने की सारगर्भित व्याख्या और उसका व्यापक प्रचार नायक गोपाल ही ने किया था। इस विशेष संगीत परम्परा में ध्रुपद-शैली और सरस्वती वीणा की वाद्य शैली के साथ इनका रागालाप ध्रुपद की रचनाओं के साथ सम्मिलित हो गया। (2) दूसरा था कव्वाल घराना जिसको अमीर खुसरू ने स्थापित किया था। इस घराने का प्रचार अमीर खुसरू ने और उसके बाद जौनपुर के सुलतान हुसैन शर्की ने किया था।

इस घराने के अन्तर्गत और भी शैलियों का विकास हुआ। कव्वाली शैली की रचनायें, सितार-वादन की शैली और तराना इत्यादि सब इसमें सम्मिलित थे। बाद में एक तीसरे घराने का भी विकास हुआ जिसमें विशेष रूप से शहनाई-वादक और तबला-वादक थे। बाइयों और पेशेवर गाने वालियों और नाचने वालियों की संख्या बढ़ जाने से साथ-संगत करने वाले सपरदियों के चौथे घराने का भी जन्म हुआ। इन आखिरी दो घरानों के लोग ढाडी और मीरासी कहलाने लगे।

देहली-दरबार में सौ के लगभग संगीत के भिन्न-भिन्न कलाकार थे जिनमें ढाड़ी और मीरासी भी थे। पाठन बादशाहों के शासन-काल के बाद संगीत के स्वर्णयुग में हरिदास स्वामी ऐसे धुरन्धर संगीतज्ञ और पहुँचे हुए संत मौजूद थे। इसी काल में बैजू बावरा की स्थापित की हुई ध्रुपद-शैली और उसका कलात्मक चमत्कार लोगों के सामने आया। इस तरह ध्रुपद गायन राज दरबारों में बहुत सम्मानित किया गया।

जैसा पहले बताया जा चुका है, हरिदास स्वामी के संगीत-ज्ञान के प्रभाव और प्रोत्साहन से ग्वालियर के राजा मान तोमर ने अपने दरबार में चार विद्वानों और नायकों की एक विशेष संस्था स्थापित की। ये चार नायक भानु, चर्जू, ढुंढी और चंचल शशि के नाम से प्रसिद्ध हुए। यथार्थ में घरानों का आरम्भ हरिदास स्वामी की संगीत-परम्परा के प्रोत्साहन से हुआ। ये चारों नायक कलावन्त कहलाये और कलावन्तों का एक विशेष वर्ग बन गया। हम यह भी जानते हैं कि अकबर के राज्यकाल में तानसेन ही हरिदास स्वामी का सर्वश्रेष्ठ शिष्य माना गया। तानसेन ही संगीत के इस सांस्कृतिक आन्दोलन का अगुआ बना और गायकों और नायकों के शिष्य

भी उसके शिष्य बन गये। ध्रुपद की शैली सर्वश्रेष्ठ मानी गई। यह भी मान लेना चाहिए कि तानसेन ने ईरानी संगीत के प्रभाव से भी अपने संगीत को उचित ढंग से सुशोभित किया। अपने संगीत की महानता के कारण ही वह अपने समकालीन संगीतज्ञों का भी नेता और मार्ग-दर्शक बना जिनमें से कुछ के नाम थे (1) खुदाबख्श, (2) मसनद अली, (3) रामदास, (4) चाँद खाँ, (5) सूरज खाँ और (6) जगपत (मृदंग वादक)।

हरिदास स्वामी के प्रथम श्रेणी के कुछ शिष्यों के नाम थे (1) बृज चंद, (2) गोपाल लाल और (3) अजमेर के सिंहलगढ़ का राजा समोखन सिंह जी जो उस समय का सर्वश्रेष्ठ वीणा-वादक माना जाता था। अकबर के काल ही से प्रसिद्ध संगीतज्ञों के वंशज और उनकी शिष्य-परम्परा अपने-अपने घराने स्थापित कर रहे थे। यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि तानसेन के संगीत का और उसके शक्तिशाली व्यक्तित्व का जबरदस्त प्रभाव इन घरानों के व्यावहारिक अथवा क्रियाशील संगीत पर पड़ा। आगे चलकर संगीत की और प्रायोगिक शैलियों पर भी उसके संगीत की छाप पड़ी।

तानसेन की मृत्यु के पश्चात् सेनियों के तीन विशेष घरानों का जन्म हुआ। पहला घराना तो तानसेन के सबसे छोटे लड़के बिलास खाँ (तान तरंग खाँ) के नाम से चला। यह गौड़हार बानी का सबसे प्रसिद्ध घराना माना गया।

दूसरा घराना तानसेन के एक दूसरे पुत्र सुरत सेन के नाम से बना जो डागुर बानी का सर्वश्रेष्ठ गायक माना जाता था। उसके वंशज जयपुर में जाकर बस गये जहाँ पर उनकी शिष्य-परम्परा फलती-फूलती रही।

तीसरा घराना मिश्री सिंह का था जो महाराज समोखन सिंह का पुत्र था और जिसका विवाह तानसेन की सुपुत्री सरस्वती देवी से हुआ था। इस घराने के वादक ने वीणा के सबसे अधिक प्रतिष्ठित घराने की स्थापना की। इस घराने के संगीतज्ञों ने डागुर और खंडार बानियों के ध्रुपद-गायन में भी असाधारण कुशलता प्राप्त की।

इन तीन सेनिया घरानों के अलावा मथुरा में बृजचंद और सूरदास ने भी अपने-अपने घराने बनाये जिनके शिष्यों में बहुत से ब्राह्मण पंडित भी थे। इसी तरह चाँद खाँ और सूरज खाँ ने भी पंजाब में तिलवंडी के ध्रुपद घराने को स्थापित किया था जिसको आगे चलकर बहुत ख्याति मिली।

हम एक और घराने के बारे में सुनते हैं और वह था अकबर के युग में हाजी सुजान खाँ का ध्रुपद-धमार शैली का घराना। हाजी सुजान खाँ

आगरा ख्याल घराने के पूर्वज अथवा आदि पुरुष माने गये हैं और जिनके वंशज घघ्घे खुदाबख्श ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त में आगरा घराने को स्थापित किया था। इस घराने को शाहजहां के राज्य-काल में बहुत ख्याति मिली। परन्तु यह भी हम जानते हैं कि औरंगजेब के राज्य-काल में हिन्दुस्तानी संगीत को बहुत क्षति पहुँची और उसकी अवनति हुई। इसका परिणाम यह भी हुआ कि गायकों और वादकों का समाज में मान-सम्मान बहुत कम हो गया और उन्हें अपनी जीविका-निर्वाह के लिए आर्थिक संकट भी भोगना पड़ा। संगीत का यह ऐतिहासिक क्रम जिसमें उत्थान और पतन की उलट-पुलट होती है उसकी प्रगति और उसकी परिवर्तनशीलता को निर्धारित करता है। कला उन्नति और अवनति की दशाओं के बीच से गुजरती है और प्रगति के पथ पर चलती जाती है। संगीत की इस अवनति के बाद उसके भाग्य का सितारा फिर से चमका जब मुहम्मद शाह रंगीले का जमाना आया। अठारहवीं शताब्दी में संगीत फिर से सँवारा और सजाया गया। देहली दरबार को संगीतज्ञों ने फिर से सुशोभित किया और गायक और वादक बड़ी संख्यामें देहली में आकर जमा हो गये। इस काल में दरबार के संपर्क से संगीत में बड़ी क्रान्ति हुई। ध्रुपद शैली के होते हुए एक और शैली का जन्म हुआ और उसके कलात्मक निर्माण में एक विलक्षण प्रतिभा वाले और अपूर्व बुद्धि वाले संगीतज्ञ ने अपना हाथ लगाया। इस शैली को हम ध्रुपद शैली की भावात्मक और कलात्मक प्रतिक्रिया ही मानेंगे और हिन्दुस्तानी संगीत की परिवर्तनशीलता का सबूत भी मानेंगे।

## सदारंग

हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास का अध्ययन करके हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि नियामत खाँ बीनकार जो तानसेन घराने के थे और जिन्हें मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में "शाह सदारंग" की उपाधि मिली थी, तानसेन के बाद सबसे बड़े प्रतिभाशाली संगीतज्ञ माने गये हैं। तानसेन के बाद एक बड़े लम्बे परिवर्तन-काल में जब हमारे संगीत की शैलियों में क्रान्ति अथवा उथल-पुथल हो रही थी, वह प्रगतिशील संगीत के एक स्तम्भ के समान थे। अठारहवीं शताब्दी में संगीत के इस नये युग में वह हमारे संगीत की क्रान्तिकारी परिवर्तनशीलता के अन्वेषक माने गये हैं। सेनिया परम्परा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि होते हुए उन्होंने वीणा-वादन और धमार की शैली में भी कुछ आविष्कार किये। परन्तु इसके साथ-साथ उन्होंने एक और बड़ा

काम किया। कव्वाल घराने को नई, मजबूत नींव देकर उन्होंने ख्याल ऐसी रोचक शैली का आविष्कार किया जिसको हम ध्रुपद शैली की केवल प्रतिक्रिया ही नहीं कह सकते। आगे चल कर यह शैली ध्रुपद शैली की प्रतिद्वन्दी बन गयी और कुछ ख्याल-गायकों ने ध्रुपद-परम्परा का बिना सोचे-समझे विरोध किया और ध्रुपद की शैली के सैद्धान्तिक अनुशासन की भी उपेक्षा की। एक तरफ से कव्वाल बच्चों का घराना ही ख्याल की इस नई शैली का जन्मदाता था। इस शैली का बहुत प्रभाव ग्वालिअर, आगरा और देहली के घरानों पर पड़ा।

अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में मुगल साम्राज्य के पतन होने के बाद नये-नये शासक राजा और सूबेदार स्वतन्त्र बन गये और देहली साम्राज्य की शक्ति क्षीण पड़ गयी। देहली बादशाह शक्तिहीन बन गया और वह केवल नाममात्र का शासक रह गया। देहली दरबार का भी जब पतन हो गया और उसका बोल-बाला जाता रहा दो उसे आर्थिक संकट भी हुआ। संगीतज्ञों के संरक्षण में भी कमी आ गयी। गायक और वादक और राजदरबारों का आश्रय ढूँढ़ने लगे। उस समय सेनिया घराने के संगीतज्ञों ने, जो दूसरे दरबारों का सहारा ढूंढ़ रहे थे, वाद्य संगीत की ओर अधिक ध्यान दिया और उसमें उन्होंने बहुत कुशलता भी प्राप्त की। यह संगीतज्ञ ध्रुपद-परंपरा ही के अनुयायी थे परन्तु समय को देखकर उन्हें अवसरवादी बनना पड़ा और वाद्य संगीत में कड़ा परिश्रम करके उन्होंने उसे ही प्राचीन ध्रुपद शैली का प्रतिनिधि बनाया।

तो इस तरह बिलास खाँ के और नियामत खाँ के वंशज विशेष रूप से बनारस में जाकर बस गये। वह लखनऊ के दरबार और आस-पास के दरबारों में भी नियुक्त हो गये। यह पूर्वी संगीत कलाकार कहलाये।

दूसरे वर्ग के संगीतज्ञ जो सुरतसेन के घराने के थे जयपुर में जाकर बस गये। इनको पश्चिमी संगीतकलाकार के नाम से पुकारा गया।

जिस तरह सैनिया घराने के पूर्वी संगीतज्ञ वीणा और रबाब बजाने के अलावा ध्रुपद गायन भी करते थे, उसी तरह सेनिया घराने के पश्चिमी संगीतज्ञ सितार-वादन और वीणा-वादन के अलावा ध्रुपद-गायन भी करते थे।

इन दो घरानों के अलावा कव्वाल घराने के संगीतज्ञ कुछ समय तक देहली दरबार से भी संबंन्धित रहे।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य संगीत परम्परा के भिन्न-भिन्न घराने स्थापित हो चुके थे। प्रमुख घरानों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं:—

(1) रबाब और ध्रुपद का सेनिया घराना जिनमें बनारस और लखनऊ के संगीतज्ञ सम्मिलित थे और जिससे विशेषरूप से तीनों भाई जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत खाँ सम्बन्धित थे।

(2) लखनऊ के निर्मल शाह का सेनिया घराना।

(3) बड़े मुहम्मद खाँ का कव्वाल बच्चों वाला लखनऊ और ग्वालियर का घराना।

(4) ग्वालियर का ख्याल घराना जिसे तीनों भाइयों हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ ने स्थापित किया।

(5) आगरे का ध्रुपद, धमार और ख्याल का घराना जिसे अकबर के युग के हाजी सुजान खाँ ने सबसे पहले स्थापित किया था।

(6) बेनिया का ध्रुपद का घराना जिसको लखनऊ के हैदर खाँ ने स्थापित किया था।

(7) विष्णुपुर का ध्रुपद का घराना जिसको बहादुर खाँ सेनिये ने स्थापित किया था।

(8) पंजाब में तिलवंडी का ध्रुपद का घराना।

(9) लाहौर का पंजाब का ख्याल घराना जिनके गायक सदारंग के शिष्य थे।

(10) अतरौली का ध्रुपद और ख्याल का घराना।

(11) बहराम खाँ ध्रुपद-गायक का ध्रुपद का डागुर बानी का घराना।

(12) सहारनपुर का सरोद-वादकों का घराना जिसको निर्मलशाह के लड़के उमराम के शिष्यों ने स्थापित किया था।

(13) जयपुर का सितार-वादन का घराना जिसको अमृत सेन ने स्थापित किया था।

(14) बासत खाँ के शिष्य नियामतुल्ला खाँ का सरोद का घराना।

(15) लखनऊ का सितार का घराना जिसको उमराव खाँ के शिष्य गुलाम मुहम्मद खाँ ने स्थापित किया था। इनके अलावा शायद और घराने भी रहे हों परन्तु उनके बारे में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं है।

## रामपुर का घराना

उत्तर प्रदेश में बनारस और लखनऊ के बाद रामपुर भी संगीत का केन्द्र माना गया है। रामपुर के संगीतज्ञों का नाम बहुत हुआ है। ध्रुपद के सेनिया घराने की चर्चा करते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि हम रामपुर दरबार के बारे में भी कुछ कहें ! बनारस और लखनऊ के दरबारों के बाद आधुनिक युग में रामपुर दरबार को बहुत ख्याति मिली। इस दरबार ने भी घरानेदार संगीत की व्याख्या की और उसके प्रचार के लिए बहुत कुछ किया। भारतवर्ष में संगीत से सम्बन्धित और प्रतिष्ठित और सम्मानित दरबारों में इसकी गणना होती थी। गदर के पश्चात् लखनऊ के बादशाह नवाब वाजिद अलीशाह लखनऊ छोड़कर कलकत्ते में जाकर रहने लगे। वह अपने साथ कुछ प्रतिष्ठित संगीतज्ञों को भी ले गये जिनमें कुछ के नाम थे बासत खाँ (गया और बनारस वाले नहीं)। सेनिया घराने के कासिम अली मियाँ, कालपी घराने के मुराद अली खाँ, ताज खाँ और कुछ ख्याल गायक भी।

रोहलखण्ड में पठानों की स्थापित की हुई रियासत रामपुर थी। आरंभ-काल से वहाँ के नवाबों को संगीत से सच्चा प्रेम रहा। रामपुर के नवाब कल्बेअली खाँ ने अपने दरबार में सुविख्यात बहादुर हुसेन खाँ को और उनके साथ अमीर खाँ को नियुक्त किया। बहादुर हुसैन खाँ सुविख्यात सुरसिंगार वादक प्यार खाँ सेनिये (जाफर खाँ और बासत खाँ के भाई) के भतीजे थे। और अमीर खाँ सेनिया घराने के बीनकार उमराव खाँ के सुपुत्र थे इन्हें वीणा और सुरसिंगार दोनों पर अधिकार था। परन्तु इसके साथ-साथ यह दोनों प्रसिद्ध वादक ध्रुपद-गायन शैली में भी पारंगत थे। बहादुर हुसैन खाँ एक विद्वान संगीतज्ञ थे और यही कारण था कि सहसवान के इनायत हुसैन खाँ भी, जो हद्दू खाँ की शिष्य-परम्परा में थे और माने हुए ख्याल-गायक थे, इनके शिष्य हो गये। परन्तु बहादुर हुसैन खाँ ने वाद्य संगीत ही की ओर अधिक ध्यान दिया और इसलिए वह अपने जमाने में एक अद्वितीय सुरसिंगार-वादक माने जाते थे। लोग कहते हैं कि उनके हाथ में एक अजीब मिठास थी जो और वादकों में नहीं मिलती थी। संगीत से अनभिज्ञ नासमझ श्रोता भी उनके सुरसिंगार-वादन को सुनकर मस्त हो जाते थे और झूमने लगते थे। यही कारण था कि उनके संगीत में इतना विलक्षण प्रभाव था। उनमें विद्वानों की विद्वत्ता और कलाकारों की भावुकता का संश्लेषण था। ऐसे भावुक और सहृदय वादक जिनमें और भी गुण हों, देखने और सुनने में नहीं मिलते। वादक होते हुए राग देस में उनका तराना बहुत

मशहूर हुआ है जिसे स्व० उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ बड़े चाव से गाते थे और अपने श्रोताओं को मुग्ध करते थे। बहादुर हुसैन खाँ का अलाप, उनकी राग-व्याख्या और उनकी अनोखी मनको लुभाने वाली भावमय शैली, इन सबका बहुत बड़ा प्रभाव श्रोतागण पर पड़ता था और वह एक अपूर्व आनन्द में डूब जाते थे। वह वास्तव में बड़े विद्वान और प्रतिभा संपन्न संगीतज्ञ थे जिनका संगीत बहुपक्षी था और वह सेनिया घराने के देदीप्यमान रत्न कलाकार थे। समकालीन संगीतज्ञों पर उनके संगीत का बहुत जबरदस्त प्रभाव पड़ा। यदि ऐसा न होता तो सहसवान के मशहूर ख्याल गायक इनायत हुसैन खाँ जो ग्वालियर के हद्दू खाँ के शिष्यों में थे, उनके शिष्य न बनते। अमीर खाँ और उनके सुपुत्र वजीर खाँ उनकी बड़ी श्रद्धा करते थे और उनके वाद्य संगीत का बहुत अधिक प्रभाव उन पर भी पड़ा। रामपुर के नवाब हैदर अली खाँ भी बहादुर हुसैन खाँ के चोटी के शिष्यों में थे और बहुत ही अच्छा सुरसिंगार बजाते थे। वह वजीर खाँ के संरक्षक थे और वह उनका बहुत आदर करते थे। नवाब हैदर अली खाँ के सुपुत्र सादत अली खाँ अर्थात् बिलसी के नवाब "छम्मन साहब" भी सुरसिंगार के अद्वितीय वादक थे और संगीत के विद्वान भी थे। उनके आगे वजीर खाँ बीनकार भी अपनी वीणा बजाने में कभी-कभी संकोच करते थे और उनका लोहा मानते थे। यह वहीं बिलसी के छम्मन साहब बहादुर थे जिनके मित्र बंबई के पंडित भातखण्डे और लखनऊ के राजा नवाब अली थे। इन्हीं भारत-विख्यात छम्मन साहब के यहाँ मशहूर भैया साहब गनपत राव (भैया जी) चौदह वर्षों तक रहे और हारमोनियम पर ठुमरी और दादरे के बोलों का अमृत बरसाया और गुण-चर्चा में अपना सारा समय बिताया। रामपुर उस जमाने में गायन, वादन और संगीत-चर्चा की त्रिवेणी माना जाता था और एक तरह से संगीत का प्रमुख केन्द्र बन गया था। यह वह जमाना था जब वाद्य संगीत अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था और बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ ऐसे वादकों ने उसे रामपुर दरबार में सम्मानित किया था और उसकी प्रतिष्ठा को ऊंचा उठाया था।

अमीर खाँ भी सेनिया घराने के प्रतिष्ठित वादक थे। परन्तु इनका गला भी बड़ा सुन्दर था और इन्हें गाने में भी बड़ी रुचि थी। लोग कहते हैं कि रामपुर में अमीर खाँ ने अपनी वीणा बहादुर हुसैन खाँ के सुरसिंगार के मुकाबले में कभी नहीं बजाई। बहादुर हुसैन खाँ के प्रति श्रद्धा की भावना रखने के अलावा अमीर खाँ उन्हें वाद्य संगीत का उच्चाधिकारी मानते थे

और संगीत में उनकी उत्कृष्ट बुद्धि का बहुत आदर करते थे। रिश्ते में ब्रहादुर हुसैन खाँ उनके बड़े भी लगते थे। अमीर खाँ दरबार में अधिकतर आलापते और ध्रुपद-धमार ही गाते थे। उस समय संगीत के व्यापक क्षेत्र में ठुमरी ऐसी लोकप्रिय और रोचक शैली का प्रवेश हो चुका था। कदर पिया, सदर पिया और सनद पिया लखनऊ के रंगीन नवाबी युग से सम्बन्धित रह चुके थे। लखनऊ का कथक नाच भी अपने नये बाँकपन के साथ संगीत के क्षेत्र में उतर चुका था। बिंदादीन के पूज्य पिता ठाकुरप्रसाद नवाब वाजिद अली शाह को कथक नाच की शिक्षा देते थे। कलमी चित्रों में अवध के रंगीन और भावुक नवाब कथक नाच के अंदाज में खड़े हुए दिखाये गये हैं। इसी दरबार में एक दिन नौ वर्ष के बालक बिन्दादीन कुदऊ सिंह ऐसे चोटी के पखावजवादक की संगत में नाचे ये और दर्शकों को आश्चर्य में डाल दिया था। यथार्थ में ठुमरी और कथक नाच का चोली-दामन का साथ था।

सुना जाता है कि लखनऊ दरबार के अंत होने पर ठुमरी-गायक सनद पिया बहादुर हुसैन खाँ के साथ रामपुर दरबार में चले गये थे। सनद पिया की कोयल की-सी मीठी आवाज थी और वह ठुमरी बड़े विलक्षण और भावुक ढंग से गाते थे और श्रोताओं का मन मोह लेते थे। उनकी ठुमरी की बंदिशें भी निराली थीं जिन्हें सुनकर श्रोतागण फड़क उठते थे। अमीर खाँ भी गले से सुरीले थे और कभी-कभी वह धमार इस सुन्दर ढंग से गाते थे कि दरबार में उनका गाना छा जाता था। वह अपने धमार-गायन को कला के नये-नये आभूषणों से सुशोभित करते थे और उनके गले में गमक और मींड का चमत्कार था।

सच पूछा जाये तो एक तरह से बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ ही ने रामपुर सेनिया घराने की मजबूत नींव डाली। इस घराने की ध्रुपद शैली और उसके वाद्य संगीत की शैली की कुछ विशेषतायें थीं जो उसके संगीत में प्रत्यक्ष हो जाती थीं। इन दोनों के व्यक्तित्व का प्रभाव भी रामपुर घराने के संगीत पर बहुत जबरदस्त पड़ा। इनके संगीत की अद्भुत प्रेरणा ने रामपुर के संगीत को अधिक प्रोत्साहित किया। वजीर खाँ की शिष्य-परम्परा भी सदैव इनकी अभारी रहेगी। आधुनिक युग में नवाब छम्मन साहब का सुरसिंगार और वजीर खाँ की वीणा यह दोनों वाद्य-संगीत की यादगारें थीं।

यह तो मानी हुई बात है कि प्रत्येक घराने की उन्नति उसकी शिष्य-परम्परा ही पर निर्भर होती है और वह उसके संगीत का सबसे अच्छा

अनुवाद भी करती हैं शिष्य-परम्परा ही अपने घराने की जीवन-शक्ति को सुरक्षित और जीवित रखती है और वह उसके महत्वपूर्ण अथवा मार्मिक हितों का समर्थन करती है। घरानेदार, व्यावहारिक संगीत पर प्राणमूलकता-वाद का सिद्धान्त ठीक उतरता है। उत्तम व्याख्या ही ऐसे संगीत की प्राण-शक्ति को जीवित रखती है। शिष्य ही अपने गुरु के संगीत का पुनर्जागरण करते हैं और उसे भविष्य की पूँजी बनाते हैं। केवल त्याग और आत्म-समर्पण की भावना किसी भी घराने को प्रगति की ओर अग्रसर नहीं कर सकती। यदि उसमें कर्तव्यपरायणता और उसके साथ-साथ प्रतिरोध की भावना नहीं होगी तो वह घराना अपने को जीवित नहीं रख सकता। आत्म-विश्वास और असीम साहस ही एक घराने को आगे वढ़ाता है और उसकी प्रतिष्ठा को स्थापित करता है। संगीतज्ञों की शिष्य परंपरा ही अपनी विद्या के ऋण को बाद में चुकाती है।

बहादुर हुसैन खां के परम शिष्य नवाब हैदर अली खाँ सुरसिंगार के प्रवीण वादक थे। उनके वादन का और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का बहुत अधिक प्रभाव उस काल के संगीत पर पड़ा। वह एक सभ्य, सुशिक्षित और अव्यवसायी संगीतज्ञ थे और व्यवसायी संगीतज्ञों के संरक्षक थे जिनमें वजीर खाँ का नाम सबसे पहले आता था। अपने सुपुत्र छम्मन साहब को उन्होंने सुरसिंगार की घरानेदार शिक्षा दी थी। संगीत के क्षेत्र में उनका सम्मान निराला था और उनकी प्रतिष्ठा अनन्य थी। उनके संगीत की अद्वितीयता अपने ही ढंग की थी और वह बहादुर हुसैन खाँ की वादन-शैली के सच्चे प्रतिनिधि थे। इनके जमाने में रामपुर में और भी अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ हुए जो बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ के शिष्य हो गये थे। इनमें से कुछ तो और घरानों के शिष्य भी थे। रामपुर आकर यह सगीतज्ञ इन दोनों प्रसिद्ध उस्तादों के शिष्य हो गये और उनकी शैलियों का ही उन्होंने कड़े परिश्रम से अभ्यास किया।

बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खान ने जिनको अपने घराने के संगीत की शिक्षा दी और उसकी पद्धति और उसकी शैली की ओर प्रेरित किया उनमें से कुछ के नाम यह थेः—

(1) मुहम्मद हुसैन (वीणा)

(2) नबी बक्स (वीणा)। यह सुयोग्य बीनकार थे और इनके सुपुत्र महमूद खाँ बड़े सुलझे हुए और विद्वान सितार-वादक थे जिन्होंने कुछ अव्यव-सायी, सभ्य व्यक्तियो को बरेली में सितार की शिक्षा दी थी। यह बड़े

सहृदय और हास्यप्रिय व्यक्ति थे जो नई-नई रचनाओं और बंदिशों को सुनने के हमेशा इच्छुक रहते थे और गायन-कला से इन्हें विशेष प्रेम था। अच्छा गाना वह घंटों सुन सकते थे। शिक्षा भी वह बड़ी अच्छी देते थे और अपने शिष्यों से बहुत प्रेम भी करते थे। खेद इस बात का है कि लोगों ने उनसे अधिक लाभ नहीं उठाया।

(3) कुतुबुद्दौला (सितार)

(4) इनायत हुसैन खाँ (ख्याल गायन) यह ग्वालियर के हद्दू खाँ की शिष्य-परम्परा में थे और सहसवान के रहने वाले थे। वास्तव में यह हद्दू खाँ के दामाद भी थे और रामपुर में बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य हो गये थे। कुछ बन्दिशें इन्होंने हद्दू खाँ से भी प्राप्त कीं। यह ख्याल और तराना बहुत अच्छा गाते थे। जिनमें से कुछ की रचना इन्होंने स्वयं की थी। अच्छी-अच्छी रियासतों में इन्हें मान-सम्मान भी मिला। इनके उच्च-कोटि के शिष्यों में रामकृष्ण बुआवझे, छज्जू खाँ, नजीर खाँ, खादिम हुसैन और मुश्ताक हुसैन आदि काफी प्रसिद्ध हुए हैं। इनके छोटे भाई अली हुसैन जो इन्हीं के शिष्य थे, एक प्रसिद्ध बीनकार हुए हैं। यह बहादुर हुसेन खाँ के भी शिष्य हो गये थे और बड़ौदा दरबार में नौकर हो गये थे। इनके एक और भाई मुहम्मद हुसैन भी थे जो रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ के दरबार में नियुक्त थे।

(5) अली हुसैन (वीणा)

(6) बाकर अली खाँ (ख्याल) कव्वाल बच्चों के घरानों के गायक जो बहादुर हुसैन खाँ का बहुत आदर करते थे।

(7) असद खाँ (सुर सिंगार)

(8) बुनियाद हुसैन खाँ (सारंगी)

(9) फिदा हुसैन खाँ (सरोद)—यह बड़े प्रसिद्ध सरोद-वादक थे और बहुत लाजवाब बजाते थे। लखनऊ के 1924 अथवा 1925 के अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन में इनका शानदार सरोद-वादन हुआ था और सब वाद्यों पर छा गया था। यह अपने जमाने के अद्वितीय सरोदिये थे। इस संगीत-सम्मेलन में उ० अलाउद्दीन खाँ अपने वाइलिन-वादन ही के लिए प्रसिद्ध हुए थे और उ० हाफिज अली खाँ अभी मैदान में नहीं आये थे। स्व० उ० हाफिज अली खाँ ने इन पंक्तियों के लेखक से कई बार इनकी बहुत प्रशंसा की और इनको स्मरण करके उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। वह यही कहते थे 'उनका क्या कहना। ऐसा तो सरोद फिर सुनने को ही न मिला।'

जिस सरोद वादक के मुख से यह प्रशंसा निकली थी वह स्वयं अपने जमाने का बेजोड़ और सुरीला सरोदिया था और एक भावुक कलाकार था।

इन सब संगीतज्ञों ने अलग-अलग शैलियों का प्रयोग करते हुए भी सेनिया घराने की संगीत-पद्धति के नियमों और सिद्धान्तों ही का पालन किया। इस तरह रामपुर का सेनिया घराना जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत खाँ के प्रतिष्ठित सेनिया घराने ही की एक शाखा थी जिसने अपने ही ढंग से सेनिया पद्धति की व्याख्या की।

## उ० वजीर खाँ

इस शताब्दी के प्रथम भाग में रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ ने संगीत की सेनिया परम्परा का संरक्षण करके उसे जीवित रखा। अमीर खाँ के सुपुत्र वजीर खाँ बीनकार इस दरबार के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ थे और उनका बहुत बोलबाला था। अपने पिता अमीर खाँ के समान वजीर खाँ एक कुशल वादक होने के अलावा, गायन कला से भी परिचित थे। वह नवाब हामिद अली खाँ के गुरु भी थे। इसीलिये उनका आदर-सम्मान बहुत होता था। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उ० वजीर खाँ बड़े विद्वान संगीतज्ञ और बीनकार थे और संगीतज्ञ भी उनका बहुत आदर करते थे। उनके समकालीन बीनकारों में अलवर के उ० मुशर्रफ भी चोटी के बीनकार थे जो प्रसिद्ध बीनकार जयपुर के रजबअली खाँ के भांजे और शिष्य दोनों थे। मुशर्रफ खाँ को सुनकर वजीर खाँ भी हैरत में पड़ गये थे।

वजीर खाँ नवाब रामपुर के गुरु तो थे ही परन्तु उन्होंने और संगीतज्ञों को भी शिक्षा दी थी। उनकी अपनी शिष्य परम्परा भी थी। वह बड़े अच्छे शिक्षक थे और अपने शिष्यों को बड़े चाव से संगीत की शिक्षा देते थे। एक नामी बीनकार होने के अलावा उन्हें संगीत शास्त्रों का भी अच्छा ज्ञान था। संगीत में उनके चिन्तन का अपना मूल्य था। यदि ऐसा न होता तो पंडित भारखण्डे ऐसे धुरन्धर संगीत के विद्वान उनके घनिष्ठ संपर्क में न आते और न उनका इतना आदर करते। वजीर खाँ ने बहुत से शिष्यों को शिक्षा दी जिनमें वादक और गायक दोनों थे। वीणा ऐसे प्राचीन वाद्य में पारंगत होते हुए उन्होंने और वाद्यों की भी शिक्षा दी और प्रवीण वादक तैयार किये।

उनके कुछ प्रमुख शिष्यों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(1-2)—अलाउद्दीन खाँ और हाफिज अली खाँ (सरोद) पिछले तीस-चालीस वर्षों में इन दो सरोद-वादकों का बहुत नाम हुआ। उनके निधन के पश्चात् ही आलोचकों ने उनका सही मूल्यांकन किया। अलाउद्दीन

खाँ बड़े विद्वान और कुशल सरोद वादक थे जो शिक्षक भी बहुत अच्छे थे। वह बुद्धिजीवी कलाकार थे और उनको हम वाद्य संगीत का प्रकाण्ड पंडित ही मानेंगे। हाफिज अली खाँ एक घरानेदार वादक थे और सरोद के अन्वेषक गुलाम अली खाँ के वशज थे। उन्हें भी ध्रुपद-संगीत का अच्छा ज्ञान था परन्तु यथार्थ में वह बड़े भावुक कलाकार थे और सरोद ऐसे वाद्य ही के लिए उन्होने जन्म लिया था।

(3) मेंहदी हसन खाँ (ध्रुपद और ख्याल)

(4) प्रमथनाथ बन्दोपाध्याय (रुद्र वीणा अथवा रबाब)

(5) जद्वेन्द्र महापात्र (सुरबहार)

(6) मुश्ताक हुसैन खाँ (ख्याल) यह सहसवान के निवासी थे। इन्होंने अपने मामा पुत्तन खाँ से संगीत की शिक्षा पाई थी। बाद में यह सहसवान के प्रसिद्ध गायक इनायत हुसैन खाँ के भी शिष्य हो गये थे और उनसे थोड़ा-बहुत सीखा भी था। इसके पश्चात् यह रामपुर के बीनकार वजीर खाँ के भी शिष्य हो गये थे। सुना है कि उनसे इन्होंने कुछ ध्रुपद भी याद किये थे जो यह अपने श्रोताओं के सामने कभी नहीं गाते थे। ख्याल-गायन ही में इनको भारतवर्ष में ख्याति मिली।

वजीर खाँ के वंशज अपने घराने की प्रतिष्ठा का समर्थन तो बड़े साहस से करते थे परन्तु उसके प्रामाणिक, घरानेदार संगीत की व्याख्या करने में वह बहुत सफल नहीं हुए। वजीर खाँ के सुपुत्र सगीर खाँ ने संगीत की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और वह बाद में पाकिस्तान चले गये। वजीर खाँ के पोते दबीर खाँ (बन्नू मियाँ) एक प्रतिभाशील, कुशल वादक थे और कलकत्ते में उनका बहुत नाम हुआ। कुछ समय पहले उनका देहान्त हो गया और उनके परम शिष्य वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी का भी देहान्त हो गया। औरों को भी उन्होंने सिखाया। वजीर खां के वाद्य संगीत की पद्धति का अब धीरे-धीरे अन्त सा हो रहा है। यदि वजीर खाँ के बाज के थोड़े बहुत नक्शे अभी भी इधर-उधर मिलते हैं तो उनको जीवित और सुरक्षित रखना उनकी शिष्य-परम्परा का उत्तरदायित्व है। सेनिया घराने की प्रतिष्ठा आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की प्रतिष्ठा का प्रतीक है और उसके लिए हमारी शुभ मनोकामनायें सदैव एक-सी रहेंगी।

### तानसेन परम्परा के और केन्द्र—वृन्दावन

वृन्दावन प्रबन्धगीत शैली का मुख्य केन्द्र माना गया है। बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास से हमें पता चलता है कि भक्तों के नेता अथवा

मार्गदर्शक स्वरूप दामोदर हुआ करते थे, जैसे राम रामानन्द, स्वामी कृष्ण दास, स्वामी हरिदास, कविदास कविराज, रघुनाथ दास गोस्वामी, ठाकुर नरोत्तम दास और वह व्यक्ति भी जो प्रबन्ध गीत में हर तरह से पारंगत थे।

कहा जाता है कि ठाकुर नरोत्तम दास को इस बात का श्रेय था कि ध्रुपद शैली के आदर्श को अपने सामने रखकर उन्होंने विलम्बित लय में पदावली कीर्तन का निर्माण किया था। यह विशेष अविष्कार बंगाल ही से सम्बन्धित था।

जहाँ तक वृन्दावन की ध्रुपद-परम्परा का सम्बन्ध था यह सम्भव है कि इस शैली के निर्माण में यहाँ के लोगों को ग्वालियर से अथवा उसके आस-पास के स्थानों से भी प्रोत्साहन मिला हो। परन्तु हमें यह ज्ञात है कि वृन्दावन और मथुरा में अपने अलग-अलग घराने हुए थे जिनमें कृष्णदास और हरिदास ऐसे कलावन्तों की गणना थी। इस तरह के और संगीतज्ञ भी ध्रुपद शैली ही का पालन करते थे।

## बीजापुर

उत्तरी भारत के संगीत क्षेत्र के लोग शायद इस बात से परिचित नहीं हैं कि बीजापुर भी ध्रुपद शैली का बड़ा केन्द्र था। सुलतान इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय बादशाह अकबर का समकालीन था। जीवन भर वह एक संगीत के भावुक भक्त होने के नाते संगीत के रस ही में डूबा रहा। अपनी किशोर अवस्था से ही उसे उच्चकोटि के शास्त्रीय संगीत से प्रेम था और उसी में उसे अपने जीवन का अपूर्व आनन्द मिलता था। वह संगीत का सच्चा प्रेमी और भक्त था और संगीत ही में उसको आत्मिक शान्ति मिलती थी। शासकों में संगीत का ऐसा सच्चा प्रेम कम देखा गया।

असद बेग की बीजापुर यात्रा की रोचक चर्चा से हमें पता चलता है बीजापुर संगीत का इतना बड़ा केन्द्र बन गया था कि सम्राट अकबर का ध्यान भी उसकी ओर आकर्षित हुआ था। सन् 1603-1604 में असद बेग बीजापुर गया। इस यात्रा की घटनाओं का वर्णन करते हुए असद बेग लिखता है कि किसी विशेष महीने की सत्ताईस तारीख की रात को वह शाही महल में बादशाह इब्राहीम आदिल से चलते समय प्रणाम करने गया। इस रात को एक बड़ी शानदार संगीत-सभा का आयोजन किया गया था और वहाँ पर गायकों और वादकों की बड़ी चहल-पहल थी। आदिल शाह संगीत सुनते सुनते ऐसे तन्मयता में खो गया था कि उसने असद बेग के पूछे

गये प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। जो कुछ भी बातचीत हो सकी वह संगीत और संगीतज्ञों के विषय ही पर थी।

हमको यह मालूम है कि सोलहवीं शताब्दी में ध्रुपद शैली का चारों तरफ प्रचार था। प्रचलित शैलियों में ध्रुपद ही सर्वोच्च शैली थी और उसी का सबसे अधिक आदर-सम्मान होता था।

सुलतान इब्राहीम आदिल शाह की संगीत पर लिखी गई पुस्तक "किताबे नौरस" की भूमिका में एक आधुनिक लेखक यह शब्द लिखता है। "इब्राहीम ध्रुपद शैली में पारंगत था। यह शैली इतनी लोकप्रिय थी कि मुगल बादशाह जहाँगीर भी उसकी ओर आकर्षित हुआ था। जहाँगीर का कहना है कि यह पुस्तक ध्रुपदों के सहारे ही लिखी गयी और सुलतान इब्राहीम ने बख्तर नाम के नायक से संगीत की शिक्षा पाई थी। चार हजार संगीतज्ञ यहाँ एकत्र हुए थे। सुलतान इब्राहीम आदिल शाह की सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि निपुण संगीतज्ञ सदैव उसके दरबार में रहें।"

इससे पता चलता है कि उस काल में ध्रुपद-गायन बहुत लोकप्रिय हो गया था। केवल बीजापुर दरबार ही में यह शैली चाव से नहीं सुनी जाती थी परन्तु पूरे राज्य में उसकी लोकप्रियता स्थापित हो गई थी।

यह सच है कि सम्राट जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ध्रुपद-संगीत को बड़े चाव से सुनते थे और उसके प्रति संगीतज्ञों के उत्साह को प्रोत्साहित करते थे। इस काल के संगीतज्ञों में जगन्नाथ कविराज, दिरंग खाँ और गुण समुद्र लाल खाँ (बिलास खाँ के दामाद) का बहुत नाम था।

अठारहवीं शताब्दी में जब मुहम्मद शाह देहली का बादशाह था, ध्रुपद शैली का बड़ा बोल-बाला था। देहली दरबार के नियामत खाँ सदारंग ध्रुपद गायक भी थे और कुछ बीनकार भी थे। वह सेनिया घराने की ध्रुपद शैली से भली-भाँति परिचित थे और ध्रुपद और वीणा की प्राचीन परम्परा ही के अनुयायी थे।

अंग्रेजी राज्य के स्थापित हो जाने से हिन्दुस्तानी संगीत की प्राचीन शैलियों की अवनति का काल आरम्भ हो गया और ध्रुपद शैली का धीरे-धीरे पतन हुआ। शाह आलम द्वितीय के राज्य-काल में यह अवनति अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँची थी।

### विष्णुपुर की ध्रुपद परम्परा

बंगाल में विष्णुपुर (बंकुरा) भी ध्रुपद-संगीत का केन्द्र माना गया है। शाहआलम द्वितीय के राज्य-काल में देहली दरबार के संगीत की अवनति

हो चुकी थी। आर्थिक संकट में फंसकर संगीतज्ञ लखनऊ, बनारस, बेतिया, विष्णुपुर आदि में आश्रय ढूंढ़ रहे थे। उनमें विशेष रूप से सेनिया घराने के गायक और वादक थे। अठारहवीं शताब्दी के अन्त होने के पहले सेनिया घराने के बहादुर खाँ और पीरबख्श पखावज वादक विष्णुपुर के राजा रघुनाथ सिंह द्वितीय के दरबार में नियुक्त थे। इसी समय से बंगाल में ध्रुपद शैली का उत्थान हुआ।

## उपसंहार

इस संक्षेप वर्णन के अन्त में यह बताना आवश्यक है कि ध्रुपद के पहले हमारे प्रबन्ध गीत का जन्म जातिराग और ग्राम राग ही से हुआ था। इसका संकेत हमें "नाट्यशास्त्र", "बृहद्देशी" "संगीत समयसार", "संगीत-रत्नाकर" इत्यादि शास्त्रों में मिलता है। कई शताब्दियों के निरन्तर परिवर्तन के पश्चात् और कई रूपों को धारण करने के बाद यह शैली ध्रुपद के नाम से संगीत क्षेत्र में आई। आगे चलकर चार विशेष बानियों का जन्म हुआ। अकबर के युग में इन बानियों का रूप निश्चित हो गया था और भिन्न-भिन्न घराने इनके विशेषज्ञ बने। सेनिया घराना ही ध्रुपद संगीत का पथ-प्रदर्शक बना। सेनिया घराने का ध्रुपद ही आधुनिक ध्रुपद शैली का जन्मदाता था।

खेद है कि अब सेनिया ध्रुपद-परम्परा का लोप-सा हो रहा है। ध्रुपद की अपरिमार्जित शैलियाँ ही प्रचलित हो गयी हैं। ध्रुपद-संगीत के क्षेत्र में अराजकता और अव्यवस्था का राज्य है। फिर भी जब कभी हम किसी सेनिया गायक अथवा वादक का नाम सुनते हैं तो हम बड़ी उत्सुकता से उसके गायन अथवा वादन में सेनिया शैली का आभास ढूंढते हैं। यदि हमें उसका थोड़ा-बहुत प्रमाण भी मिल जाता है तो हमें हर्ष होता है कि सेनिया परंपरा का अभी तक अन्त नहीं हुआ है। इस युग में जब ध्रुपद का रिवाज धीरे-धीरे गायब हो रहा है, इस प्रतिष्ठित शैली को जीवित रखना सुयोग्य ध्रुपदियों का कर्तव्य है। इस सम्बन्ध में शास्त्रीय संगीत के श्रोताओं, संगीत-प्रचारकों संगीत-शिक्षकों और आम जनता और देश की सरकार का भी उत्तरदायित्व है कि वह इस प्राचीन शैली के पुनर्जागरण में अपना हाथ बँटायें। इसको हम सांस्कृतिक पुनर्जागरण ही का महान कार्य समझेंगे। बिना ध्रुपद को साथ लिए आधुनिक हिन्दुस्तानी सगीत अधूरा ही माना जायगा।

## और प्रसिद्ध घराने

तानसन की ध्रुपद परम्परा की श्रेष्ठता का निर्णायक प्रमाण इस बात में था कि उससे ध्रुपद के और घरानो को भी बहुत अधिक प्रेरणा मिली।

ध्रुपद शैली का विस्तार बढ़ता ही गया और ध्रुपद-संगीत का अधिकार स्थापित हो गया। सेनिया घराना ध्रुपद शैली का मार्गदर्शक बना और ध्रुपद के और घराने का भी जन्म हुआ। आगे चलकर हम ऐसे एक विशेष घराने का वर्णन करेंगे और बतायेंगे कि ख्याल ऐसी शैली के विकास के पश्चात् भी ध्रुपद का बोल-बाला रहा और दोनों शैलियों में पारस्परिक सहयोग की भावना रही। कला के क्षेत्र में दोनों शैलियों ने गुण-दोष-विवेचन अथवा रस-ग्रहण से पूरा-पूरा लाभ उठाया। संगीत के मूल सिद्धान्तों की दृष्टि से दोनों में कोई मतभेद नहीं था। जैसे मनुष्य के जीवन में नैतिक नियम की प्रेरक शक्ति होती है उसी तरह संगीत के क्षेत्र में ध्रुपद शैली को भी विशेष अधिकार मिला। ख्याल-गायकों ने उत्तम, घरानेदार ध्रुपद-गायकों का सदैव उचित आदर किया। इसके साथ-साथ यह बात भी सच थी कि ध्रुपद शैली के गाम्भीर्य से लाभ उठाने वाले ख्याल गायकों को कला की दृष्टि से भी बहुत अधिक सम्मान मिलता रहा। ध्रुपद का ज्ञान एक ख्याल-गायक के लिए आवश्यक समझा जाता था। संगीत शिक्षा के आरम्भ में ध्रुपद-गायन की शिक्षा अनिवार्य समझी जाती है। अभी भी घरानेदार, ख्याल-गायक इस प्रथा का पालन करते हैं।

उच्च श्रेणी के ख्याल के घरानों में ध्रुपद और ख्याल का सहयोग होता रहा है और वह साथ-साथ चले हैं। आधुनिक युग के दो सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायक स्व० उस्ताद अल्लादिया खाँ और स्व० उस्ताद फैयाज खाँ, ध्रुपद शैली का पूरा-पूरा ज्ञान रखते थे। उ० फैयाज खाँ तो ध्रुपद के अलावा होरी धमार भी बेजोड़ गाते थे। उ० अल्लादिया खाँ तो पहले ध्रुपद ही गाते थे और बाद में ख्याल के विशेषज्ञ बने।

ध्रुपद के घरानों की तरह ख्याल शैली के भी बहुत से प्रसिद्ध घराने हुए हैं जिनमें कुछ को विशेष प्रतिष्ठा मिली थी। हम इनका वर्णन यहाँ किसी तैथिक क्रम के अनुसार नहीं करेंगे परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से ही घटना काल क्रम का वर्णन करेंगे। इतिहास की दृष्टि से जो घराने पहले आते हैं, उन्हीं से हम इस चर्चा को आरम्भ करेंगे।

# 3

# कव्वाल बच्चों का घराना और ग्वालियर घराना

## कव्वाल बच्चों का घराना

घरानों की कथा किसी दिलचस्प अथवा रोचक कहानी से कम रमणीक नहीं होती और उसमें किसी आख्यान का सा आकर्षण होता है। गायकों और वादकों की चर्चा किसी कहानी अथवा किस्से से कम सुहावनी नहीं होती। यहाँ पर भी वह परम्परागत संगीत का साथ नहीं छोड़ती। किसी प्रसिद्ध घराने का जन्म कभी-कभी कैसे विचित्र ढंग से होता है इसका पता हमें प्रस्तुत वर्णन से चल जायगा।

यह सुना गया है कि सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश के राज्य-काल में दिल्ली में सावन्त और बूला नाम के दो भाई रहा करते थे जिनमें से एक गूंगा था और दूसरा बहरा। जब किसी विशेष अवसर पर किसी के कहने पर यह दोनों भाई बादशाह के सामने लाये गये कि वह वहाँ अपना संगीत सुनायें तो उनकी दीनता और विवशता पर दया करके भगवान ने उनके कण्ठ खोल दिये और वह गाने लगे। सुना है कि इन्हीं दोनों का खान्दान बाद में कव्वाल बच्चों का घराना कहलाया और इन्हीं दोनों के वंशज शक्कर खाँ और मक्खन खाँ और जद्दू खाँ दिल्ली के मशहूर ख्याल गायक हुए।

परन्तु एक दूसरे वर्णन के अनुसार लखनऊ के बादशाह गयासुद्दीन हैदर के जमाने में एक गुलाम रसूल नाम के गायक थे जिनकी सन्तान में शक्कर

खाँ और मक्खन खाँ नाम के दो गायक हुए। इन्हीं शक्कर खाँ के सुपुत्र बड़े मुहम्मद खाँ थे जो कव्वाल बच्चों के घराने के असली अन्वेषक माने जाते थे। बड़े मुहम्मद खाँ ने अपने पिता और अपने चाचा से संगीत की शिक्षा पायी थी। शक्कर खाँ और मक्खन खाँ अपने जमाने के अद्वितीय गायक माने जाते थे और लखनऊ के गायक गुलाम रसूल के वंशज थे। यह बात अठारहवीं शताब्दी के आस-पास की है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ही बड़े मुहम्मद खाँ का जीवन-काल था। इसमें हमको कोई सन्देह नहीं है और इस घटना का कालक्रम भी ठीक जँचता है। यही बड़े मुहम्मद खाँ बाद में ग्वालियर के हद्द खाँ और हस्सू खाँ के भी गुरु बन गये थे। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह घटना ठीक मालूम पड़ती है परन्तु यह बड़े मुहम्मद थे कौन और इनका इतना नाम कैसे हुआ ?

गायकों में बड़े मुहम्मद खाँ का बहुत आदर-सम्मान रहा है और वह बेजोड़ गायक माने गये हैं। वह कव्वाल बच्चों की गायकी के आविष्कारक थे जिसकी सैद्धान्तिक शिक्षा उन्हें अपने पिता शक्कर खाँ और चाचा मक्खन खाँ से मिली थी। इस गायकी को परिमार्जित बनाने में और कला से सुशोभित करने में इनका बड़ा हाथ रहा है। आधुनिक युग में हम बड़े मुहम्मद खाँ ही को कव्वाल बच्चों की अद्भुत और निराली गायकी का प्रथम अन्वेषक मानते हैं। उन ऐसी निराली प्रतिभा वाले गायक ने ही इस गायकी की बेजोड़ व्याख्या की थी। ख्याल की हर प्रचलित गायकी से यह गायकी अलग थी और प्राचीन कव्वाली संगीत से भी इसका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध रहा था। ग्वालियर की प्रतिष्ठित ख्याल गायकी से भी यह गायकी अलग थी। ग्वालियर की गायकी जिसका निर्माण नत्थन-पीरबख्श ने किया था इस गायकी से अलग थी। जैसा पहले बताया गया है, किसी विशेष गायकी अथवा बाज पर किसी घराने की विशेष छाप होती है। यह गायकी भी कव्वाल बच्चों के घराने की विशेष गायकी थी। यह मानी हुई बात है कि एक घराना अपनी गायकी ही से जाना जाता है और गायकों के समाज में वह उसी लिए सम्मानित होता है। गायकी ही पर एक घराने की मुहर अथवा छाप होती है किसी घराने की गायकी की अनन्यता अथवा अद्वितीयता ही उसकी प्रतिष्ठा को प्रकाशित करती है। ऐसी किसी गायकी का निर्माण करने वाले घराने के एक दो विलक्षण प्रतिभा वाले गायक ही होते हैं। कदाचित एक अकेला गायक ही कभी-कभी अपनें घराने की गायकी का स्थापन करता है और उसे स्थायी रूप देता है। यह श्रेय बड़े मुहम्मद खाँ को था कि उन्होंने कव्वाल

बच्चों के घराने की गायकी का परिमार्जित रूप आधुनिक युग में गायकों के सामने रखा और गुणियों से उसका हार्दिक अनुमोदन पाया। उन्होंने ही इस गायकी को हर तरह से परिपूर्ण और निर्दोष बनाया और भारतवर्ष भर में उसका प्रचार किया, परन्तु एक संगीत-प्रचारक की हैसियत से नहीं वरन् एक गायक की हैसियत ही से। उनके घराने के और गायकों ने और उनकी सन्तान ने भी उन्हें इस महान कार्य में अपना सहयोग दिया। "तालिम" अथवा शिक्षा ही ऐसी किसी गायकी के प्रचार का माध्यम बन जाती है।

तो इस गायकी की विशेषता क्या थी? ख्याल गायन में स्थायी और अन्तरा भरना ही सबसे मुख्य बात मानी जाती है। परन्तु इसके साथ-साथ फिरत का भी गायकी में बड़ा ऊँचा स्थान होता है और एक गायक की विशेषता उसकी फिरत ही में होती है। फिरत ही से पता चलता है कि वह असली गवैया है। संगीत-शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी एक गायन की बुद्धि अथवा सूझ-बूझ ही उसका साथ देती है। यदि ऐसा न हो तो ऐसा गायक अपनी शिक्षा को ही ध्यान में रखकर लकीर का फकीर बन जाये। गाने को तोते के समान रटकर वह अदवायन का तोता ही बनकर रह सकता है। घराने की शिक्षा के आधार पर ही एक गायन अपनी गायन कला का निर्माण करता है और इसमें उसकी अपूर्व बुद्धि अथवा प्रतिभा भी उसका पूरा साथ देती है। अपनी विलक्षण सूझ-बूझ से और अपनी अनोखी उपज से बड़े मुहम्मद खाँ ने अपनी तानों की फिरत का आविष्कार किया। उनकी यह फिरत सीधी नहीं थी परन्तु उन्होंने इसे पेंचदार और वलदार बनाया था जिसका अनुवाद कोई भी स्वर-लिपि नहीं कर सकती थी। इन तानों के बल और फंदे निराले थे और सुनने वाले आश्चर्य में पड़ जाते थे। ऐसी पेचिदा फिरत का आविष्कार उनकी विलक्षण बुद्धि ही कर सकती थी और उसे मकड़ी के अद्भुत जाल की तरह बना सकती थी। स्वरों के यह जटिल और मुश्किल फंदे और ऐसी पेचदार अथवा बलदार फिरत उसी गायक के गले में आ सकती थी जिसे इस गायकी की शिक्षा मिली हो और जिसने ऐसी मुश्किल फिरत की बहुत साधना भी की हो। मामूली बुद्धि अथवा सामान्य प्रतिभा वाला गायक ऐसे फिरत को अपने गले से नहीं निकाल सकता था। बहुत से ऐसे गायक जो इस गायकी की नकल करने लगे, इस प्रयास में बिल्कुल असफल रहे और बेसुरे लगे। जो लोग कुतूहल के वश में होकर इस पेचदार गायकी की अपने आप नकल करते थे वह सब एक तरह से असफल ही रहे। बड़े मुहम्मद खाँ और उनके घराने वाले गायकों ही ने इस गायकी की

प्रामाणिक व्याख्या की। यह तो मानी हुई बात है कि इस गायकी में बड़ा आकर्षण था और गायक भी इससे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। इस बात को हम उदाहरण देकर समझायेंगे। एक विशेष घटना इस बात को साफ कर देगी।

सुनते हैं कि जब ग्वालियर-नरेश ने बड़े मुहम्मद खाँ को सुना तो वह बहुत प्रसन्न हुए और उनकी गायकी से बहुत अधिक प्रभावित हुए। वह हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ इन तीनों भाइयों को मन से चाहते थे और उनके शुभचिंतक और संरक्षक थे। उन्होंने अपने मन में सोचा कि यदि यह तीनों होनहार तरुण गायक बड़े मुहम्मद खाँ की गायकी भी सीख जायें तो सोने पर सुहागा हो जाये और वह हर तरह से ख्याल के अद्वितीय गायक बन जायेंगे। यही सब सोचकर उन्होंने एक उपाय निकाला। वह बार-बार बड़े मुहम्मद खाँ से गवाते थे और पर्दे की आड़ में हद्दू खाँ और हस्सू खाँ को सुनवाते थे। यह दोनों भाई बड़ी प्रखर बुद्धि वाले गायक थे और उन्होंने इस गायकी के नक्शे अपने गले में बिठाना शुरू कर दिये और उसकी अच्छी खासी नकल भी करने लगे। यह बहुत काल तक होता रहा और हद्दू खाँ और हस्सू खाँ के गाने का रंग भी बदलने लगा और उसमें कला के और गुण भी आ गये। एक दिन की बात है कि महाराजा साहब ने बड़े मुहम्मद खाँ से कहा कि आज वह इन तरुण गायकों का भी गाना सुनें और फिर अपनी राय दें महाराजा की आज्ञा पाकर हद्दू खाँ और उनके भाई गाने बैठे। अपने गाने में उन्होंने बड़े मुहम्मद खाँ की गायकी की नकल उतारी और बड़े उत्साह से गाते रहे। बड़े मुहम्मद खाँ फौरन समझ गये कि हद्दू खाँ और उनके भाई ने उन्हें सुन-सुन कर ही उनकी गायकी के नक्शे उड़ाये थे। उन्हें इस बात का दुख हुआ कि उन तरुण गायकों ने उनसे बिना सीखे उनकी गायकी की नकल करना शुरू कर दी। महाराजा ग्वालियर भी इस बात को ताड़ गये और जब बड़े मुहम्मद खाँ ने उनसे विनीत भाव से कहा "यदि मुझे आपकी आज्ञा होती तो क्या मैं इन बच्चों को अपनी गायकी की तालीम न देता ?" तो महाराजा साहब ने जो सच्चे गुण ग्राहक थे और बड़े न्यायप्रिय व्यक्ति थे, इस बात को स्वीकार किया और बड़े मुहम्मद खाँ से आग्रह किया कि वह उन होनहार भाइयों को शिक्षा दें। बड़े मुहम्मद खाँ ने महाराजा की आज्ञा का पालन किया और उनको अपना शिष्य बना कर उन्हें मन लगाकर शिक्षा दी। यह तीनों भाई भी उन्हें अपना पूज्य गुरु मान कर श्रद्धापूर्वक उनसे शिक्षा प्राप्त करने लगे।

इस घटना से पता चलता है कि बड़े मुहम्मद खाँ कैसे बड़े थे और कव्वाल बच्चों की गायकी विलक्षण होकर भी कितनी प्रभावोत्पादक थी। बड़े मुहम्मद खाँ महाराज सिंधिया के दरबार में बहुत काल तक दरबारी गायक रहे। परंतु वह अलवर, जयपुर और रीवाँ ऐसी रियासतों में भी निमंत्रित होकर जाते थे और वहाँ पर उनका बहुत आदर-सम्मान होता था। ख्याल गायकों में उनकी सी पेचदार फिरत वाला गवैया दूसरा नहीं था। वह कव्वाल बच्चों की गायकी के विशेषज्ञ थे और उस फिरत के बेजोड़ उस्ताद थे। उनकी फिरत सुनने में आती थी और वह अपने ढंग की निराली फिरत थी। इस घटना से एक और बात का भी प्रमाण मिलता है। किसी बेजोड़ गायकी अथवा बाज को गुणीजन सदैव मान्यता देते हैं और उसका अपने मन से हार्दिक समर्थन करते हैं। सच्ची गायकी छिपाये नहीं छिपती। परन्तु इसके साथ-साथ यह भी सच है कि किसी प्रतिष्ठित गायकी की नकल आसानी से नहीं की जा सकती। नकल किसी हद तक हो सकती है परन्तु गायकी का असली भेद तो गुरु ही बताता है। जब तक पूरी शिक्षा नहीं मिलती गाना अधूरा रहता है। किसी गायकी की सामान्य रूपरेखा जान लेने से काम नहीं चलता। जब तक कोई गायक उसकी ठीक व्याख्या न कर सके। गायकी के लिए शिक्षा अनिवार्य है। परन्तु शिक्षा से अधिक आवश्यक किसी गायकी की अपूर्व बुद्धि अथवा प्रतिभा होती है। किसी गायकी के औपचारिक आडम्बर की नकल तो आसानी से हो सकती है परन्तु उस गायकी के अनुशासन को बिना जाने हुए कोई गायक उसकी उत्तम व्याख्या नहीं कर सकता। हद्दू खाँ और उनके भाई बड़े मुहम्मद खाँ की गायकी की नकल सुन-सुन कर ही करने लगे थे परन्तु वह उसकी पूरी व्याख्या करने में असमर्थ थे। वह अपने इस अभाव से परिचित थे और यही कारण था कि वह उनके शिष्य बन कर उस गायकी की सही शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। उनकी अपनी गायकी भी प्रतिष्ठित गायकी थी। परन्तु कव्वाल बच्चों की गायकी का आकर्षण ऐसा जबरदस्त था कि वह उसके प्रभाव से बच न सके। यथार्थ में वह सच्चे गुण ग्राहक थे इसलिए वह बड़े मुहम्मद खाँ के शिष्य बन गये और उन्होंने इस तरह अपनी गायकी की भी शोभा बढ़ाई।

## बड़े मुहम्मद खाँ का परिवार

बड़े मुहम्मद खाँ के घराने में और भी गायक हुए हैं जिनमें सबसे पहले उनके भाइयों का नाम आता है। इनके तीन भाई थे और यह तीनों को ख्याति मिली—अहमद खाँ, रहमत खाँ और हिम्मत खाँ। परन्तु अहमद

खाँ इन सबमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। इन्होंने अपने भाई बड़े मुहम्मद खाँ की फिरत का पूरा अनुकरण किया और उसमें गायकी की उन्हीं तरकीबों को पैदा किया। इस तरह से उस गायकी को अपनाकर उन्होंने उसकी सच्ची साधना भी की। बड़े मुहम्मद खाँ के बाद और गायक भी इन्हें इस घराने का सुयोग्य और प्रतिष्ठित गायक मानते थे। निरन्तर रियाज से अहमद खाँ ने अपनी फिरत को माँज लिया था और उसे हर ढंग से कलात्मक बनाया था। इनकी बंदिशों का चमत्कार भी निराला था। चीजों के मुख्य-मुख्य स्थानों पर इस पेचीदा फिरत के नये-नये टुकड़े और फंदे होते थे जो उनके रचनात्मक सौंदर्य के आकर्षण को चौगुना कर देते थे। उनकी इस फिरत की विशेषता यही थी कि वह पेचदार होते हुए भी रागों को सच्चा रखती थी और उनके स्वरों के रख-रखाव को भी वैसा ही रखती थी। इस युग में भी कुछ जोशीले और गरम खून वाले गायकों ने अपनी गायकी को पेचीदा और मुश्किल बनाने का प्रयत्न किया था और जिसे हम "बिडार अंग" के नाम से पुकारते हैं, उस पर बड़ी मेहनत की।' नतीजा यह हुआ कि उनकी गायकी तो मुश्किल और पेंचीदा जरूर हो गयी परन्तु वह खुद बेसुरे हो गये। इनमें से एक सज्जन पंजाब के मशहूर गायक थे जो ऐसी पेचीदा फिरत के विशेषज्ञ माने जाते थे। उनकी गायकी का सबसे बड़ा दोष यही था कि वह सुर में नहीं गा पाते थे मगर अपने गाने को जटिल बनाने का भरसक प्रयत्न करते थे। किसी-संगीत-गोष्ठी के अन्त में जब वह ठुमरी गाने भी बैठते थे तब भी जटिल तानों की तरफ ही उनका पूरा ध्यान जाता था। इतना ही नहीं, वह कभी-कभी अपनी पेचीदा गायकी पर छोटा सा भाषण भी देते थे। वह अपनी अहंमन्यता के वश में होकर यह नहीं जानते थे कि उनके स्वर अपनी जगह से अलग हो जाते थे और वह अपने गाने को मुश्किल तानों पर बलि-दान कर देते थे। जिसे वह अपने संगीत की दुरारूढ़ कल्पना समझते थे और "मुश्किल गाना" समझते थे। वही उनके संगीत का सबसे बड़ा दोष था। परन्तु उनको कायल करना असंभव था।

पिछले युगों के गायकों की और बात थी। अहमद खाँ ऐसे गायक अपनी पेचीदा फिरत को स्वरों से कभी अलग नहीं होने देते थे और उन्होंने अपनी गायकी की सच्ची साधना की थी। अपने बड़े भाई मुहम्मद खाँ की तरह उन्होंने भी निरन्तर अभ्यास करके इस फिरत को अपने वश में किया था और उसे माँज कर रोचक भी बनाया था। यही कारण था कि बड़े मुहम्मद खाँ की तरह उन्हें भी गुणियों की सच्ची प्रशंसा मिली और गायकों

में उनका बहुत सम्मान हुआ। इनके दूसरे भाई रहमत खाँ ने भी इस गायकी की पूरी जानकारी हासिल की और बड़ा रियाज किया। उनकी फिरत की तानें भी पेचीदा होने के अलावा जोरदार थीं और उनमें एक तरह का अनूठापन था। यदि ऐसा न होता तो उन्हें किसी राज-दरबार में "तान कप्तान" की उपाधि न दी जाती। तीसरे भाई हिम्मत खाँ 1850 के आस-पास रीवाँ रियासत में नियुक्त हो गये थे और उनको भी बहुत ख्याति मिली थी। इनमें एक विशेष गुण यह था कि यह अपने शिष्यों को बड़े चाव से शिक्षा देते थे और बड़े परिश्रम से उन्हें गायक बनाते थे। यही कारण था कि उनके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी और वह उनकी श्रद्धा ही नहीं करते थे परन्तु उनसे सच्चा प्रेम भी करते थे।

यह तो हुई बड़े मुहम्मद खाँ के भाइयों की बात। अब हम उनकी सन्तान के बारे में भी दो-चार बातें कहेंगे। उनके कई पुत्र थे—अमान अली खाँ, बाकर अली खाँ, मुबारक अली खाँ, मुनव्वर खाँ और फैयाज खाँ। घरानेदार गायकों और वादकों में यह प्रथा रही है कि वह अपनी सन्तान को संगीत की पूरी शिक्षा देते हैं और अपना पवित्र धर्म समझते हैं कि जो विद्या उन्हें अपने पूर्वजों से मिली है उसका वितरण वह उचित ढंग से करें और अपनी कर्तव्य-परायणता की पुनीत भावना का पालन करें। यह एक तरह का अनोखा विद्यादान होता था। घराने की प्रतिभा रगों में खून की तरह दौड़ने लगती थी। घरानेदार संगीत के क्षेत्र में पूर्वज-परम्परा के सिद्धांत का समर्थन सदैव हुआ है। संगीत पैतृक सम्पत्ति की तरह संतान को बाँटा जाता था और सन्तान भी इस पैतृक ऋण को अपना सच्ची संगीत–साधना से लौटाती थी। संगीत कोई ऐसा वैसा धंधा और रोजगार नहीं था जो मजबूरी से अपनाया जाता था। घराना तो एक पैतृक दल के समान होता था और संगीत भी पैतृक व्यवसाय अथवा पैतृक पेशा के समान होता था। संगीत सीखने वाले की निष्ठा अथवा भक्ति में समर्पण की पुनीत भावना होती थी। वह संगीत को उत्तम कला समझता था, धंधा ही नहीं समझता था। उसका साधना में भी एक तरह की व्यक्तिगत तन्मयता होती थी और वह अपने संगीत के आनन्द में खो जाता था। यहाँ तक अपने आर्थिक संकटों को भी भूल जाता था। यह सोचना कि पिछले युगों के घरानेदार गायक अथवा वादक संगीत को रोजगार ही समझते थे और उपयोगितावाद ही के समर्थक थे अथवा पक्के उपयोगितावादी थे, गलत है। ऐसा कहकर तो हम उनकी संगीत–साधना की तीव्र आलोचना करते हैं और उनकी सौंदर्य–बोध शक्ति

उनके सौंदर्यानुभव, अथवा उनके सौंदर्योपभोग इन सब की भी पूरी उपेक्षा करते हैं। इनमें से कुछ ऐसे संगीतज्ञ भी थे जिन्होंने दरिद्रता का सामना करके और दारुण दुखों से मर्माहत होकर भी संगीत की साधना की और उसके अपूर्व आनन्द को संसार के सारे रोगों और दुखों को प्रतीकारक बनाया।

संगीत यदि व्यवसाय था तो वह साधना भी बन गया था। यदि सच्ची साधना की पुनीत भावना घरानों के गायकों और वादकों को प्रेरित न करती तो संगीत के इस संचित धन का नाश हो गया होता। संतान ही अपने पिता और पूर्वजों की विद्या के संचित धन को सावधानी से रखती है और सुपात्रों में उसका उचित वितरण करती है विद्या ही अब तक उसकी पूँजी होती है और उसी घराने के संगीत की उन्नती होती है। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि किसी घराने का एक महान संगीतज्ञ अथवा विलक्षण प्रतिभा वाला कोई गायक अथवा वादक अपने उत्तरदायित्व के बोझ को कैसे असीम साहस से और कैसी हिम्मत से उठाता है और अपनी संतान को घराने की संगीत की पूरी-पूरी शिक्षा देता है। एक गायक अपने सुपुत्रों को उनकी योग्यता अथवा उनकी प्रतिभा के अनुसार किस समझदारी से शिक्षा देता है और धैर्य से कैसा परिश्रम करता है, यह एक अचम्भे की बात है जिसका अनुभव आधुनिक संगीत-शिक्षा के विशेषज्ञों को नहीं हो पाता। बड़े-मुहम्मद खाँ ने अपने बेटों को इसी ढंग से शिक्षा दी और उन्हें सुयोग्य गायक बनाया। यह अपने घराने के संगीत के गुलदस्ते के अलग-अलग फूल थे और इनकी अलग-अलग सुगन्ध थी। परन्तु यह सब एक ही वृक्ष के फूल थे और उनकी गायकी एक थी। बड़े मुहम्मद खाँ के यह सब होनहार सुपुत्र प्रसिद्ध गायक बन गये और इनको बड़ी ख्याति भी मिली। अमान अली खाँ को अपने पिता से घराने की गायकी की पूरी-पूरी शिक्षा मिली थी। इनकी फिरत की तानों के बल और फंदे लोगों को अचम्भे में डाल देते थे। समझ में नहीं आता था कि तानों के यह बल पेंच इनके गले से कैसे निकलते थे। अलवर के राजा महाराज शिवदान सिंह और जयपुर के महाराज राम सिंहके जमाने में इनका नाम बहुत चमका। ग्वालियर और रींवा ऐसी रियासतों में भी इनको बहुत मान-सम्मान मिला।

बाकर अली खाँ रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के जमाने में दरबारी गायक थे। यह वह जमाना था जब रामपुर दरबार में बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ ऐसे चोटी के सेनिये तंत्रकार मौजूद थे। अमीर खाँ सेनिया

घराने के नामी बिनाकार थे और बहादुर हुसैन खाँ सुरसिंगार-वादक की बहुमुखी, विलक्षण प्रतिभा अपने ढंग की बेजोड़ थी बाकर अली खाँ भी इन संगीतज्ञों के साथ रामपुर-दरबार में नियुक्त थे और इनका बड़ा मान सम्मान होता था यह भी बहुत अच्छा गाते थे और अपने घराने की गायकी की बड़ी सुन्दर व्याख्या करते थे। जिन पुराने बुजुर्गों ने इन्हें सुना था वह इनकी बहुत तारीफ करते थे। नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में ऐसे बेजोड़ गवैयों ही को स्थान मिल सकता था जो किसी उत्तम घरानेदार गायकी की व्याख्या कर सकते थे। जब प्यार खाँ, जाफर खाँ और बासतखाँ ऐसे धुरन्धर सेनिया तंत्रकारों के वंशज मुहम्मद अली खाँ, बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ इस दरबार के सम्मानित वादक बन सकते थे तो यह बिल्कुल ठीक था और हर तरह से उपयुक्त भी था कि ऐसे गुणियों के सत्संग में बड़े मुहम्मद खाँ, कव्वाल बच्चों के घराने के अद्वितीय गायक और अन्वेषक, के सुपुत्र बाकर अलि खाँ भी इस दरबार में हों और उसकी शोभा को बढ़ायें।

मुनव्वर खाँ 1870 में रीवाँ राज्य में नियुक्त थे और वह किसी और रियासत में नहीं गये। जीवन भर वह वहां अपनी संगीत सेवा करते रहे। फैयाज खाँ को रीवाँ, भरतपुर, अलवर, जयपुर ऐसी रियासतों में बहुत मान मिला।

परन्तु सच पूछा जाय तो इन सब भाइयों में मुबारक अली खाँ ही को सबसे अधिक ख्याति मिली और उन्होंने ही अपने घराने की फिरत की सबसे विलक्षण व्याख्या की। आधुनिक युग में मुबारक अली खाँ ही अपने घराने की फिरत के सबसे बड़े अनुवादक थे और उनकी गायकी का बहुत बड़ा प्रभाव समझदार श्रोताओं पर पड़ा। ऐसा देखा गया है कि प्रत्येक घराने में एक ऐसा गायक अथवा वादक होता है जिसकी विलक्षण प्रतिभा उसे घराने के गायकों और वादकों से अलग करती है और वह एक अद्वितीय संगीतज्ञ माना जाता है। एक दो गायक ही किसी घराने की प्रतिष्ठा को स्थापित करते हैं और उसके गौरव को बढ़ाते हैं। किसी घराने की शान एक दो गायकों ही से होती है। मुबारक अली खाँ की गणना ऐसे ही गायकों में थी। जिस तरह की प्रतिष्ठा बड़े मुहम्मद को अपने जीवन में मिली थी और जैसा आदर उन्हें अपनी जीवन-काल में मिला था, उसी तरह अपने युग में मुबारक अली खाँ को भी गुणियों से मान्यता मिली थी। अपने जमाने के सर्वश्रेष्ठ गायकों में उनकी गणना होती थी और समझदार श्रोता उनकी गायकी पर रीझ

जाते थे। बड़े मुहम्मद खाँ के और उनके भाई अहमद खाँ के बाद इस नामी घराने की प्रतिष्ठा रखने वाले या तो बड़े मुहम्मद खाँ के सुपुत्र बाकर अली खाँ थे और या फिर विलक्षण प्रतिभा वाले उनके तीसरे सुपुत्र मुबारक अली खाँ थे जिन्हें और घरानों के गायकों ने भी माना और उनकी बहुत अधिक प्रशंसा की। किसी गायक को अपने युग के समकालीन गायकों से मान्यता और प्रशंसा मिले और उसका चोटी के गायकों में सम्मान हो, यह कोई मामूली बात नहीं है। यह श्रेय बहुत कम गायकों को मिलता है।

यदि हम आधुनिक संगीत के इतिहास को देखें और पिछले सौ वर्षों के संगीत पर अपनी नजर दौड़ायें तो इस बात को हम और अच्छी तरह समझ जायेंगे। यदि हम देहली के ख्याल गायकों के घराने को देखें तो पता चलता है कि तानरस खाँ के बाद उमराव खाँ और शब्बू खाँ ऐसे गायकों ही को अधिक आदर-सम्मान मिला और उनके साथ जहूर खाँ को भी गुणी-जन समाज में उचित सम्मान मिला था। तानरस खाँ के बाद ऐसे ही गायक देहली घराने की प्रतिष्ठा बढ़ाते थे और उन्हीं के हाथों में उसकी लाज थी। हम यहाँ गायकों ही का वर्णन कर रहे हैं और इसलिए यह कहना जरूरी हो जाता है कि पिछले चालीस-पचास वर्षों में देहली घराने के उस्ताद शब्बू खाँ का जैसा आदर हुआ वैसा घराने के और किसी गायक का नहीं हुआ। तानरस खाँ के सुपुत्र उमराव खाँ भी अपने जीवन-काल में एक धुरन्धर गायक माने जाते थे और उनका भी बहुत सम्मान होता था। उनके सुपुत्र सरदार खाँ तो पाकिस्तान चले गये थे और वहाँ पर लोगों ने उन्हें हाथों हाथ लिया था। परन्तु पिछले जमाने में देहली घराने के शब्बू खाँ का बहुत नाम चमका और अलग-अलग घरानों के गायक भी उनकी दिल से प्रशंसा करते थे। उनकी गायन-कला ने देहली घराने का नाम बहुत ऊँचा किया।

इसी तरह यह बताना भी आवश्यक है कि आगरा घराने में भी बड़े-बड़े अच्छे धुरन्धर गायक हुए जैसे ग़ुलाम अब्बास खाँ, कल्लन खाँ, नत्थन खाँ, भासकर राव बखले, अब्दुल्ला खाँ, विलायत हुसैन खाँ इत्यादि। मगर आधुनिक युग में जैसा नाम उस्ताद फैयाज खाँ का हुआ वैसा और किसी का नहीं हुआ। इस शताब्दी के आरम्भ से लेकर अब तक आगरा घराने में ऐसा "चौपटा" अथवा बहुमुखी गवैया और दूसरा नहीं हुआ। उन्होंने ही इस घराने की शोभा बढ़ाई और इसका नाम चमकाया। सच तो यह है कि वह आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायक थे और उनकी टक्कर का कोई दूसरा गायक नहीं था। ऐसे गायक एक पूरी शताब्दी में ही जन्म लेते हैं।

मुबारक अली खाँ भी अपने जमाने के बेजोड़ गायकों में थे और उनके घराने में उनकी टक्कर का कोई दूसरा गायक नहीं था। वह पेंचदार और बलदार गायकी के विशेषज्ञ थे और अपने पिता की तीसरी सन्तान थे। जिस ढंग से उन्होंने अपने पिता की गायकी का अभ्यास किया था और जिस तरह से उन्होंने अपनी पेचिदा फिरत को सँवारा था और कलायुक्त बनाया था वैसा उनके और किसी भाई ने नहीं किया। सामान्य रूप से हम ख्याल गायकी को दो विशेष प्रकारों में बाँट सकते हैं। पहले प्रकार की गायकी तो वह है जो ग्वालियर घराना और आगरा घराना में विशेष ढंग से पायी जाती थी। इस गायकी में राग और बंदिश दोनों का आनन्द होता था। ऐसी गायकी में स्थायी और अंतरा ताल के अन्दर बड़े ठहराव से और बड़े कलात्मक ढंग से गाया जाता था। राग की बढ़त चीज के बढ़ते के साथ होती थी और गायक अपने गायन को गायकी के तरह-तरह के आभूषणों से सजाता था। ऐसी गायकी में राग सच्चा रहता है और स्वर सुरीले ढंग से लगाये जाते हैं। परन्तु इस गायकी में रचना का भी आनन्द आता है और श्रोताओं पर शब्दों के गांभीर्य, और लालित्य और उनके रसात्मक उच्चारण का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। इस गायकी का सिद्धान्त है: "राग की सच्चाई और शानदार गायकी।" परन्तु गायकी का दूसरा प्रकार वह होता है जिसमें बौद्धिक कुतूहल ही की प्रधानता होती है और कोई गायक अपनी अस्वाभाविक और प्रखर बुद्धि के सहारे ही अपनी फिरत की तानों को पेचिदा बनाता है अथवा अपने स्वरों को पेचीदा और क्लिष्ट बनाता है और उनकी उलट-पुलट को भी कठिन बनाता है। स्वरों का ऐसा विचित्र संघटन करके वह अपनी फिरत को बलदार और पेचदार बनाता है। उसकी अस्वाभाविक बुद्धि और उसकी विलक्षण कल्पना उसकी निरन्तर स्वर-साधना को प्रेरित करती है और वह राग के स्वरों को अन्दर ही अपनी इस फिरत की तकनीक की व्याख्या करता है। स्वरों के यह फंदे और पेंच इस ढंग से लगाये जाते हैं कि सुनने वाला बड़ी हैरत में पड़ जाता है। किसी दूसरे गायक के लिए असंभव है कि वह अपने गले को स्वरों के ऐसे जाल में डाल दे और फिर भी सुर में रहे। बिना अभ्यास के और बिना गुरु की शिक्षा के अच्छा-से-अच्छा तैयार गायक भी ऐसी पेचीदा फिरत को अपने अधिकार में नहीं कर सकता। यह मुश्किल और जटिल गायकी एक तरह की दिमागी कसरत होती थी और इसको साधने के लिए कई वर्षों का निरन्तर अभ्यास चाहिए था। इस गायकी का आनन्द बहुत कुछ बौद्धिक था और वह किसी गायक की बुद्धि का अद्भुत चमत्कार ही बन जाता था।

परन्तु यह तभी हो सकता था जब ऐसी फिरत का बरसों किसी विद्वान गुरु की संरक्षता में रियाज किया जाये।

मुबारक अली खाँ ऐसी पेचीदा फिरत के विशेषज्ञ थे और एक बेजोड़ गायक थे जिन्होंने कव्वाल बच्चों की गायकी की बड़ी शानदार व्याख्या की। जहाँ तक ऐसी पेचीदा फिरत का संबन्ध था उनकी टक्कर का गवैया नहीं था। उनकी फिरत को सुनकर श्रोतागण आश्चर्य में पड़ जाते थे। यहाँ तक कि अच्छे-अच्छे गायक भी उनकी तानों के फंदों को आसानी से समझ नहीं पाते थे। उन्होंने इस फिरत की बड़ी सच्ची साधना की थी और उस पर पूर्ण अधिकार पा लिया था। उनकी तानें जिस कलायुक्त ढंग से सम पर आती थीं सुनने वाले सुन कर दंग हो जाते थे। ऐसे कुशल गायकों का बड़ी-बड़ी रियासतों में मान होता था। यही कारण था कि मुबारक अली खाँ अलवर के महाराजा शिवदान सिंह के दरवार के सम्मानित गायक थे। और संगीतज्ञों की तुलना में उनका वेतन भी उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल था। पहले इन्हें सत्रह सौ रुपये महीने मिलता था, और बाद में इन्हें पूरे दो हजार मिलने लगे थे। महाराज इनको बहुत मानते थे और इनका बहुत आदर–सत्कार होता था। अलवर के बाद जब यह जयपुर पहुँचे तो वहाँ पर भी महाराज रामसिंह ने इनका हर तरह से आदर–सत्कार किया। अब यह गुणियों के बीच में पहुँच गये थे। जयपुर दरबार में चोटी के संगीतज्ञ मौजूद थे। जयपुर के प्रसिद्ध बीनकार रजब अली खाँ और सैनिया घराने के मशहूर सितार-वादक इमरत सेन इस दरबार में नौकर थे। इनके अलावा इस दरबार में आगरा घराने के प्रसिद्ध ख्याल गायक घघ्घे खुदाबख्श और संगीत–शास्त्र के विद्वान और उच्च कोटि के ध्रुपद–गायक बहराम खाँ भी यहाँ मौजूद थे। मुबारक अली खाँ के पहुँचने से इस दरबार की शोभा और भी बढ़ गयी। अपने-अपने बाज के ऐसे चोटी के बेजोड़ उस्ताद एक ही दरबार में संयोगवश जमा हो जायें, यह बड़े भाग्य और अचम्भे की बात थी। इससे जयपुर दरबार की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गयी थी। इनमें से प्रत्येक गायक अथवा वादक अपनी शैली का बेजोड़ अनुवादक था और उसका माना हुआ उस्ताद था। सरस्वती वीणा की प्रतिष्ठित, घरानेदार वादन शैली, सितार का सेनिया बाज, ध्रुपद की प्राचीन, सम्मानित शैली की विद्वानों वाली शास्त्रीय व्याख्या, आगरा घराने की बेजोड़ गायकी और उसका कलायुक्त अनुवाद और इन सब के साथ बड़े मुहम्मद खाँ की कव्वाल बच्चों की पेचदार फिरत–इन सब का साथ एक दरबार में हो जाना संगीत–कला का अनोखा चमत्कार था जो बड़े-बड़े दर-

बारों को नसीब नहीं होता था। वाराणसी, लखनऊ और रामपुर ही में ऐसे धुरंधर संगीतज्ञ साथ जमा होते थे। जयपुर ऐसे दरबार ही में जहाँ पर कला का ऐसा उच्चकोटि का अनुवाद और रस ग्रहण होता था, मुबारक अली खाँ का गाना अपनी कला की पराकाष्ठा पर पहुँचा और उसे समझदारों का अनुमोदन मिला।

मुबारक अली खाँ ने ख्याति भी बहुत पायी। सुना जाता है कि हद्दू खाँ इनको सुन कर इनकी कला से बहुत प्रभावित हुए थे और ग्वालियर-नरेश से इनकी बहुत प्रशंसा की थी। महाराज ग्वालियर इस तारीफ को सुनकर उनका गाना सुनने के बड़े इच्छुक हुए। जब मुबारक अली खाँ ग्वालियर-दरबार में आये तो उनका गाना बहुत नहीं जमा। ऐसा कई बार हुआ और महाराजा को आश्चर्य हुआ कि हद्दू खाँ उनके गाने की इतनी प्रशंसा क्यों करते थे। सुनते हैं कि दो-चार दिन बाद उनका गाना कहीं और हुआ। वहाँ उनकी ऐसी तबियत लगी कि उन्होंने श्रोताओं को हैरत में डाल दिया और सुनने वाले अपूर्व आनन्द में डूब गये। हद्दू खाँ उस महफिल में मौजूद थे और जब उन्होंने संगीत के इस अनोखे वातावरण को देखा तो उनसे न रहा गया और उन्होंने महाराज साहब को फौरन खबर की कि मुबारक अली आज उस महफिल में बहुत अच्छा गा रहे हैं। महाराजा ग्वालियर भी सच्चे गुण-ग्राहक थे और उस गाने को सुनने के लिए वह सवारी लेकर उस स्थान पर पहुँचे। पहले तो वह खिड़की के पास खड़े होकर उनका गाना सुनते रहे और फिर उनसे न रहा गया और वह महफिल के अन्दर पहुँच गये और मुबारक अली खाँ की अपने दिल से बहुत ही प्रशंसा की। बाद में ग्वालियर-नरेश ने उनसे यह आग्रह भी किया कि वह उनके दरबार के गायक बन जायें। मुबारक अली खाँ के लिए यह असंभव था कि वह जयपुर दरबार को छोड़ सकें। उसी जयपुर में 1880 में उनका देहान्त हुआ।

मुबारक अली खाँ को संगीत शिक्षा-देने में कोई विशेष रुचि नहीं थी। वह सहृदय और मिलनसार व्यक्ति थे परन्तु उन्होंने अपने कोई खास शिष्य तैयार नहीं किये। लोग उन्हें सुन-सुन कर उनकी नकल करते थे। आधुनिक युग में बंबई के उस्ताद अल्लादिया खाँ और उस्ताद नत्थन खाँ उनकी गायन-कला से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। अल्लादिया खाँ ने तो मुबारक अली खाँ को सुन-सुन कर ही अपनी एक अलग गायकी का निर्माण किया था। वह कहा भी करते थे कि जो लोग उनके गाने की तारीफ करते हैं उन्होंने मुबारक अली खाँ को नहीं सुना था कि वह कैसे बेजोड़ गवैये थे। वह अपनी गायकी

को उस गायकी का एक भोंडा और भद्दा और बहुत अधूरा-सा अनुवाद ही मानते थे। वह अपने शब्दों में कहते थे "कहाँ जर्रा और कहाँ आफताब।"

मुबारक अली खाँ के बाद उनके घराने में कोई विशेष प्रसिद्ध गायक नहीं हुआ जो उनकी टक्कर का हो। मुहम्मद के दो भतीजे थे, वारिस अली खाँ और इनायत हुसैन खाँ, जो ग्वालियर में नियुक्त थे। इनायत हुसैन खाँ तो अलवर और जयपुर के दरबारों में भी रहे थे और वहाँ उनका अधिक सम्मान भी हुआ था। इन दोनों के बाद कव्वाल बच्चों के घराने का और कोई नामी प्रतिनिधि देखने में नहीं आया।

परन्तु इस सम्बन्ध में हम एक और गायक को कभी नहीं भूल सकते। यह थे लखनऊ के सादिक अली खाँ जो कव्वाल बच्चों के घराने के अनुयायी थे। इनको "नवाब" की उपाधि भी मिली थी। यह वाजिद अली शाह के जमाने में मौजूद थे और उनके बाद भी कुछ वर्षों तक जिन्दा रहे। यह कव्वाल बच्चों के घराने के थे ही परन्तु इसके साथ-साथ वह बड़े विद्वान और बहुत प्रतिभाशील गायक भी थे। उन्होंने एक ऐसी ईजाद की कि संसार उन्हें अब तक याद करता है। यही सादिक अली खाँ थे जिन्होंने लखनऊ की ठुमरी की ईजाद की जिसे लोग बाद में "पूरब की ठुमरी" भी कहने लगे। इस ठुमरी का मीठा बोल-बनाव अथवा इसके बोलों की मिठास और उनका अनोखा अन्दाज किसी और ठुमरी में नहीं पाया जाता। इन्हीं सादिक अली खाँ ने लखनऊ की ठुमरी ऐसी अनोखी शैली का आविष्कार किया था और उनकी निराली व्याख्या की थी।

कव्वाल बच्चों के घराने के गायक सादिक अली के दो मशहूर शिष्य हुए हैं। पहले तो लखनऊ के वयोवृद्ध गायक उ० खुर्शेद अली खाँ थे जिनका बीस-पच्चीस साल पहले देहान्त हुआ था। दूसरे थे भारत-विख्यात भैया साहब गनपत राव (भैया जी) जो हारमोनियम के सम्राट थे और पूरब अंग की ठुमरी के बेजोड़ विशेषज्ञ थे। आगे चलकर इनके बारे में कुछ और बताया जायेगा।

## ग्वालियर घराना

जो बात ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि घरानों का जन्म अपने आप होता है और गायक अथवा वादक उन्हें जान बूझ-कर नहीं बनाते और न यह सोच कर बनाते हैं कि वह अमुक नाम से पुकारे जायेंगे। संगीत की प्रतिष्ठित शैलियां भी न जान बूझ कर बनायी गयीं और न इस तरह गढ़ी

गई। व्यावहारिक संगीत के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही शैलियों का भी क्रमिक विकास हुआ। संगीतज्ञों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा ही किसी विशेष शैली का जन्म होता है। वह जानबूझ कर आयोजित नहीं की जातीं और न उनका निर्माण किसी बाह्य सामग्री के द्वारा किया जाता है। स्वरों के व्यवस्थित और कलात्मक संगठन ही को हम शैली के नाम से पुकारते हैं जिसे एक विशेष तकनीक निर्धारित करती हैं। एक घराने की विशेषता उसकी शैली में होती है और वह उसी से जाना जाता है। शैली ही उसकी प्रतिष्ठा की सूचक बन जाती है। एक घराने पर उसकी शैली की छाप पड़ी होती है। रन्तु शैलियों का जन्म घरानों के साथ ही हुआ। एक घराना ही किसी शैली का प्रारम्भ-कर्ता अथवा जन्मदाता होता है और उसका उद्‌गम स्थान बन जाता है।

कुछ विशेष परिस्थितियों ही में किसी घराने का जन्म होता है और उस समय वह अपने भविष्य की कल्पना नहीं कर पाता। कभी-कभी न जानते हुए भी गायक अथवा वादक अपने-अपने घरानों का निर्माण करते हैं और अपने जीवन-काल में शायद उन्हें इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि आगे चलकर उनके घरानों को इतनी बड़ी ख्याति मिलेगी। ग्वालियर घराने का जन्म भी इसी तरह हुआ। सुना जाता है कि देहली के आस-पास किसी छोटे से गाँव में दो भाई रहते थे जिनके नाम थे अब्दुल्ला खाँ और कादिर बख्श। इनके पिता और इनका सारा परिवार ग्वालियर ही में रहता था और वह ग्वालियर दरबार से भी सम्बन्धित थे। यह दोनों महाराज झिनकू राव सिंधिया के दरबार में नियुक्त थे। इन दोनों का निधन ग्वालियर में ही हुआ।

## नत्थन पीरबख्श (नत्थन खाँ, पीरबख्श)

इन दोनों को अपने पिता से संगीत की शिक्षा मिली थी। इनके ख्याल-गायन में ध्रुपद शैली का गम्भीर्य और ठहराव था। इनकी लयदारी में भी होरी और ध्रुपद का रचनात्मक सौंदर्य था। जैसा पहले बताया गया है कि पहले ख्याल की उच्चतम शैली में ध्रुपद शैली के गांभी ै का समावेश होता था और जिस बात पर अब आधुनिक युग के अधिकांश ख्याल गायक बल नहीं देते। जब तक ख्यालियों ने ध्रुपद-गायन की परम्परा का पूर्ण पालन किया तब तक उनकी ख्यालियों ने ध्रुपद-गायन की परम्परा का पूर्ण और उसका-सा गांभीर्य था। परन्तु धीरे-धीरे जब संगीत की परम्परागत

विचारधारा बदलती गई और गायकों ने ध्रुपद शैली की कला के अनुशासन का परित्याग करना आरम्भ कर दिया तो ख्याल-गायन तानों का मुहताज बन गया और उथली और भावुक चंचलता ने गहरे गांभीर्य का स्थान ले लिया। स्वरों की विचित्र उलट-पलट ने स्वरों के गंभीर सच्चे और भावुक उच्चारण की जगह ले ली। स्वरों की भवात्मक अभिव्यक्ति का अंत हो गया और उनकी अनहोनी उलट-पलट और उनके गणितीय चमत्कार का प्रभुत्व स्थापित हो गया। ख्याल गायकों ने ध्रुपद शैली के विरोध में द्रुत लय की तानों का अविष्कार किया और तेजी ने ठहराव को बाहर निकाल दिया।

ग्वालियर घराने की इस गायकी में जिसे नत्थन पीरबख्श ने प्रचलित किया था, ध्रुपद के गांभीर्य की पूरी झलक मिली थी और तब तक ध्रुपद और ख्याल का बंटवारा नहीं हुआ था। ध्रुपद शैली की विश्वव्यापकता और उसकी अविभाज्यता के सिद्धान्त का खण्डन करने वाले बहुत से ख्याल गायक ही थे और बाद में वे ही उनके खण्डनीय गौरव की उपेक्षा करने लगे। यह वही ख्याल गायक थे जिन्हें ध्रुपद की शिक्षा नहीं मिली थी और जो संगीत के विशेषाधिकार से वंचित थे। ध्रुपद की परम्परागत शैली का का विभाजन अथवा बंटवारा करने वाले बहुत से ख्याल गायक ही थे। जैसे आजकल संगीत के बहुत से दिमागी विद्वान शास्त्रों के संगीत को परम्परागत व्यावहारिक संगीत से विभाजन करते हैं और दूसरे को पहला का गलत अनुवाद अथवा मिथ्या निरूपण मानते हैं, उसी तरह बहुत से ख्याल गायकों ने भी हिन्दुस्तानी संगीत का बंटवारा किया और ख्याल शैली को ध्रुपद शैली के बन्धनों से मुक्त किया और उसे बिल्कुल आजाद बनाया। इसका परिणाम यह भी हुआ कि ख्याल में ध्रुपद के गांभीर्य का अंत हुआ और वह एक अलग अजाद शैली बन गया। यथार्थ में संगीत के क्षेत्र में इस तरह का क्रान्तिकारक परिवर्तन बाद में ख्याल शैली के लिए हानिकारक ही साबित हुआ। संगीत की एकता का सिद्धांत जो ध्रुपद संगीत में अंतर्निहित था बहुत कुछ अनावश्यक-सा बन गया और उसकी विशेषता जाती रही।

ग्वालियर की ख्याल गायकी जिसका कलात्मक निर्माण नत्थन-पीर-बख्श ने किया था ध्रुपद-गायन के कलात्मक अनुशासन से पूरी तरह से सम्बन्धित थी। इसीलिए हम उसे प्रामाणिक, घरानेदार गायकी मानते हैं। ख्याल गायन और उसकी प्रतिष्ठा पर आँच कभी नहीं आई थी और व्यावहारिक सगीत के क्षेत्र में उसका बहुत ऊँचा स्थान था। इस गायकी के अन्वेषक यह दोनों गायक थे और इनके नाम सदैव अमर रहेंगे। यह कहना

भी बिल्कुल ठीक है कि आधुनिक काल में ख्याल-गायन के क्षेत्र में ग्वालियर की गायकी सर्वश्रेष्ठ मानी है। अधिकांश गायकों ने इसी गायकी को ख्याल का आदर्श माना था और अभी भी पुरानी गायकी के मनाने बाले संगीतज्ञ इस गायकी को बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। नत्थन पीरबख्श कैसी अस्वाभाविक प्रतिभा वाले गायक थे, इसका प्रमाण हमें इसी बात में मिलता है कि उन्होंने अपनी सन्तान को शिक्षा देकर उनके द्वारा अपनी इस गायकी का प्रचार किया। उनकी गायकी की मर्यादा की ख्याति सारे देश में स्थापित हो गयी थी और गायक उसे पूरी मान्यता देते थे। महाराज दौलत राव सिंधिया भी इनके शिष्य हो गये थे। इनके तीन होनहार बेटे थे जिनके नाम थे सद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ। यह भी शिक्षा पाकर चोटी के गायक बन गये और देश भर में इनका बहुत नाम हुआ। अब तक सारे देश के गायक इन्हें श्रद्धा-पूर्वक याद करते हैं। अपने जीवन-काल में यह चोटी के ख्याल गायक माने जाते थे। नत्थन-पीरबख्श चोटी के गायक और शिक्षक दोनों थे। आगरा घराने के अन्वेषक घग्घे खुदाबख्श इन्हीं के शिष्य थे और उन्होंने भी इनकी गायकी की बहुत जबरदस्त व्याख्या की और उसमें चार चाँद लगाये। जब हम आगरा घराने का वर्णन करेंगे तब हम इस बात का खुलासा वर्णन करेंगे।

अब हम हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ के बारे में दो चार शब्द कहेंगे और इनकी शिष्य-परंपरा के बारे में भी कुछ बातें बतायेंगे इन तीनों भाइयों में हद्दू खाँ का व्यक्तित्व ही सबसे अधिक प्रभावशाली था और उन्हीं की शानदार, रोबीली और प्रभावोत्पादक गायकी की चर्चा गायक अब तक करते हैं। सुप्रसिद्ध, पूर्वकालीन और लोकमान्य गायकों की चर्चा जब कभी छिड़ जाती है अथवा जब कभी लोग घरानेदार गायकों और वादकों के परम्परागत संप्रदाय का वर्णन करने लगते हैं तो अनिवार्य हो जाता है कि वह हद्दू खाँ का नाम लें। ऐसे वार्ता-प्रवाह में जब कभी संगीत क्षेत्र की भूतपूर्व कथाओं का वर्णन होने लगता है अथवा जब कभी पूर्ववर्ती श्रेष्ठ कला-कार ऐसे रोचक और सोदाहरण वार्तालाप के विषय बन जाते हैं तो यह असम्भव होता है कि हद्दू खाँ का नाम न लिया जाये। हम इस बात को अपने अनुभव से जानते हैं कि जब कभी हम संगीत के बीते कुछ इतिहास का वर्णन करने लग जाते हैं अथवा गायन-वादन की शैलियों के उदाहरण प्रस्तुत करने लगते हैं तो हम किसी कण्ठ के सुरीलेपन का, किसी की मीड़ का, किसी की गमक का, किसी की जोरदार तानों का अथवा किसी के

स्वरों के बहलावों का सोदाहरण वर्णन करने लगते हैं। ऐसा वार्तालाप सदैव मनोरंजक एवं उद्बोधक होता है और उससे हमें व्यावहारिक संगीत की जानकारी भी मिलती है। बड़े बूढ़ों के संगीतज्ञों के संस्मरण बिना हद्दू खाँ के अधूरे रहते हैं। ऐसे संस्मरणों में स्वभावतः एक प्रकार की आत्मीयता होती है जिसमें संगीत-सम्बन्धी जानकारी का भी सम्मिश्रण होता है। विशेष रूप से संगीत के विद्यार्थी ऐसे वर्णन को रोचक समझते हैं और उनका बहुत आनन्द लेते हैं। बिना घरानों के ज्ञान के किसी संगीत के विद्यार्थी की जानकारी अधूरी ही मानी जायेगी।

जहाँ तक ख्याल-गायन का सम्बन्ध है अथवा उसकी तथ्य-संबंधी जानकारी का सम्बन्ध है हद्दू खाँ को भूल जाना असम्भव ही नहीं है परन्तु अस्वाभाविक भी है। इसके अलावा हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास की कड़ियाँ इतनी बिखरी हुई हैं और इतनी असम्बद्ध हैं कि वह अभी जोड़ी जा सकती हैं जब हम प्रसिद्ध घरानेदार गायकों का सही मूल्यांकन ऐतिहासिक प्रसंग में करें। ख्याल शैली का जी विशेष स्थान हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रहा है उसकी जानकारी भी हमें तब मिल सकती है जब हम उसे सुप्रसिद्ध ख्याल गायकों की गायकी से उचित ढंग से सम्बन्धित कर सकें। व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में क्रियाकुशल गायकों और वादकों की गायकी और बाज का थोड़ा-बहुत अध्ययन परम आवश्यक हो जाता है। परन्तु यहाँ यह बात बताना आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में गायकों और वादकों की मौखिक परम्परा भी अपना बहुत मूल्य रखती है और उससे हम अपना मुँह नहीं मोड़ सकते। हिन्दुस्तानी संगीत में मौखिक परम्परा का बड़ा हाथ रहा है। यदि हमारे अधिकांश संगीतज्ञों का ज्ञान, विशेषकर संगीत से सम्बन्धित उनकी जानकारी, इसी मौखिक परम्परा से सम्बन्धित है और लिखित सामग्री के ठोस आधार का अभाव है तो यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। प्राचीन काल में संगीत-शिक्षा स्मृति अथवा स्मरण-शक्ति पर बहुत कुछ आधारित होती परन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि किसी संगीतज्ञ की अपूर्व बुद्धि और कल्पना पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। इसी मौखिक परम्परा के माध्यम से संगीत का ज्ञान कई पीढ़ियों तक पहुँचाया जाता था और 'अनपढ़े' गवैयों को सैकड़ों चीजें याद होती थीं जिनकी कोई लिखित स्वरलिपि उनके पास नहीं होती थी। स्मृति अथवा स्मरण-शक्ति का ऐसा विलक्षण प्रभाव आजकल देखने को नहीं मिलता। यदि विविध संगीतज्ञों की वंशावलियों के ऐसे वर्णन में व्यक्तिगत धारणायें, किंवदंतियाँ और अनेक

प्रकार के पूर्वाग्रह दिखाई देते थे तो यह कोई चिंताजनक बात नहीं थी। कभी-कभी ऐसे वर्णन में विश्वसनीय सूत्र का सहारा भी उपलब्ध हो जाता था और संगीत की वास्तविक पृष्ठभूमि की झलक दिखाई देती थी। घरानेदार गायकों और घरानेदार गायकी का लिखित वर्णन न होना कोई अचम्भे की बात नहीं थी। ऐसा होना स्वाभाविक था और किसी हद तक अब तक भी स्वाभाविक है। आधुनिक संगीत के विद्वानों ने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और शास्त्र-सम्बन्धी विचारों और सिद्धान्तों के अध्ययन ही में उनका पूरा समय व्यतीत हुआ। तो हम किसी हालत में भी मौखिक परंपरा की उपेक्षा नहीं कर सकते। अभी भी वह हमारे लिए लाभदायक साबित होती है। यह हमारा अपना दायित्व है कि हम उसमें सही-सही तथ्यों की खोज करें और संगीत का गुण-विवेचन कर सकें। मौखिक परम्परा के सहारे जो सामग्री हमें उपलब्ध होती है उसकी विश्वसनीयता अथवा प्रामाणिकता की जिम्मेदारी उत्तम घरानेदार संगीतज्ञों ही की होती है जो अपने उत्तर-दायित्व से भली-भाँति परिचित होते हैं और जिनसे संगीत के विद्वान और विचारक पूरा लाभ उठा सकते हैं।

तो जब हम ग्वालियर की गायकी का वर्णन करने बैठते हैं तो यह परम आवश्यक हो जाता है कि हम हद्दू खाँ ऐसे धुरन्धर गायक के व्यक्तित्व को समझने की चेष्टा करें। हद्दू खाँ कोई ऐसे-वैसे मामूली गायक नहीं थे परन्तु ख्याल के उस क्रान्तिकारी युग के प्रवर्तक माने जाते थे। उनका-सा व्यक्तित्व किसी दूसरे गायक का नहीं था। यह नत्थन खाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म ग्वालियर में हुआ था। उनको संगीत की शिक्षा अपने पिता और चाचा दोनों से मिली थी और घराने की गायकी के सारे अंग इनके गले में आ गये थे। यह तो हम बता चुके हैं कि यह कैसे बड़े मुहम्मद खाँ के शिष्य हो गये थे और किसी तरह इन्होंने कव्वाल बच्चों की मुश्किल फिरत भी सीख ली थी। इस कारण इनके गाने में गाम्भीर्य और सुरीलेपन के अलावा पेचीदा फिरत की तानें भी आ गयी थीं। ख्याल गायकी की इन दो विशेषताओं ने इनके गाने को कुछ और ही बना दिया था। जब सरलता, गांभीर्य, सुरीलापन, लाग-डांट, मर्यादा और प्रतिष्ठा के साथ विलक्षण फिरत भी मिल जाती है तो ऐसी गायकी हर तरह से बेजोड़ बन जाती है और उसकी परिपूर्णता अथवा उत्तमता में कोई कमी नहीं रहती। जिस गायकी में ऐसी निर्दोषता हो और जो कला के हर गुण से सुशोभित हो वह हर तरह से अनन्य अथवा बेजोड़ गायकी बन जाती है। इस गायकी में किसी बंदिश

का स्थायी-अंतरा इतने शानदार और कलायुक्त ढंग से किया जाता था कि राग, स्वर, ताल और रचनात्मक श्रृंगार यह सब अनोखे ढग से एक दूसरे से मिल जाते थे और ख्याल-गायन की शोभा बहुत अधिक बढ़ जाती थी। सुर का भराव, राग-विस्तार, रचना के शब्दों का लालित्य और उनका कलायुक्त उच्चारण, स्थायी और अन्तरे की तालबद्ध, गंभीर व्याख्या, गायकी की प्रतिष्ठा और लाग-डांट अथवा उसका रोबीलापन और बंदिश की शानदार बढ़त और फिर इन सबके साथ सुरीली वजनदार तानें—यह सब हद्दू खाँ के गाने के आभूषण थे। स्वरों पर ठहरना, राग और बंदिश की शानदार बढ़त, मींड़, सूत और गमक इत्यादि का कलात्मक प्रयोग, राग की सच्चाई और उसकी भावात्मक व्याख्या और गायकी का गांभीर्य, यह सब गुण हद्दू खाँ की गायकी को सजाते और सँवारते थे। उनकी गायकी का कोई जवाब नहीं था और वह हर तरह से निराली थी।

हद्दू खाँ की गायकी में एक तरह का पुरुषत्व अथवा मर्दानापन भी था जो उसको गंभीर और प्रतिष्ठित बनाता था। उसमें एक तरह का संयम था और वह एक तरह की मर्यादा थी। इस गायकी का एक अलग अनुशासन था जो गायन-कला के कुछ विशेष सिद्धान्तों पर आधारित था जिसकी अपनी अलग विशेषतायें थीं। परन्तु यह केवल एक तरह का औपचारिक अनुशासन ही नहीं था और न किसी बाह्य आडम्बर पर अवलम्बित था। यथार्थ में वह ख्याल-गायन-कला की आत्मा से संबन्धित था और कोरी तकनीक के नियमों पर निर्भर नहीं था। यह गायकी रोबदार और मर्दाना गायकी थी जहाँ तक उसके गांभीर्य का संबन्ध था। परन्तु कला की दृष्टि से भी उसमें एक अनोखा संयम था और एक तरह की सुन्दरता अथवा रोचकता भी थी जिसका प्रभाव दिल और दिमाग अथवा हृदय और चेतना दोनों पर पड़ता था। ग्वालियर की इस शानदार, टक्साली अथवा प्रामाणिक गायकी की मर्यादा को कला और गायकी का कोई दोष दूषित नहीं करता था। वह मर्दाना और जोरदार गायकी मानी जाती थी परन्तु उसमें कोई आक्रमणकारी कर्कशता की भावना नहीं थी। वह हर तरह से सुहावनी और प्रभावोत्पादक गायकी थी और कानों को भली मालूम पड़ती थी। जो लोग ऐसी मर्दाना और शानदार गायकी की आलोचना करते हैं वह ऐसी गायकी की मर्यादा की उपेक्षा करते हैं और उसके गांभीर्य की प्रशंसा करने में असमर्थ होते हैं। जिस गायकी में इतना संयम रहा हो और इतना कलात्मक चमत्कार रहा हो और जो कला के एक विशेष अनुशासन के अधीन रही हो वह अपने ढंग की निराली गायकी थी। वह लोग

जिनके कान पतली और सुरीली आवाजों ही के आदी होते हैं और जो गायकों के भेदों को नहीं जानते और न घरानेदार संगीत की मर्यादा को समझते हैं वह ऐसी वजनदार और शानदार गायकी के मूल्य को नहीं समझते। विशेषकर आजकल जब संगीत के रसिक गायकी की समस्या पर विचार नहीं करते और उसे बुद्धिजीवी ठलुओं की बकवास समझते हैं और जब तरह-तरह की गायकी का मनमाना आविष्कार किया जा रहा है, तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आजकल के समझदार श्रोता भी किसी गायक के सुरीले गायन पर और उसकी तेज तानों और सरगमों पर ही अपनी वाह-वाह करते हैं। ऐसी मनमानी और आजाद अभिरुचि का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है :—

"किसे फ़ुरसत है कि गायकी के भेदों को जाने
हमें तो गाना सुनना है सुरीला हो और लयमय हो।"

जिस गायकी की व्याख्या हद्दू खाँ ने की थी वह ख्याल की प्रतिष्ठित, घरानेदार गायकी थी जो ग्वालियर की गायकी के नाम से पुकारी जाती थी। इसी गायकी को भिन्न-भिन्न गायकों ने सीखा और उस पर अभ्यास किया था। यह गायकी जितनी शक्तिशाली और प्रभावशाली साबित हुई उतनी और कोई गायकी नहीं हुई। कव्वाल बच्चों की फिरत बलदार और पेंचदार थी और उसकी फिरत की तानों के फंदे और पेंच मामूली कण्ठ के लिए अगम्य बन जाते थे। परन्तु फिर भी हमें यह कहना पडेगा कि ग्वालियर की गायकी सरलता और सर्वव्यापकता के सिद्धान्तों पर आधारित थी और गंभीर और प्रभावोत्पादक होने के नाते वह अद्वितीय मानी जाती थी। वह घरानेदार गायकी थी और टकसाली और प्रामाणिक गायकी थी। उसकी मौलिकता में कोई सन्देह नहीं था और उसमें ख्याल गायकी के मूल सिद्धान्तों का समावेश था। इस गायकी का आधार बंदिश के स्थायी-अंतरे पर होता था। इसी विषय-सामग्री को लेकर कोई गायक किसी विशेष राग की कलायुक्त व्याख्या करता था और उसे ख्याल गायन के आभूषणों से अलंकृत करता था और गायकी के तरह-तरह के गहनों से सजाता था हद्दू खाँ ऐसा ही करते थे। परन्तु इस ख्याल गायन में गायक की सृजनात्मक कल्पना अथवा उसकी सौंदर्यात्मक कल्पना का सबसे बड़ा हाथ होता था और उसी से गायकी के और गुणों को भी प्रेरणा मिलती थी। इस मौलिक गायकी में घरानेदार "तालीम" के माध्यम से अनुकरणात्मक कल्पना और व्यावहारिक कल्पना का भी समावेश होता था। परन्तु यह गायकी किसी हवाई कल्पना पर

आधारित नहीं थी और न गायक की मनमानी मौज पर निर्भर थी। यह गायकी ख्याल-गायन के विशेष अनुशासन ही का पालन करती थी।

एक तरह से हद्दू खाँ का यह ख्याल-गायन ग्वालियर की गायकी का शाब्दिक निर्वाचन का अथवा उसका शब्दानुवाद था। परन्तु हद्दू खाँ ऐसे गायक अक्षरचारी नहीं थे और न वह ग्वालियर की गायकी का शाब्दिक अर्थ ही निकालते थे। उनकी गायकी में मौलिक कल्पना और उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा का भी बहुत बड़ा हाथ था। ग्वालियर-गायकी के अनुशासन पर शुद्धाचारवाद का कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता था और न उसमें तकनीक के शिष्टाचार का बाहुल्य था। उसमें गायक की व्यक्तिगत प्रतिभा के लिए बहुत गुंजाइश थी। किसी गायकी का अनुशासन पालन करने से कोई गायक भावुक कलाकार होने के अधिकार से वंचित नहीं हो जाता। गायकी की प्रतिष्ठा अथवा उसकी मर्यादा किसी गायक की कल्पना और उसकी भावुकता पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाती है। ऐसे गायक की प्रतिभा पर कोई रोकथाम नहीं होती है और इसलिए वह अपने ख्याल गायन को शानदार और भावुक बना सकता था। यही कारण था कि हद्दू खाँ की गायकी इतनी प्रभावोत्पादक थी और उसमें इतना प्रभाव था।

यही कारण था कि हद्दू खाँ की ख्याति सारे देश में फैल गई थी और गायकों में उनका विशेष आदर और सम्मान था। वह ख्याल के शास्त्रीय राग-संगीत के विशेषज्ञ थे और वह गायकी की तकनीक के गुलाम नहीं थे। जिस घराने की गायकी का पालन करने वाले गायक उसकी तकनीक पर ही अधिक बल देते हैं और उसके असली संगीत को भूल जाते हैं, वह उस संगीत की आत्मा को आँख से ओझल कर देते हैं और उसके शरीर पर तकनीक के बोझीले गहने लाद देते हैं जिससे उनका गाना नीरस बन जाता है और उसमें उनके घराने की असली संगीत की झलक नहीं दिखाई देती। किसी घराने के ऐसे प्रतिनिधि ही उसके संगीत का मिथ्यानिरूपण करते हैं और बहुत समय तक उसको जीवित रखने नहीं देते। ऐसी परिस्थिति में कोई घरानेदार गायकी कभी-कभी लुप्तप्राय हो जाती है और उसके कुछ धुंधले नक्शे ही इधर-उधर दिखाई देते हैं। यह बात ग्वालियर घराने की गायकी पर भी लागू है। परन्तु अभी हम इस बात पर टिप्पणी नहीं करेंगे।

जो बात हमें स्मरण रखना चाहिए वह यह है कि हद्दू खाँ की टक्कर के ख़्याल गायक इस देश में बहुत हुए हैं। शायद यह कहना गलत न होगा की पिछली ड़ेढ़ शताब्दियों में उनकी-सी विलक्षण प्रतिभा और

ख्याति वाला ख़्याल गायक दूसरा नहीं हुआ। उनके जीवन-काल में तानरस खाँ और मुबारक अली खाँ ही उनकी टक्कर के गायक थे। परन्तु हद्दू खाँ की कुछ बात ही और थी और वह एक तरह से निराले थे। ग्वालियर-नरेश महाराज सिंधिया इन्हें बहुत चाहते थे और इनको अपना दरबारी गायक नियुक्त किया था। इनके आदर सम्मान में भी कोई कमी नहीं होती थी। इनको बहुत पुरस्कार भी मिले थे और सात सौ रुपये वेतन मिलने के अतिरिक्त इनके पास हाथी और घोड़े भी थे। धन और माल के आलावा इनको ख्याति के साथ सम्मान भी अनोखे ढंग का मिला था और अच्छी-अच्छी रियासतों में भी अक्सर यह निमंत्रित होते थे और वहाँ भी उनको बहुत सम्मान मिलता था परन्तु जैसे मुबारकअली खाँ ने जयपुर कभी नहीं छोड़ा, इन्होंने भी ग्वालियर में अपना जीवन व्यतीत किया और वहीं पर उनका स्वर्गवास 1870 में हुआ।

जहाँ तक इनके शिष्यों का संबंध था सबसे पहले तो इनके सुपुत्र मुहम्मद खाँ और रहमत खाँ के नाम आते और इनके साथ उनके भतीजे निसार हुसेन खाँ का नाम उल्लेखनीय है। इनके अलवा जिन गायकों को इनसे शिक्षा प्राप्त हुई और जिनको ख्याति भी मिली वह थे मेंहदी हुसेन खाँ, पंडित दीक्षित, पंडित बालागुरु, पंडित जोशी, बालकृष्ण बुआ इचलंकरजीकर, बन्ने खाँ पंजाबी, इनायत हुसैन खाँ और इमदाद खाँ सहसवानिये और नजीर खाँ आदि यह सब गायक बहुत प्रसिद्ध थे और इनका बहुत नाम था। सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सारगर्भित बात तो यह थी कि महाराष्ट्र के बहुत से सुयोग्य और प्रतिभाशील व्यक्तियों ने इनसे शिक्षा प्राप्त की और नामी गायक बन गये। इनकी गायकी की परम्परा का प्रचार महाराष्ट्र में बहुत हुआ और अभी भी उसकी यादगार तहाँ मौजूद है। ग्वालियर घराने के और किसी गायक की शिष्य-परंपरा का इतना अधिक विस्तार नहीं हुआ था और न उसका इतना व्यापक प्रभाव गायकों पर पड़ा था।

हद्दू खाँ के दूसरे भाई का नाम हस्सू खाँ था। यह नत्थन के दूसरे बेटे थे और इनको भी अपने पिता और अपने चाचा से संगीत की पूरी शिक्षा मिली थी। यह भी बहुत मशहूर गायक थे और अपने भाई हद्दू खाँ की तरह यह भी ग्वालियर दरबार में नियुक्त थे। यह भी बड़ी विलक्षण प्रतिभा वाले गायक थे और इनका भी बहुत नाम था। सच तो यह है कि हद्दू खाँ और हस्सू खाँ के नाम साथ लिये जाते हैं। इस देश के गायक और वादक अभी भी इन दोनों को 'हद्दू-हस्सू खाँ' कहकर पुकारते हैं। इसी से पता चलता है

कि इन दोनों के संगीत में एक तरह का सादृश्य था और दोनों की गायकी बहुत कुछ एक-सी थी। इन दोनों की अलग-अलग प्रतिभा होते हुए भी यह अपने संगीत में एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते थे। आज भी जब लोग इनकी चर्चा छेड़ देते हैं तो इन्हें "हद्दू-हस्सू खाँ" कहकर ही याद करते हैं। इस तरह के और भी उदाहरण हैं, जहाँ दो गायकों के नाम एक साथ लिये जाते हैं और वह कभी-कभी सगे भाई भी होते हैं। कव्वाल बच्चों के घराने के आदि पुरुष शक्कर खाँ और मक्खन खाँ माने जाते हैं परन्तु इनको अभी भी लोग "शक्कर-मक्खन" कहकर पुकारते हैं। पटियाले के ख्याल गायक फतह अली खाँ और अलीबख्श जो रिश्ते में एक दूसरे को अपना भाई मानते थे, "अलियाफत्तू" के नाम से सारे देश में मशहूर थे। इसी तरह सुप्रद्धि ध्रुपद-गायक जाकिरुद्दीन खाँ और उनके भाई अलावन्दे खाँ जो आपस में सगे भाई थे "अलाबन्दे जाकिरुद्दीन" के नाम ही से मशहूर थे। लखनऊ के कथक घराने के कथक-सम्राट बिन्दादीन और उनके छोटे भाई कालका प्रसाद भी "बिन्दा-कालका" अथवा "कालका-बिन्दा" के नाम से पुकारे जाते थे। बिन्दादीन की दो शिष्यायें ननुआ और बचुआ भी "ननुआ-बचुआ" कहकर पुकारी जाती थीं। पिछले जमाने में जब इस घराने के सुप्रसिद्ध कलाकार अच्छन महाराज और उनके छोटे भाई शम्भू महाराज जिन्दा थे तो वह लखनऊ वालों के लिए "अच्छन-शम्भू" अथवा "शम्भू-अच्छन" ही थे। इन दोनों भाइयों के नाम सदा साथ लिये जाते थे। स्व० अच्छन महाराज जब अपने दोनों भाइयों लुच्छू और शम्भू को एक साथ रामपुर रियासत में नाच की शिक्षा दे रहे थे और उसके बाद भी काफी समय तक यह दोनों भाई भी "लुच्चू-शम्भू" अथवा "शम्भू-लुच्चू" के नाम से पुकारे जाते थे और तब इनके नाम के आगे "महाराज" नहीं लगाया जाता था।

ऐसे और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु जिस बात पर हम जोर देना चाहते हैं वह यह है कि हस्सू खाँ भी अपने बड़े भाई हद्दू खाँ की तरह एक माने हुए धुरन्धर ख्याल-गायक थे और उनको भी बहुत ख्याति मिली थी। उनकी शिष्य परम्परा का विस्तार इतना बड़ा न रहा हो परन्तु थे वह भी चोटी के गायक। सुनते हैं कि अपने शिक्षा-काल में जैसा रियाज अथवा जैसी मेहनत वह करते थे वैसा उनका कोई दूसरा भाई नहीं करता था। वह घण्टों तम्बूरा लेकर अपने कण्ठ की साधना करते थे और अपने घराने के संगीत का बगैर किसी घड़ी के दिन-रात अभ्यास करते थे। घंटों वह अपने इस रियाज में डूबे रहते थे और उन्हें अपनी खबर नहीं रहती

थी। यही कारण था कि दरबार में मान मिलने के अतिरिक्त गुणीजन-समाज में भी उनका बहुत सम्मान होता था।

इन दोनों भाइयों के अलावा इनके एक तीसरे भाई भी थे जिनका नाम नत्थू खाँ था। इनकी संगीत शिक्षा भी हद्दू खाँ के साथ शुरू हुई थी और इनको भी अपने पिता और अपने चाचा से शिक्षा मिली थी। परन्तु कहा जाता है कि इनके गुरुओं ने इनके गले को दूसरी शैली पर डाल दिया था। स्थायी और अन्तरा जिस ढंग से यह कहते थे वह निराला था और उसकी शोभा अलग थी। ख्याल के अलावा इनको तराने में भी बड़ी रुचि थी और यह उसे बड़े शौक से और बड़े कलायुक्त ढंग से गाते थे। द्रुत लय में इनके तराने का असली चमत्कार दिखाई देता था। विशेषकर जब यह तराने में तिरवट के बोलों को कहते थे और तान लेकर सम पर आते थे तो तराने का आनन्द चौगुना बढ़ जाता था और श्रोताओं को भी संगीत का बहुत रस मिलता था। वह तराने को तराने की तरह गाते थे और उसमें गायकी, राग और भाव सम्बन्धी अभिव्यंजकता तीनों का समावेश होता था। वह सुप्रसिद्ध गायकों का तराना होता था और वह गम्भीर और उत्साहपूर्ण भी होता था। उसमें स्वर और लय की सच्चाई होती थी और उसका चरित्र बिगड़ता नहीं था। तिरवट इस अनोखे ढंग से ताल मे बिठाई जाती थी कि राग के स्वर बिगड़ने नहीं पाते थे और लय का भी पूरा आनन्द आता था। द्रुत लय भी अपनी सीमाओं के अन्दर होती थी और उसमें कोई अतिशयोक्ति की भावना नहीं होती थी। तिल को तिल रहने दिया जाता था, उसको मस्सा कभी नहीं बनाया जाता था। यह तराना अपनी परम्परागत शैली के नियमों ही का पालन करता था। इस तराने में और आजकल के तराने में वैषम्य था। आजकल जो तराना गाया जाता है उसमें "दिर दिर" की तैयारी ही तराने की पराकाष्ठा मानी जाती है और गायक ऐसी जबांदराजी के द्वारा श्रोताओं से वाह-वाह लेता है और किसी संगीत गोष्ठी में अपने दो घण्टे के निरत शास्त्रीय संगीत को अन्त में इस तरह सफल बनाता है। व्यावहारिक संगीत में तराना आजकल के गायकों का अचूक मंत्र-सा बन गया है।

नत्थू खाँ ख्याल गायकी के विशेषज्ञ थे और तराना केवल शौक से गाते थे। परन्तु जब वह तराना गाते थे तो गायकी के नियमों के अनुसार उसे गाते थे और द्रुत लय की तैयारी ही नहीं दिखाते थे। एक ख्याल गायक की हैसियत से उनको भी बहुत मान-सम्मान मिला था और वह भी एक सम्मानित दरबारी गायक थे। ग्वालियर नरेश ने इन्हें एक हवेली दी थी

और एक बाग भी इनाम में दिया था। महाराष्ट्र के बहुत से ब्राह्मण इनके शिष्य हो गये थे और इन्होंने उनको ख्याल की उत्तम शिक्षा दी थी।

## हद्दू खाँ का घराना और उनके शिष्य

हद्दू खाँ के दो सुपुत्रों के नाम थे मुहम्मद खाँ और रहमत खाँ। यह दोनों बड़े प्रसिद्ध गायक हुए हैं और भारतवर्ष भर में इनका नाम था। निसार हुसैन खाँ हद्दू खाँ के भतीजे थे। इन तीनों को अपने घराने में अपने पिता और चाचा दोनों से शिक्षा मिली थी। तीनों नामी गायक हुए हैं और तीनों की अलग-अलग विशेषतायें थीं। मुहम्मद खाँ बहुत उच्चकोटि के गायक थे और यह शायद "छोटे मुहम्मद खाँ" के नाम से भी पुकारे जाते थे। रहमत खाँ बड़े ही सुरीले गायक थे और सुना है कि उनका कण्ठ इतना सुरीला था और इतना स्वर में भींगा हुआ था कि पता नहीं चलता था कि साज बोल रहे हैं अथवा उनका गला बोल रहा है। अच्छे-अच्छे गायक भी उनका कण्ठ सुनकर चकित हो जाते थे और उनकी नकल नहीं कर पाते थे। इस तरह का सुरीलापन अनोखा था और बरसों की निरन्तर साधना का फल था। ऐसा सुरीलापन कण्ठ की स्वाभाविक मिठास ही नहीं होती परन्तु राग-रागिनियों की कलायुक्त व्याख्या का सुरीलापन भी होता है और वह किसी विशेष गायकी पर आधारित होता है। ठुमरी और भजन का सुरीलापन कुछ और होता है और ख्याल गायकी का सुरीलापन कुछ और। भैरवी और झंझोटी की ठुमरी सुरीले ढंग से गाना और बात है और पूरिया और दरबारी के ख्याल-गायन का सुरीलापन कुछ और बात है। ख्याल संगीत के सुरीलेपन में शास्त्रीय संगीत की प्रामाणिकता होती है जो गले की स्वभाविक मिठास में नहीं होती। इसके अतिरिक्त जो गायक नकली अथवा बनावटी भावुकता के सहारे अपने गायन को सुरीला और रोचक बनाते हैं, वह भी उस सुरीलेपन को नहीं जानते जिसके बेजोड़ विशेषज्ञ रहमत खाँ थे।

वह मनमौजी कलाकार थे और कुछ काल तो वह छत्रे के सरकस के साथ ही इधर-उधर भ्रमण करते रहे। मगर जब कभी गाने बैठ जाते थे तो उन्हें सुनकर गायक भी बेचैन हो जाते थे और कुछ लोगों के आँसू भी निकल आते थे। ऐसा सुरीला गायक अपना कोई ऐसा सुरीला शिष्य तो तैयार नहीं कर सकता मगर कुछ गायक उसकी नकल ही किसी हद तक कर सकते हैं चाहे वह कितनी ही अधूरी क्यों न हो। रहमत खाँ ने बड़ी अवस्था पायी थी और बड़ी उम्र में उनका देहान्त हुआ था।

हद्दू खाँ के भतीजे निसार हुसैन खाँ संगीत-शास्त्रों में बड़ी रुचि रखते थे और उनके गाने में पांडित्य था और ऊँची घरानेदार गायकी थी। वह विद्वान गायक थे और बहुत ही कलायुक्त ढंग से गाते थे और उनको मान-सम्मान भी बहुत मिला था। उनके पास अपने घराने की बंदिशों का खजाना था। वह शिक्षक भी बड़े अच्छे थे। इनके प्रमुख शिष्यों में रामकृष्ण बुआ का बहुत नाम हुआ।

ग्वालियर घराने के इन प्रमुख गायकों का देहान्त इस शताब्दी के आरम्भ में हुआ।

हद्दू खाँ के प्रमुख शिष्यों में महाराष्ट्र के कुछ प्रसिद्ध गायक भी थे जो अधिकतर ब्राह्मण थे। सबसे पहले तो पंडित दीक्षित का नाम याद आता है जो हद्दू खाँ के सुयोग्य शिष्यों में थे। इनके गुरु भाई जोशी बुआ ने भी इनसे बहुत कुछ गायकी का ज्ञान प्राप्त किया था और इनकी संरक्षकता में रहे थे। इनका साधुओं का-सा चरित्र था और यह बड़ी सरल प्रकृति के जीव थे। हम इनको संगीत का सच्चा भक्त और तपस्वी ही कह सकते हैं जिन्हें धन और ख्याति का कोई लोभ नहीं था। इनमें आत्म-सम्मान की गहरी भावना थी और यह धन और यश के लोभ में किसी को जाकर अपना गाना खुद नहीं सुनाते थे। लोग इनका गाना सुनने के लिये स्वयं इनके पास आते थे। धन और मान को छोड़कर यह संगीत ही की उपासना करते थे। इनकी गुरु-भक्ति भी बड़े ऊँचे दर्जे की थी। गुरु से प्राप्त हुई संगीत-विद्या को यह एक तरह का दीक्षा-संस्कार समझते थे और उस पुनीत कला के आगे अपना सिर झुकाते थे। अपने गुरु के संगीत में वह सरस्वती की प्रतिभा देखते थे। इनकी गणना हद्दू खाँ के सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में होती थी।

## जोशी बुआ

यह भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और इनको भी अपने गुरु से बड़ी अच्छी शिक्षा मिली थी। कठिन परिश्रम करके यह बड़े सुप्रसिद्ध गायक बन गये थे और हिन्दुस्तान भर में इनका नाम था। इनके माने हुए शिष्यों में बालकृष्ण बुआ भी थे जिनसे सारा महाराष्ट्र परिचित था।

## बालागुरु

यह भी हद्दू खाँ के शिष्यों में थे। यह भी ख्याल बहुत अच्छा गाते थे और इनकी आवाज सुरीली और पारदार थी। यह ग्वालियर ही में रहे और इनका देहान्त महाराज माधोराव सिंधिया के राज्य-काल में हुआ।

आधुनिक युग में हद्दू खाँ के घराने के शिष्यों में जैसा नाम बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर का महाराष्ट्र में हुआ वैसा और किसी का नहीं हुआ। जोशी बुआ से ही इनको संगीत की शिक्षा मिली थी और मेहनत करके इन्होंने ग्वालियर-गायकी की ऐसी सच्ची साधना की थी कि यह बड़े प्रसिद्ध ख्याल गायक बन गये थे। हद्दू खाँ के सुपुत्र मुहम्मद खाँ के साथ भी यह कुछ काल तक रहे और बम्बई की महफिलों में अक्सर उनके साथ गाया करते थे। इनकी गायकी को बहुत ख्याति मिली थी और इन्हीं को इस बात का श्रेय था कि इन्होंने ग्वालियर-गायकी का इतना जबरदस्त प्रचार सारे महाराष्ट्र में किया और बहुत से सुयोग्य और नामी शिष्य भी बनाये। इनके प्रसिद्ध शिष्यों में विष्णु दिगम्बर पलुसकर, मिरासी बुआ, गंडू बुआ औंधकर, अनन्त मनोहर जोशी, पाटे बुआ, इंगले बुआ आदि थे। इन्होंने अपने सुपुत्र अन्ना बुआ को भी एक तैयार गायक बनाया था परन्तु उनका देहान्त जवानी में हो गया। अनन्त मनोहर जोशी के पहले के शिष्यों में स्व० श्रीकृष्ण नारायण रतनजंकर और उनके सुयोग्य सुपुत्र गजानन राव जोशी थे। गजानन राव जोशी तो बाद में बम्बई के सुप्रसिद्ध गायक स्व० विलायत हुसैन खाँ के भी शिष्य हो गये थे। पण्डित विष्णु दिगंबर पलुस्कर की शिष्य परम्परा का विस्तार बहुत था। उनके सुप्रसिद्ध शिष्यों में ओंकार नाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, बी० आर० देवधर और नारायन राव व्यास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परन्तु इनमें से कोई गायक ऐसा नहीं था जिसने पूज्य गुरु की ग्वालियर गायकी की ओर कोई विशेष ध्यान दिया और उसका अभ्यास किया। महाराष्ट्र संप्रदाय के गायकों में पिछले जमाने में ग्वालियर गायकी के सम्बन्ध में जो प्रतिष्ठा ग्वालियर के राजाभैया पुंछ वाले कृष्णाराव पंडित को मिली वैसी और किसी गायक को नहीं मिली। कृष्णाराव पण्डित ग्वालियर घराने के सुप्रसिद्ध गायक शंकर पण्डित के सुपुत्र हैं। राजाभैया पुंछ वाले इन्हीं शंकर पंडित के प्रमुख शिष्य और बड़े अनुभवशील और कुशल गायक थे जिनके गाने में ग्वालियर गायकी की थोड़ी-बहुत झलक दिखाई देती थी।

## ग्वालियर घराने के अन्य गायक

ग्वालियर घराने के और गायकों को भी अच्छी ख्याति मिली। इनमें सबसे पहले मेंहदी हुसैन खाँ का नाम आता है जिनका जन्म ग्वालियर में हुआ था। यह हस्सू खाँ के पौत्र थे और इन्हें संगीत-शिक्षा अपने बुजुर्गों से मिली थी। इनकी गणना अच्छे, अनुभवी गायकों में होती थी। इनकी

शिष्या मंगू बाई बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। इनका देहान्त सन् 1915 में हुआ था।

## नजीर खाँ

मशहूर गायक वजीर खाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म 1850 में आगरे में हुआ था। संगीत की शिक्षा इनको अपने पिता ही से मिली थी। फिर यह ग्वालियर चले आये और हद्दू खाँ के संपर्क में आकर उनसे बहुत प्रभावित हुए। परिश्रम करके यह बहुत प्रवीण गायक बन गये थे और इनका बहुत नाम हुआ। यह अपने यौवन-काल ही में नामी गवैये बन गये थे और जयपुर, इन्दौर, ग्वालियर और जोधपुर ऐसी रियासतों में इन्हें पुरस्कार के आलावा आदर सम्मान भी मिला था। नेपाल तक इन्होंने ख्याति पाई थी और बड़े-बड़े इनाम पाये थे। जोधपुर दरबार में यह नौकर भी हो गये थे। इनकी मृत्यु आगरे में 1910 में हुई। उन्होंने अपने छोटे भाई मुनव्वर खाँ को बहुत अच्छी शिक्षा दी थी जो बाद में इंदौर के मशहूर सेठ हुकुम चन्द के यहाँ नौकर हो गये थे।

## हफीज खाँ

हद्दू खाँ के एक और शिष्य थे जिनका नाम कल्लन खाँ था। इनके बड़े सुपुत्र का नाम हफीज खाँ था जिनको इन्होंने बहुत अच्छी शिक्षा दी थी और यह सब रेवाड़ी के निकट गुड़यानी नाम की जगह के निवासी थे। हफीज खाँ बहुत अच्छा गाते थे। यह हैदराबाद में ही रहे। इन्हें और गायकों से भी थोड़ी-बहुत शिक्षा मिली थी और यह एक बड़े तैयार गायक बन गये थे। पहले यह मैसूर रियासत में रहे और बाद में इन्दौर राज्य में नियुक्त हो गये थे। सन् 1920 के लगभग इनका देहान्त इन्दौर में हुआ।

## बशीर खाँ

कल्लन खाँ गुड़यानी के दूसरे सुपुत्र का नाम बशीर खाँ था। अपने पिता के अलावा इन्होंने देहली घराने के उमराव खाँ और सहसवान के इनायत हुसैन से भी शिक्षा प्राप्त की थी। इनको भी बहुत ख्याति मिली थी और यह भी मैसूर, भावनगर और इन्दौर ऐसी रियासतों में नियुक्त रहे। परन्तु यह आजाद प्रकृति के गायक थे और किसी जगह टिक कर अधिक काल तक नहीं रहे। इनका देहान्त 1940 में हुआ।

## ग्वालियर की गायकी का भविष्य

किसी नामी घराने के अन्वेषक तथा मार्गदर्शक उस घराने की शैली का निर्माण ही नहीं करते परन्तु उसका ठीक-ठीक अनुवाद भी करते हैं। वे

ही अपने घराने की शैली की प्रामाणिक व्याख्या करते हैं और अपनी शिष्य-परंपरा को भी सच्ची प्रेरणा देते हैं। हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ ने जिस गायकी की शिक्षा नत्थन खाँ और पीरबख्श से पाई थी वह उन्होंने अपनी सन्तान को और अपने शिष्यों को पहुँचाई। जिस गायकी का मौलिक अनुवाद हद्दू खाँ और उनके भाइयों ने किया था उसी का अनुवाद उनके शिष्यों ने भी अपने-अपने ढंग से किया था। इस शिष्य-परंपरा की अपूर्व बुद्धि अथवा प्रतिभा घटती-बढ़ती रही और उसका उतार-चढ़ाव होता रहा। जब अगली पीढ़ियों के गायक अपने घराने के उच्चतम संगीत की प्रेरणा के स्रोत अथवा उद्गम स्थान से दूर होते चले गये तो मौलिक गायकी का तरह-तरह का भाषान्तर होता चला गया और यह स्वाभाविक था कि उसकी प्रामाणिकता में कमी आ जाये। समय के परिवर्तनों के साथ यह भी हुआ कि जो प्रतिष्ठित गायकी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी उसकी अवनति होती चली गयी। इसके साथ-साथ वह घरानेदार संगीत जो उच्च शिखर पर विराजमान था, उसका स्तर भी गिरता चला गया। ग्वालियर की गायकी एक तरह से लुप्तप्राय हो गयी है। जिन गायकों के गुरुजनों ने इस गायकी का अभ्यास किया था उनके शिष्यों ही ने इस गायकी की उपेक्षा की। इसके अतिरिक्त न तो पहला रियाज रहा और न पहली-सी संगीत-साधना। इसके साथ न वे गले हैं और न वह प्रतिभा। जो गले ग्वालियर की गायकी के लिए अनुकूल थे वे अब सुनने को नहीं मिलते और न उनकी लाग-डाँट ही सुनने को मिलती है। तो घरानेदार संगीत के ऐसे अवनति-काल में यदि हम ग्वालियर की असली गायकी को नहीं सुन पाते तो यह कोई अचम्भे की बात नहीं है और प्रतिष्ठित गायकियों पर भी यह बात लागू है। हम इस बात से सन्तुष्ट नहीं हो सकते कि संगीत का कोई भावुक और मनमौजी आलोचक किसी बिगड़ी हुई और अधूरी गायकी को ग्वालियर की गायकी के नाम से पुकारे। पुरानी बंदिशों को रट लेना ही काफी नहीं होता। यदि कोई गायक उन्हें कलायुक्त ढंग से न गा सके और न उस गायकी की उचित व्याख्या कर सके। किसी गायकी को प्रामाणिक साबित करना उसकी सच्ची व्याख्या पर ही निर्भर होता है। यही गायकी की कसौटी होती है। परन्तु यह जरूर कहना पड़ेगा कि ग्वालियर गायकी की यादगार बहुत से लोगों के मनों में बस गयी है।

●

# 4

# आगरा घराना

गायकों के प्रतिष्ठित घरानों में आगरा घराने का बहुत नाम हुआ है। जहाँ तक गायकी का सम्बन्ध है इस घराने की गायकी का बड़ा गहरा सम्बन्ध ग्वालियर की गायकी से रहा है। परन्तु इसके पहले कि हम इस तथ्य पर प्रकाश डालें, इस घराने के जन्म के बारे में भी थोड़ा-बहुत बताना आवश्यक है। इस घराने का जन्म कैसे हुआ यह भी एक दिलचस्प कहानी है। सच तो यह है कि घरानों के जन्म में संयोग का बहुत हाथ होता है। किसी भी घराने का जन्मदाता उसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में पहले से कुछ नहीं कह सकते। घरानों का विकास कभी-कभी कुछ विशेष परिस्थितियों में होता है। ऐसा मालूम पड़ता है मानो कुछ अदृश्य शक्तियाँ ही उनकी उत्पत्ति का कारण बन जाती हैं। जो कुछ भी हो घरानों के जन्मदाता ही उसके मार्गदर्शक भी बन जाते हैं।

यह तो हम जानते हैं कि आगरा घराने के आदि पुरुष अकबर युग के हाजी सुजान खाँ थे जो ध्रुपद और धमार शैलियों के विशेषज्ञ थे। इन्हीं के वंश में 1780 में श्याम रंग नाम के एक गायक हुए जो नौहार बानी के ध्रुपद के माने हुए विशेषज्ञ थे। यह अलाप, ध्रुपद और होरी धमार ऐसी शैलियों ही का अधिक सदुपयोग करते थे। इन्होंने बहुत से शिष्यों को संगीत की शिक्षा दी थी जो दूर-दूर तक फैल गये थे। इनके एक और भाई थे जिनका नाम सरसरंग था और वह भी बड़े अच्छे गायक थे। यह दोनों भाई काशी-नरेश वीरभद्र सिंह के यहाँ नौकर थे जिनका निवास-स्थान उस समय आगरा था। श्यामरंग को हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान था और वह हिन्दी में

कविता भी करते थे। दोनों भाइयों में आपस में बहुत प्रेम था और यह दोनों आगरा छोड़कर बाहर नहीं गये।

श्यामरंग के छोटे पुत्र का नाम घघ्घे खुदाबख्श था और इनका जन्म अगरा में सन् 1800 में हुआ था। इन्होंने अपने घराने की ध्रुपद-धमार शैली की उत्तम शिक्षा पाई थी। परन्तु दुर्भाग्यवश इनकी अवाज घघ्घी थी और इस दोष को देखते हुए घराने के लोग इनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे। इन्हें इस तरह की लापरवाही से बहुत दुख पहुँचता और इनके मन में ग्लानि भी होती थी। वह मन-ही-मन अपने भाग्य को कोसते थे और अपने को एक तरह से निराश्रय पाते थे। एक दिन उन्होंने ग्वालियर जाने की ठान ली और फिर वह अपने इस इरादे से पीछे नहीं हटे। वह किसी तरह ग्वालियर पहुँच गये। उन्होंने नत्थन खाँ और पीरबख्श के बारे में पहले सुन रखा था। इसलिए वहाँ पहुँच कर वह उनकी सेवा में उपस्थित हो गये और उन्हें अपने दुर्भाग्य की कहानी सुनाई। उन दोनों गायकों ने जब इनकी बात सुनी तो उन्हें इन पर बड़ी दया आई और उन्होंने बड़ी सहानुभूति से उन्हें पूरा दिलासा दिया और अपने पास ही इन्हें ठहराया। इसका यह भी कारण था कि नत्थन खाँ और पीरबख्श ने आगरा घराने से बहुत कुछ ध्रुपदों और होरियों की शिक्षा पाई थी और इस तरह वह आगरा घराने का बहुत आदर करते थे। उन्होंने खुदाबख्श से कहा कि यदि उन्हें ख्याल शैली से प्रेम है और वह ख्याल-गायन सीखना चाहते हैं तो वह उन्हें बड़े चाव से शिक्षा देंगे और रियाज के द्वारा उनके कण्ठ के दोष को भी दूर करेंगे। परन्तु शर्त केवल यह थी कि जैसा वह बतायें उसी ढंग से खुदाबख्श जी लगाकर निरन्तर अभ्यास करते रहें। खुदाबख्श ने यह सुनकर अपने भाग्य को सराहा और शिक्षा की सुविधा पाकर मेहनत में जुट गये। कहा भी है कि "करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान।" कुछ समय के बाद घघ्घे खुदाबख्श की अवाज का दोष जाता रहा और वह ग्वालियर की ख्याल गायकी में पारंगत हो गये और बाद में सारे भारतवर्ष में उनको बड़ी ख्याति मिली।

आधुनिक युग में घघ्घे खुदाबख्श ही आगरा घराने के अन्वेषक और मार्गदर्शक माने जाते हैं और इन्हीं के वंशज इस घराने की प्रतिष्ठा के उत्तराधिकारी बने। जब यह आगरे पहुँचे तो लोग उन्हें सुनकर बड़े अचम्भे में पड़ गये। इनके गाने की निर्दोषता को देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर तो इनका नाम दूर-दूर तक फैल गया और इनकी गणना देश के सर्व-

श्रेष्ठ गायकों में होने लगी और गुणीजन-समाज में भी इनका बहुत आदर-सम्मान होने लगा। रामपुर और जयपुर ऐसी संगीत से संबन्धित मशहूर रियासतों में भी इनको बहुत सम्मान मिला। इनके जीवन की बहुत सी घटनायें बहुत रोचक हैं परन्तु उन सबका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता।

घग्घे खुदाबख्श कितने धुरंधर और विद्वान गायक थे, इसका अनुमान हम इसी बात से लगा सकते हैं कि प्रसिद्ध ध्रुपद-गायक बहराम खाँ और वह आपस में बड़े जिगरी दोस्त थे और जयपुर दरबार में भी दोनों एक साथ थे। इन दोनों प्रसिद्ध और बेजोड़ गायकों की गाढ़ी मित्रता के बहुत से दिलचस्प किस्से सुनने में आते हैं जिन सबका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। परन्तु यह मानी हुई बात है कि जिस तरह बहराम खाँ ध्रुपद-गायन में अद्वितीय थे उसी तरह घग्घे खुदाबख्श भी ख्याल-गायन में अपना सानी नहीं रखते थे।

जैसे आधुनिक युग में हद्दू-हस्सू खाँ ग्वालियर घराने की गायकी के सर्वश्रेष्ठ अनुवादक माने जाते थे उसी तरह घग्घे खुदाबख्श भी आगरा घराने और उसकी गायकी के प्रथम अन्वेषक माने जाते थे। इस तरह उस विशेष युग के समकालीन गायकों और वादकों में, जैसे बहराम खाँ ध्रुपद-गायक, रजब अली खाँ वीणा-वादक और अमृत सेन सितार-वादक अपनी-अपनी जगह सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे, उसी तरह देहली घराने के प्रसिद्ध गायक तानरस खाँ, कव्वाल बच्चों के घराने के प्रतिष्ठित गायक मुबारक अली खाँ और आगरा घराने के अद्वितीय गायक घग्घे खुदाबख्श भी अपने-अपने ढंग के निराले गायक माने जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के यह बेजोड़ संगीतज्ञ संगीत की भिन्न-भिन्न शैलियों के विशेषज्ञ थे। ग्वालियर गायकी और आगरा गायकी की समरूपता और उनका तात्विक साम्य तर्कसंगत था। उनकी समानता का एक और विशेष कारण था। ग्वालियर घराना और आगरा दोनों ने ध्रुपद शैली के सैद्धान्तिक आधार को मान्यता दी थी और उसको अपना अनुमोदन दिया था। इन दोनों घरानों की व्यावहारिक शैली की गरिमा और श्रेष्ठता का कारण भी यही था। परन्तु शायद कव्वाल बच्चों के घराने वाले और देहली के घराने वाले ध्रुपद शैली को इतनी अधिक मान्यता नहीं देते थे और न उनकी गायकी पर इस शैली के अनुशासन का ही कोई विशेष प्रभाव पड़ा था। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि कव्वाल बच्चों की गायकी अपने ढंग की निराली गायकी थी और देहली के घराने की ख्याल गायकी को भी अपने ढंग से बहुत प्रतिष्ठा मिली थी।

हम घग्घे खुदाबख्श को आगरा घराने का प्रथम अन्वेषक अपना मार्गदर्शक तो मानते ही हैं परन्तु इसके साथ-साथ हम उन्हें आगरा घराने की गायकी का आविष्कारक भी मानते हैं। उनके बाद इस घराने के संरक्षक उनके सबसे बड़े सुपुत्र गुलाम अब्बास खाँ के अलावा उनके और भी शिष्य थे जिनके नाम थे (1) इनके भतीजे शेर खाँ (2) भरतपुर वाले अली बख्श और (3) पंडित विश्वनाथ के सुपुत्र पंडित शिवदीन जो जयपुर राज्य के प्रधान मंत्री थे।

## गुलाम अब्बास खाँ

यह घग्घे खुदाबख्श के सबसे बड़े सुपुत्र थे और इनका जन्म आगरे में 1822 और 1825 के बीच में हुआ था। इनकी संगीत-शिक्षा का दायित्व बहुत कुछ इनके चचेरे भाई शेर खाँ पर था और उन्होंने ही इन्हें सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया और एक कुशल गायक बनाया था। गुलाम अब्बास खाँ बड़ी विलक्षण प्रतिभा के गायक थें और इन्होंने अपने संगीत के ऋण को बड़ी शान से चुकाया, जब शेर खाँ के इकलौते बेटे नत्थन खाँ को शिक्षा देकर इन्होंने एक नामी धुरंधर गायक बनाया। इन्हीं से शिक्षा पाकर नत्थन खाँ भारतवर्ष के बेजोड़ ख्याल-गायक बने और उन्होंने इतनी जबरदस्त ख्याति पाई। गुलाम अंब्बास खाँ बड़ी अपूर्व बुद्धिवाले और विलक्षण सूझ-बूझ के गायक थे जो एक बेजोड़ शिक्षक भी थे। यह बहुत ऊँचे दर्जे के ख्याल गायक थे और असली ख्याल गायक थे और असली ख्याल गायकी के सिद्धांत को जानते थे। इनके गाने में स्वरों का बहुत आनन्द आता था। यह सच्चे और सुरीले स्वर-उच्चारण ही को सबसे अधिक महत्व देते थे। जिस तरह से यह अपने स्वरों पर शांत भाव से ठहरते थे और उनकी व्याख्या रागों के हिसाब से करते थे, उससे इनका गाना बहुत प्रभावोत्पादक बन जाता था और श्रोताओं पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। उन्होंने बरसों स्वर साधना की थी और अपनी साँस को बढ़ाने के लिए बहुत अभ्यास किया था। अपनी संगीत-शिक्षा के जमाने में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत का भी पालन किया था।

इन्होंने अपने ममेरे भाई घसीट खाँ से भी बहुत-सी होरियाँ और धमारें सीखी थीं और इन्हें ध्रुपद का भी बड़ा अच्छा ज्ञान था। यही कारण था कि इनको स्वरों पर देर तक ठहरने की आदत पड़ गयी थी। जो गायक किसी राग की व्याख्या करते समय अपने स्वरों पर उचित ढंग से ठहरता है

और उनका आनन्द लेता है वह अपने राग ही को सच्चा नहीं बनाता परन्तु गायकी के मूल सिद्धान्त का भी पालन करता है और अपने श्रोताओं को भी आनन्द पहुँचाता है। जब यह सुर पर ठहरते थे और किसी राग की अनोखी व्याख्या करते थे तो समझदार और भावुक श्रोता तड़प उठते थे। जैसे इनकी साँस लंबी थी वैसी इन्होंने उम्र भी बहुत लंबी पाई थी और इनका देहान्त 1932 के आस-पास हुआ।

## कल्लन खाँ

वैसे तो इनका असली नाम गुलाम हैदर खाँ था। परन्तु यह कल्लन खाँ के नाम से ही सारे भारतवर्ष में मशहूर हो गये थे। यह गुलाम अब्बास खाँ के छोटे भाई थे और घघ्घे खुदाबख्श के छोटे बेटे थे। इनका जन्म भी आगरा में हुआ था। इनके बड़े भाई गुलाम अब्बास ही ने इन्हें संगीत की शिक्षा दी थी और संगीत में इनकी देखभाल की थी। इसके साथ-साथ इन्हें एक सुयोग्य गायक भी बनाया था। दस-बारह साल तक इनकी शिक्षा का यह क्रम जारी रहा। इन्होंने अपने पिता की गायकी के रंग को अपनाया और अच्छा कण्ठ पाकर अभ्यास भी जी लगाकर किया। अपने जमाने के प्रमुख ख्याल-गायकों में इनका नाम था। इन्होंने संगीत की और भी बहुत सी जानकारी प्राप्त की थी और इन्हें बहुत से होरी-ध्रुपद भी याद थे। इनकी एक निराली विशेषता यह थी कि यह बड़ी सूझ-बूझ वाले विद्वान और प्रौढ़ संगीत-शिक्षक थे। महाराज माधोसिंह के अपने जमाने में यह जयपुर राज्य में नियुक्त हो गये थे। इसी जमाने में इन्होंने संगीत की शिक्षा और संगीत के प्रचार का महान् कार्य किया। इनकी दिनचर्या में संगीत-शिक्षा देना अनिवार्य था और प्रतिदिन कुछ शिष्यों को शिक्षा देते थे। इन्हें संगीत-शिक्षा से विशेष प्रेम था और यह बहुत ही जी लगाकर और बड़े परिश्रम से अपने शिष्यों को संगीत की शिक्षा देते थे। शिक्षा के मामले में यह अपना सानी नहीं रखते थे। घराने के बहुत से तरुण गायकों को इनसे तालीम पहुँची जिनमें तसद्दुक हुसैन खाँ (इनके इकलौते सुपुत्र) विलायत हुसैन खाँ, बशीर खाँ, खादिम हुसैन और अनवार हुसैन इत्यादि प्रमुख थे। स्व० उस्ताद फैयाज खाँ ने भी इनसे कुछ चीजें याद की थीं।

कल्लन खाँ एक सीधे-सादे, सरल प्रकृति के इंसान थे जो पिछले बुजुर्ग कलाकारों की याद दिलाते थे। यह इतने विद्वान और अनुभवशील शिक्षक थे कि इन्होंने बहुत पहले मुरादाबाद के प्रसिद्ध गायक नजीर खाँ और गफ़ूर

खाँ को भी ख्याल की शिक्षा दी थी। लखनऊ के 1924 के अखिल भारत संगीत-सम्मेलन में स्व० भातखण्डे जी ने इनको निमंत्रित किया था परन्तु किसी कारणवश वह यहाँ नहीं आ सके। इस कमी को स्व० उस्ताद फैयाज खाँ ने पूरा किया था और इस संगीत-सम्मेलन ने उन्हें देश का सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायक माना था। यह सच है कि कल्लन खाँ आगरा घराने के बहुत प्रसिद्ध और सम्मानित गायक थे और इनका देहान्त जयपुर में 1925 में हुआ।

## नत्थन खाँ

यह शेर खाँ के इकलौते लड़के थे। इनका असली नाम निसार हुसैन था, मगर संगीत-संसार इन्हें नत्थन खाँ के नाम से ही जानता था। संगीत-शिक्षा इन्हें अपने चाचा गुलाम अब्बास खाँ से मिली थी और उन्होंने ही इन्हें एक सुयोग्य और नामी गायक बनाया। परन्तु इन्हीं घराने के और लोगों को भी लाभ पहुँचा जिनमें घसीट खाँ और ख्वाजा बख्श के नाम उल्लेखनीय थे। नत्थन खाँ ने भारतवर्ष के और प्रसिद्ध गायकों को भी सुना और इस तरह अपने संगीत के ज्ञान को भी बढ़ाया। इन्होंने परिश्रम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी और इनकी प्रतिभा ने इनका बहुत साथ दिया। आगरा घराने के सर्वश्रेष्ठ गायकों में इनका नाम था। यदि यह पूछा जाय कि पिछले सौ वर्षों में आगरा घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक कौन थे तो तीन गायकों के नाम लिये जायेंगे-गुलाम अब्बास खाँ और उनके दो परम शिष्य नत्थन खाँ और फैयाज खाँ। आधुनिक युग में गुलाम अब्बास खाँ इस घराने के गुरु और संरक्षक माने जाते थे। जब तक उनका देहान्त नहीं हुआ तब तक-1932 तक वे इस घराने के संरक्षक और मार्गदर्शक थे। नत्थन खाँ भी अपने जीवन-काल के अन्त तक 1902 तक-इस घराने के सबसे नामी गायक माने जाते थे और अपने जीवन-काल में उनकी गणना भारत के सर्वश्रेष्ठ ख्याल गायकों में होती थी। उनके जमाने में समकालीन गायकों में बम्बई के अल्लादिया खाँ का बहुत नाम था।

जब तक नत्थन खाँ जिन्दा रहे वह आगरा घराने के सबसे प्रसिद्ध गायक माने जाते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्नीस सौ पचास के अंत तक स्व० उस्ताद फैयाज खाँ ही इस घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक माने जाते थे। यदि यह कहा जाये कि उस्ताद फैयाज खाँ अपने जमाने के सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायक थे तो यह भी बिल्कुल ठीक था। शायद यह कहना गलत न होगा कि

वह बीसवीं शताब्दी के सबसे नामी ख्याल-गायक थे। संगीत के इतिहास लेखक इस बात को ठीक तरह से समझते हैं कि किस तरह किसी घराने के एक-दो गायक ही उसकी गायकी की शानदार व्याख्या करते हैं। यदि नत्थन खाँ ने आगरा घराने की गायकी की औपचारिक तकनीक की सबसे जबरदस्त व्याख्या की थी तो फैयाज खाँ ने इस गायकी के बहुपक्षी व्यक्तित्व को प्रकाशित किया था। और यदि नत्थन खाँ ने अपने घराने की गायक का प्रामाणिक शब्दानुवाद किया था तो फैयाज़ खाँ ने इस गायकी की कलात्मक व्याख्या की थी और इसमें चार चाँद लगाये थे। दोनों ने अपने-अपने ढंग से घराने की गायकी का अलग-अलग ढंग से अनुवाद किया था। परन्तु गुलाम अब्बास खाँ के अलावा इन दोनों ही ने इस घराने की प्रतिष्ठा को स्थापित किया था। आधुनिक युग में ये दोनों ही इस घराने के सबसे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित गायक थे। यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि इस घराने के शिष्यों में भास्कर राव बखले ही सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। आगे चलकर इनके बारे में कुछ और कहा जायेगा।

नत्थन खाँ के गाने की कई विशेषतायें थीं। पहली बात तो यह थी कि वह बहुत विलम्बित लय में गाते थे और इनका ताल-ज्ञान अनोखा था। विलम्बित लय में भी वह तानों की बौछार कर सकते थे और फिर असानी से सम पर आ सकते थे। यह हर गायक नहीं कर सकता था। उनको तालों पर पूरा अधिकार था। उन्होंने अपने गाने को गायकी के तरह-तरह के आभूषणों से सजाया था और वह बड़े धुरंधर गायक थे। विलबित लय में गाने के अलावा उनकी बोल-तानों का भी जवाब नहीं था और लय के मुश्किल दर्जों में बिठाकर वह इनको बड़े सुन्दर ढंग से कहते थे और इसलिए श्रोताओं को भी बहुत आनन्द आता था। घराने के और गायकों ने ऐसी बोल-तानों का अभ्यास किया था। इस घराने के मशहूर गायक स्व० विलायत हुसैन खाँ भी इन बोल-तानों के विशेषज्ञ थे। नत्थन खाँ लयकारी के प्रकाण्ड पंडित थे और अपने गाने में लय के अद्भुत और सूक्ष्म दर्जों को बड़ी ही खूबी से दिखाते थे। वह अस्थाई और अंतरा भी बड़े कलात्मक ढंग से कहते थे और बंदिश के रचनात्मक शृंगार को ध्यान में रखते थे। वह गायकी के अनुशासन का पालन करते थे और इसीलिए उनके गाने में गायकी का कोई दोष नहीं था और उनका गाना कला के बहुत से आभूषणों से सुशोभित था।

नत्थन खाँ अपने जमाने के सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायकों में थे। इनके सम-

कालीन गायकों में पटियाले के अलीबख्श और फतह अली खाँ, खुर्जे के जहूर खाँ, सिकन्दरबाद के कुदरतुल्ला खाँ, देहली के उमराव खाँ, जोधपुर के नजीर खाँ, कोल्हापुर के अल्लादिया खाँ, अतरौली के महबूब खाँ 'दरस', सहसवान के इनायत हुसैन खाँ और ग्वालियर के रहमत खाँ बहुत मशहूर गायक थे और उन सबको भी हम नहीं भूल सकते। इन सबके साथ ही नत्थन खाँ की गणना होती थी। तरह-तरह के घरानों के प्रसिद्ध गायकों के साथ ही इनका नाम लिया जाता था। यह अपने जमाने में आगरा के सबसे प्रसिद्ध गायक थे। और यह संगीत के बड़े-बड़े दंगलों में भाग लेते रहे और इस तरह अपने सम्मान को बढ़ाते रहे। सन् 1890 में यह मैसूर राज्य में नियुक्त हो गये थे और अपने जीवन के अंत तक वहाँ रहे। महाराजा मैसूर इनके गाने से से बहुत खुश थे और इनका वहाँ बहुत आदर सत्कार होता था। इन्होंने वहाँ बड़ी इज्जत पाई थी। इनका निधन 1901 में हुआ।

नत्थन खाँ के पाँच लड़के थे जिनके नाम थे—मुहम्मद खाँ, अब्दुल्ला खाँ, मुहम्मद सिद्दीक खाँ, विलायत हुसैन खाँ और नन्हें खाँ।

## मुहम्मद खाँ

यह नत्थन खाँ के सबसे बड़े सपुत्र थे और इनका जन्म आगरे में 1870 के लगभग हुआ था। अपने पिता के निधन के पश्चात् यह बम्बई आकर बस गये थे और अपने घराने को सँभाला था। इनको अपने पिता से संगीत की बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी। परन्तु इन्हें जीवन के आरम्भ-काल से संगीत-विद्या का भी बहुत शौक था और कुतूहल से प्रेरित होकर इन्होंने घराने के बड़े-बूढ़ों से भी बहुत ज्ञान प्राप्त किया था। अच्छी-अच्छी बंदिशों और चीजों के आलवा इन्हें राग-रागिनियों के ज्ञान में भी बहुत हार्दिक रुचि थी। इस सम्बन्ध में इन्होंने बहुत-सी अछोप अथवा प्रचलित रागों का ज्ञान प्राप्त किया। इनके पास ऐसी अछोप रागों का अनोखा संग्रह था। इन्हें रागों के प्रकार भी बहुत याद थे और इनके पास कान्हरों का, टोड़ियों का, मल्हारों का, कल्यानों का और सारंगों इत्यादि का बड़ा अनूठा संग्रह था। नत्थन खाँ ऐसे धुरंधर गायक के सबसे बड़े सुपुत्र होकर घराने में इनका बड़ा मान था और बड़ी प्रतिष्ठा थी। यह एक तरह से इस घराने के तरुण कलाकारों के संरक्षक थे। परन्तु इसके साथ-साथ यह बड़े अनुभवशील और परिश्रमी शिक्षक भी थे और इन्होंने बहुतों को संगीत की शिक्षा दी। इनके प्रमुख शिष्यों में बांकाबाई, ताराबाई सिरोलेकर, चम्पाबाई कवलेकर इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा भाई शंकर, भाई प्राणनाथ, इनके बेटे

बशीर अहमद खाँ और इनके छोटे भाइयों ने भी इनसे बहुत कुछ सीखा। मुहम्मद खाँ बड़े विद्वान और अनुभवी गायक थे जिनका बहुत सम्मान होता था। इनका देहान्त आगरे में 1922 में हुआ।

## अब्दुल्ला खाँ

यह नत्थन खाँ के दूसरे बेटे थे और इनका जन्म 1893 में आगरे में हुआ था। इनको भी अपने पिता से पूरी शिक्षा मिली थी और यह अपने पिता के साथ बहुत समय तक मैसूर में रहे जहाँ यह नियुक्त भी हो गये थे। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् 1901 में इन्होंने देश भर का दौरा किया और हुबली, धारबार, कोल्हापुर, पूना, बीजापुर, शोलापुर इत्यादि जगहों में खूब घूमे और श्रोताओं को अपने संगीत का बहुत आनन्द पहुँचाया और बहुत सम्मानित भी हुए। दिल्ली, जलंधर और कश्मीर की सैर भी इन्होंने की और लोगों को अपने गाने से मनाया। बहुत सी महफिलों में इनका और इनके पिता के प्रतिभाशाली शिष्य भास्कर राव बखले का गाना साथ-साथ होता था और यह दोनों बहुत जम कर गाते थे और अपने श्रोताओं को बहुत खुश करते थे। यह स्वभाव ही से बहुत जम कर गाते थे और इनकी तैयारी की शोभा इनकी लयकारी बढ़ा देती थी। इनको बहुत ख्याति मिली और गायकों में भी इनको बहुत सम्मान मिला। इनका देहान्त आगरे में 1925 के आरंभ में हुआ।

इन दो लड़कों के अतिरिक्त नत्थन खाँ के तीन और बेटे थे जिनमें से इनके तीसरे पुत्र मुहम्मद सिद्दीक खाँ का देहान्त अचानक इंदौर में 1917 में हो गया था जहाँ वह होली के संगीत-समारोह में भाग लेने गये थे। यह बहुत होनहार गायक थे। नत्थन खाँ के सबसे छोटे बेटे का नाम नन्हें खाँ था जिनका जन्म मैसूर में 1899 में हुआ था। इनको अपने छोटे दादा जयपुर के उस्ताद कल्लन खाँ से संगीत की शिक्षा मिली थी। परन्तु इन्होंने अपने घराने के और सुयोग्य और अनुभवी गायकों से भी संगीत का ज्ञान प्राप्त किया था। यह अधिकतर बंबई में रहे और इन्होंने बहुत से लोगों को संगीत की अच्छी शिक्षा दी जिनमें सीताराम फाथर्फेकर, पल्लापुरकर, रत्नकांत रामनाथ और गुलाम अहमद खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं।

नत्थन खाँ के चौथे सुपुत्र का नाम विलायत हुसैन खाँ था जिनसे सारा संगीत ससार परिचित रहा है। इनका जन्म आगरे में 1895 में हुआ था और छैः वर्ष की अवस्था तक यह मैसूर में अपने पिता के साथ रहे। सन्

1801 में जब इनके पिता की मृत्यु हुई तो उसके बाद यह अपने छोटे दादा कल्लन खाँ के पास जयपुर चले गये, जहाँ इन्हें जयपुर के मुहम्मद बख्श से भी संगीत के क्षेत्र में बहुत लाभ पहुँचा। यहीं पर इन्होंने उर्दू, हिन्दी, फारसी की शिक्षा पाई और संगीत को भी ठीक ढंग से सीखा।

उस्ताद विलायत हुसैन खाँ कहा करते थे कि उनके बयालिस गुरु थे। जिनसे जो कुछ थोड़ा-बहुत उन्होंने सीखा था, उन सबके नाम वह सदैव लेते थे और कृतज्ञता से इस बात को स्वीकार करते थे। इसको हम उनके स्वभाव की विनम्रता ही मानेंगे। यह उनकी अपनी विनीत भावना थी कि वह संगीत ऐसे विषय के ऐसे ऋण को विनय की भावना से स्वीकार करते थे और सच्ची कृतज्ञता से उसे चुकाते थे। यदि उन्होंने किसी से एक राग अथवा एक बंदिश ही सीखी थी तब भी वह इस बात को खुलेआम स्वीकार करते थे और लोगों से खुलकर इस बात को कहते थे। यह उनकी सच्चाई का अनूठा उदाहरण था। बहुत से प्रसिद्ध गायक अथवा वादक प्रायः ऐसा नहीं करते। यदि अपने घराने के अलावा उन्होंने किसी और संगीतज्ञ से भी कुछ सीखा है तो वह इस बात को स्वीकार करने में संकोच करते हैं और जानबूझ कर छिपाते भी हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद हैं जो ऐसी कृतघ्नता को प्रकाशित करते हैं। कुछ गायक और वादक दूसरे गायकों और वादकों की नकल भी मनमानी करते हैं। फिर भी अपनी शैली को मौलिक बनाते हैं और किसी कल्पित घराने के साथ ही अपना नाम जोड़ लेते हैं। ऐसे कलाकारों में कृतज्ञता का अभाव होता है परन्तु शायद मन ही मन वह लज्जित भी होते हैं। कुछ संगीतज्ञ ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने जब अपने असली गुरु को छोड़कर किसी और गुरु का आश्रय लिया तो उन्हें अपने मन में ग्लानि हुई। मुरादाबाद के नजीर खाँ और गफूर खाँ ने जयपुर के उस्ताद कल्लन खाँ से ख्यालगायन की उत्तम शिक्षा पाई थी। परन्तु जब वह अपने गुरु से छिपा कर अलवर के मशहूर ध्रुपद गायक अलाबन्दे खाँ के शागिर्द हो गये तो बाद में उनको ग्लानि हुई कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। नजीर खाँ अपने सादरों के लिए मशहूर हुए हैं। यह मानना पड़ेगा कि उनकी क्षमा-याचना ने उनके इस दोष को धो दिया था। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। अधिकतर गायक और वादक अपने इस तरह के ऋण को भूल जाते हैं और उसको स्वीकार नहीं करते। सीखना तो दूर रहा, यदि कोई गायक किसी सुयोग्य और नामी गायक की नकल भी करता है और उससे लाभ उठाता है तो वह उसके शिष्य के बराबर हो जाता है।

अकादमी" ऐसी अखिल-भारतीय संस्थाओं से भी सम्बन्धित थे। हमारी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में इनका खुलासा वर्णन किया गया है।

आगरा घराने के शिष्यों की संख्या बहुत अधिक है और सबके नाम यहाँ नहीं गिनाये जा सकते। परन्तु सबसे पहले हम नत्थन खाँ के प्रसिद्ध शिष्य पंडित भास्कर राव बखले के बारे में दो-चार शब्द कहेंगे। यह नत्थन खाँ के परम शिष्य थे। इनके पहले गुरु, बड़ौदा के फैज मुहम्मद खाँ थे जो एक प्रसिद्ध घरानेदार गायक थे और जिन्होंने भास्कर राव को प्रारम्भिक शिक्षा दी थी। सुना जाता है कि इन्हीं फैज मुहम्मद खाँ के परामर्श और आग्रह से नत्थन खाँ ने इन्हें अपना शिष्य बनाया था। भास्कर राव बखले कुलीन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और छुटपन से उन्हें संगीत से स्वाभाविक प्रेम था।

इनको संगीत-संसार नत्थन खाँ का परम शिष्य मानता था और आधुनिक युग के आगरा घराने के सर्वश्रेष्ठ गायकों में इनकी गणना होती थी। यह कहना कदाचित ठीक होगा कि महाराष्ट्र में यह उन दो-चार गायकों में थे जिनकी तुलना बहुत अच्छे घरानेदार गायकों से की जा सकती थी और जिन्हें सही ढंग से "गवैया" कहकर पुकारा जा सकता था। भास्कर राव बखले सचमुच में बड़े प्रतिभाशील और सुयोग्य, माने हुए गायक थे जिनके पास गायकों की गायकी थी। नत्थन खाँ ने इन्हें ऐसी अच्छी शिक्षा दी थी कि यह परिश्रम करके चोटी के गायक बन गये थे और घरानेदार गायकों की तरह गाने लगे थे। यह बता देना भी आवश्यक है कि बाद में इन्हें भी संगीत-प्रचार का और संगीत-शिक्षा देने का शौक हुआ और इस सम्बन्ध में इन्होंने पूना में "भारत गायन-समाज" खोला जिसमें संगीत-शिक्षा का काम होने लगा। परन्तु यह स्वयं एक गायक के रूप ही में जनता के सामने आये और अपने जीवन के अन्त तक एक माने हुए गायक ही रहे। संगीत-शिक्षा के काम में जुट जाने पर भी इन्होंने अपनी घरानेदार गायकी का परित्याग नहीं किया और जीवन भर घरानेदार संगीत ही की व्याख्या करते रहे। शायद दूसरे गायकों ने ऐसा नहीं किया। इसी से पता चलता है कि भास्कर राव बखले किस ऊँचे दरजे के गायक थे और संगीत-प्रचारक ही न बनकर वह एक सुयोग्य गायक ही बने रहे और अपने शिष्यों को भी शास्त्रीय संगीत की उत्तम शिक्षा दी।

हम यहाँ उनको आगरा घराने का एक धुरन्धर गायक मानकर ही उनका मूल्यांकन कर रहे रहे हैं। एक गायक की हैसियत से भास्कर राव

बखले को बहुत सम्मान मिला और बड़ी ख्याति भी मिली। आम जनता ही उनके संगीत का आनन्द नहीं लेती थी परन्तु गुणीजन भी उनकी दिल से प्रशंसा करते थे और उन्हें कला की कसौटी पर कसते थे। घरानेदार गायकों से भी उन्हें हार्दिक अनुमोदन मिला। मैसूर, बड़ौदा और काश्मीर ऐसी रियासतों में उन्हें बहुत सम्मान मिला। जलंधर के वार्षिक संगीत-समारोह में भी इनको बहुत सम्मान मिलता था और उनकी टक्कर का दूसरा गायक वहाँ नहीं जाता था। उनके ख्याल-गायन में गवैयों की रागदारी का मजा आता था और वह हर राग का बहुत आनन्द लेकर उसकी कलात्मक व्याख्या करते थे। वह महफिलों के दंगली गवैये थे। वैसे तो बाद में वह बम्बई के अल्ला-दिया खाँ के भी शिष्य हो गये थे और उनसे कुछ चीजें भी याद की थीं। परन्तु यथार्थ में वह आगरा घराने की गायकी ही की सुन्दर व्याख्या करते थे और इसी के विशेषज्ञ थे। यही कारण था कि हर गायक उनके बाद आसानी से जम नहीं सकता था। सच तो यह है कि आधुनिक युग के प्रमुख ख्याल-गायकों ही में उनकी गणना होती थी।

उनके शिष्यों में स्व० मास्टर कृष्णाराव ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। उनके लोकप्रिय शिष्यों में बाल गन्धर्व और गोविन्द राव टेंबे का भी बहुत नाम हुआ। पंजाब के तरुण, होनहार गायक दिलीप चन्द्र बेदी भी उनके शिष्य हो गये थे परन्तु वह अधिकतर उनके साथ हारमोनियम ही बजाते थे और साथ कभी नहीं गाते थे। परन्तु यह उनके परम भक्त थे और जो कुछ भी इन्होंने अपने गुरु से सीखा हो वह गुरु के प्रसाद के रूप में था। परन्तु उनकी गायकी का अनुवाद करने में यह एक तरह से बहुत कुछ असफल ही रहे और अपनी एक नई तरह की गायकी का निर्माण करके उसी का पालन जीवन भर करते रहे। ऐसा करके इन्होंने अपनी निराली प्रतिभा का सुबूत दिया था और अपने को सरस्वती का ही भक्त साबित किया था। परन्तु फिर भी यह जीवन भर अपने गुरु के सच्चे भक्त रहे हैं और आगरा घराने के एक उत्साही और प्रतिभाशील गायक माने गये हैं। बाद में यह गाना छोड़कर संगीत-शिक्षा ही के काम में बड़े उत्साह से जुट गये। इसको भी यह अपने पूज्य गुरु का आशीर्वाद मानते थे और अपनी संगीत-शिक्षा को इसका श्रेय देते थे। आज कल इसी काम में यह संलग्न हैं और गायक के रूप में जनता के सामने नहीं आते।

पंडित भास्कर राव बखले को स्मरण करके अब इसी बात का दुख होता है कि अब उनका कोई ऐसा शिष्य नहीं है जो उनकी याद दिला सके।

उनका स्तुति-गान तो अभी-भी उनके बहुत से भक्त करते हैं परन्तु उनकी गायकी कोई नहीं सुना सकता। उस गायकी के नक्शे अब सुनने को नहीं मिलते। इसी तरह प्रसिद्ध गायकों की गायकी लुप्तप्राय हो जाती है और आने वाले गायक उससे वंचित हो जाते हैं।

## फैयाज खाँ

आगरा घराने का वर्णन अधूरा माना जायेगा यदि हम उसके सर्वश्रेष्ठ गायक स्व० फैयाज खाँ की चर्चा न करें। जहाँ तक उनकी गायन कला और उनके व्यक्तित्व का सम्बन्ध था हम इसका खुलासा वर्णन अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में कर चुके हैं। यहाँ पर हम उनके बहुपक्षी व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालेंगे। यह सफदर हुसैन खाँ के सुपुत्र थे और सिकन्दराबाद के मुहम्मद अली खाँ के पोते थे। यह रमजान खाँ रंगीले के घराने के थे। परन्तु इनके नाना आगरा घराने के गुलाम अब्बास खाँ थे और इसलिए यह आगरा घराने ही के माने जाते थे। जैसा पहले बताया जा चुका है, यह छुटपन से अपने नाना गुलाम अब्बास के साथ ही रहते थे और उन्हीं से इनको संगीत की पूरी शिक्षा मिली। यह ध्यान में रखने की बात है कि जिस बेजोड़ गायक ने नत्थन खाँ ऐसे नामी गायक को शिक्षा देकर तैयार किया था और जिसने अपने छोटे भाई जयपुर वाले कल्लन खाँ को इतना प्रसिद्ध गायक और शिक्षक बनाया था, उसी ने तरुण गायक फैयाज खाँ को अपने पास रखकर वर्षों शिक्षा दी और अपने साथ देश भर में घुमाया और व्यावहारिक संगीत का व्यक्तिगत अनुभव दिलाया। इस तरह की शिक्षा ने तरुण गायक फैयाज खाँ को हर तरह से भरपूर कर दिया और वह अपने जीवन के आरम्भ काल ही से महफिलों और संगीत-सभाओं में गाने लगे। वह शुरू ही से एक साहसपूर्ण, दिलेर और निडर गायक बन गये थे और थोड़े ही समय के पश्चात् वह एक होनहार प्रतिभाशाली संगीतज्ञ बन गये। हमने अपनी दूसरी पुस्तक में इस बात पर प्रकाश डाला है, जब एक विशेष संगीत-गोष्ठी में इन्होंने कुछ प्रौढ़ गायकों को अपने गाने से मनाया था। इससे पता चलता है कि तालीम अथवा शिक्षा को सार्थक और शक्तियुक्त बनाने के लिए महफिल में गाना-बजाना किसी भी गायक अथवा वादक के लिए कितना आवश्यक है। केवल रियाज अथवा अभ्यास ही काफी नहीं होता यदि वह महफिल की कसौटी पर न कसा जाये। गायन अथवा वादन को क्रियाशील और सफल बनाने का यही साधन है। संगीत के विद्यार्थियों के लिए यह परम

आवश्यक है कि वह निपुण गायकों और वादकों को सुनें और संगीत-सभाओं और महफिलों में गाने और बजाने का अभ्यास करें। प्रत्येक संगीत की संस्था में इस बात की सुविधा होनी चाहिए। शिक्षा और अभ्यास को प्रभावी अथवा कार्य-साधक और सफल बनाने का यही एक साधन है। एक गायक अथवा वादक को संगीत का सिद्धान्त जानना ही आवश्यक नहीं होता। उससे अधिक आवश्यक बात यह है कि वह किसी संगीत सभा में बैठकर अपने गायन अथवा वादन से अपने श्रोताओं को खुश करे और मनाये और उनके कानों को तृप्त करे। गुलाम अब्बास खाँ व्यावहारिक संगीत के तत्व अथवा सार को खूब समझते थे और उन्होंने अपने शिष्य तरुण फैयाज को भी ऐसी प्रेरणा दी। फिर क्या था ? थोड़े ही समय में वह सफल और दंगली गायक बन गये। उनका साहस बढ़ता गया और उनकी असली प्रतिभा का विकास भी शीघ्र हुआ।

उन्होंने अपनी तालीम और अपने रियाज को सार्थक और सफल बनाया। अपनी विलक्षण प्रतिभा से और अपनी अपूर्व बुद्धि और अपनी कल्पना से उन्होंने अपने गायन का पोषण किया और उसे सफल बनाया। फैयाज खाँ ऐसे धुरन्धर गायक की प्रतिभा में बचपन से एक तरह की अकाल प्रौढ़ता अथवा विलक्षणता थी। इसलिए शिक्षा और अभ्यास दोनों उन्हें बहुत फले-फूले। उनके सुरीले कण्ठ ने भी उनके गाने का बहुत साथ दिया और उसमें चार चाँद लगाये। जो लोग उनके आलाप और उनकी होरी-धमार को सुनकर आनन्द से भर जाते थे और चकित भी होते थे शायद इस बात को नहीं जानते थे कि उनकी प्रारम्भिक शिक्षा आलाप, ध्रुपद और धमार ऐसे शैलियों ही में हुई थी। आगरा घराने की संगीत-परंपरा का आधार हाजी सुजान खाँ की धमार शैली पर था। श्यामरंग और घग्घे खुदाबख्श और उनके बाद गुलाम अब्बास ने भी आलाप, ध्रुपद और धमार ही की परम्परा का पालन किया। इन्हीं शैलियों की मजबूत नींव पर और उनके मूल आधार पर आगरा घराने की ख्याल शैली की शानदार अट्टालिका खड़ी की गयी थी। यही कारण था कि ग्वालियर की ख्याल गायकी से प्रोत्साहित होकर और अपने घराने की ध्रुपद और धमार की परम्परा का पालन करके इस घराने की गायकी की जड़ें और मजबूत हो गयी थीं और उनमें नयी शक्ति का प्रवेश हुआ था। जिन ख्याल के घरानों में ऐसी शिक्षा का अभाव रहा है वह गायकी के बहुत से गुणों से वंचित रहते हैं और यह बात उनकी गायकी से साफ जाहिर हो जाती है।

अपने घराने की गायकी का सज्जा-सामान अथवा साधन पाकर ही फैयाज खाँ अपने यौवन के उभार में संगीत के मैदान में उतर आये और उनको गुणियों से और आम श्रोताओं से मान्यता मिलने लगी। उन्होंने शुरू से बड़ी-बड़ी रियासतों में जाना शुरू कर दिया। सबसे पहले वह दशहरे के अवसर पर मैसूर रियासत गये और वहाँ पर जब उन्होंने अपना गाना सुनाया तो उनकी बहुत प्रशंसा हुई और राज्य की तरफ से इन्हें बहुत से पुरस्कार मिले और अधिक सम्मान भी मिला। शायद इसी दरबार की एक महफिल में इनका गाना हाफिज खाँ नाम के एक प्रसिद्ध गायक के साथ हुआ जो एक प्रतिष्ठित घराने से संबंधित थे और बहुत तैयार गाते थे। यह दंगली गाना था और ऐसी संगीत-गोष्ठी में प्रतियोगिता की प्रबल भावना थी। फैयाज खाँ के गाने का रंग ऐसा जमा कि सारी महफिल से उन्हें बड़ी वाह-वाह मिली और उनका नाम दूर-दूर तक फैल गया। उनकी ख्याति के दूर-दूर फैल जाने से उन्हें अन्य रियासतों में भी जाना पड़ा। इसके बाद ही वह हैदराबाद भी गये और निजाम उनका गाना सुनकर इतने खुश हुए कि उन्हें इनाम में एक हीरे की अंगूठी दी।

जहाँ तक हमें मालूम है, 1915 में बड़ौदा-नरेश के बुलवाने पर वह होली के संगीत-समारोह में सम्मिलित होने के लिए बड़ौदा गये और महाराजा बड़ौदा उनके गाने से इतने अधिक प्रसन्न हुए कि वह दरबार के गायक नियुक्त हो गये और फिर जीवन भर 1950 तक वहीं रहे। बड़ौदा राज्य के गायक फैज मुहम्मद खाँ ने अपने देशाटन में फैयाज खाँ की खोज आगरे में की थी और महाराजा बड़ौदा से उनकी बहुत प्रशंसा की थी। इसी कारण वह बड़ौदे के होली के जलसे में निमंत्रित किये गये थे। महाराज बड़ौदा ज्ञान और कला के पारखी थे और उन्होंने अपने दरबार को श्रेष्ठ कलाकारों से सुशोभित किया था। फैयाज खाँ को भी इस दरबार से हर तरह का सम्मान मिला था। फैयाज खाँ के नाम से बड़ौदा भी सारे भारतवर्ष में मशहूर हो गया था। उन्हें लोग "बड़ौदे के फैयाज खाँ" के नाम से जानते थे।

इन्दौर के महाराजा तुकोजी राव होल्कर ने 1918 में फैयाज खाँ को होली के अवसर पर निमंत्रित किया। इस विशेष संगीत-समारोह में भारतवर्ष के सभी प्रमुख गायक जमा हुए थे और यह एक शाहाना जलसा था। महाराजा साहब ने फैयाज खाँ को ऐसी इज्जत दी कि दरबार में उन्हें बिल्कुल अपने पास बिठाया और उनका गाना सुना। उनका गाना सुनकर वह बहुत ही खुश हुए। इसका कारण यह था कि उनके गाने में जो खूबियाँ

थीं वह निराली थीं जो और गायकों में नहीं पाई जाती थीं। राग-व्याख्या, रागदारी, लयदारी, स्वरों का भावुक लगाव, चीज की बढ़त, राग का विस्तार, ताल और लय का आनन्द, शब्दों का भावनापूर्ण और कलात्मक उच्चारण, गायकी की प्रतिष्ठा और कलायुक्त गायन का भावात्मक प्रभाव—यह सब विशेषतायें निराली थीं और उनके गाने को सजाती थीं। ख्याल शैली के सब अनूठे आभूषणों से वह अपने गाने को आभूषित करते थे। दरबार के श्रोताओं पर उनके गाने का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सब उन्हें सुनकर मुग्ध हो गये। ऐसे कलायुक्त और निर्दोष गायन को सुनकर सारे दरबार ने वाह्-वाह की। इनाम देते समय महाराजा इन्दौर ने अपने हाथ से उन्हें हीरे का कण्ठा पहनाया और हीरे की एक अँगूठी भी दी। साथ में दस हजार रुपये भी उन्हें भेट किये। इसके बाद वह इन्दौर बराबर जाते रहे और वहाँ उन्हें सदैव मान-सम्मान मिला।

महाराजा मैसूर ने उन्हें फिर से दुबारा 1924 में बुलाया और उनका गाना सुनकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें रियासत का राजचिन्ह और बहुमूल्य रत्नों से जड़ा हुआ एक कंगन पहनाया गया और उन्हें "आफताबे मूसीकी" की उपाधि दी गई। महाराजा मैसूर ने उन्हें दशहरे और सालगिरह में हर साल आने का निमंत्रण दिया और अपने दरबार में नियुक्त करने की इच्छा भी प्रकट की। पहली बात तो उन्होंने मान ली परन्तु दूसरी के लिए क्षमा माँगी। वह बड़ौदा छोड़कर कहीं नहीं जा सकते थे।

भातखण्डे जी इन्हें अपने साथ एक महीने के लिए कश्मीर रियासत भी ले गये थे और इन्हें फरमाइश कर-क के खूब सुना। स्व० भातखण्डे जी के पाँचों संगीत-सम्मेलनों में वह सम्मिलित थे। लखनऊ के 1924 और 1925 के संगीत-सम्मेलनों में वह सम्मिलित हुए और उनको सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायक माना गया। कलकत्ते, बम्बई, देहली, बनारस और इलाहाबाद ऐसे शहरों के संगीत-सम्मेलनों में भी वह जाते रहे और हजारों श्रोताओं को आनन्द से भरते रहे।

आलाप, होरी धमार और ख्याल, टप्पा इत्यादि के विशेषज्ञ होते हुए वह ठुमरी, गजल और दादरा ऐसी लोकप्रिय शैलियों को भी बेजोड़ गाते थे और अपने श्रोताओं को बेचैन कर देते थे। यहाँ तक कि लखनऊ के प्रसिद्ध सोजखान उनकी सोज़ख्वानी सुनकर अचंभे में पड़ जाते थे। वह जिस शैली

को अपने कण्ठ से कहते थे वह निराली और अनूठी बन जाती थी। जैसा उनका व्यक्तित्व बहुपक्षी था वैसे ही उनकी गायन-कला भी बहुपक्षी थी।

उनके शिष्यों में बहुत से अच्छे गायक हुए हैं। उनके घराने के होनहार गायकों में सबसे अधिक शिक्षा अताहुसैन खाँ ने पाई थी और उनके साथ उनके छोटे भाई बंदे हुसैन भी थे। जावरे के बशीर अहमद खाँ उनके प्रतिभाशील शागिर्दों में थे और यदि उनकी अकाल मृत्यु न होती तो बहुत नाम कमाते। घराने के कुछ और तरुण कलाकारों पर भी उनकी गायकी का प्रभाव पड़ा और यह सब उनकी नकल करने का प्रयत्न करते रहे। अताहुसैन खाँ के शिष्य शराफत हुसैन को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि इन्हें स्व० खाँ साहेब का बहुत सत्संग मिला। परन्तु जिन होनहार गायकों में उनके गाने की थोड़ी-बहुत छबि मिलती थी उनमें प्रमुख आगरे के असद अली खाँ थे जिन्हें तसद्दुक हुसैन खाँ से तालीम मिली थी परन्तु वह फैयाज खाँ के गाने की अच्छी नकल करते थे वह पाकिस्तान जाकर वहाँ बस गये। सच पूछा जाये तो घराने के तरुण गायकों के आलावा दूसरे घरानों के गायक भी उन्हें अपना गुरु मानते थे जिनमें अतरौली के अजमत हुसैन का नाम बहुत हुआ था। बंगाल के तरुण और होनहार गायकों में भीष्मदेव चटर्जी और ज्ञान गोस्वामी भी उनके शिष्य हो गये थे। उनके गाने में ऐसा जादू का-सा प्रभाव था कि फिल्म-गायक स्व० के० एल० सहगल भी उनके शिष्य हो गये थे और उन्हें अपना पूज्य गुरु मानते थे। इसी तरह लखनऊ के कथक घराने के मशहूर कलाकार लच्छू महाराज भी उनके शिष्य बन गये थे और वह आज भी उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं। स्व० शंभू महाराज भी उनको "अब्बा" कह कर पुकारते थे और उनके परम भक्त थे। वह लोग भी जिन्हें उनसे सीखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था उनकी चीजों को गुनगुनाते थे और उनकी नकल करने का प्रयत्न करते थे। तबला-सम्राट उस्ताद अहमद जान थिरकुआ* जो अब एक वयोवृद्ध श्रद्धेय कलाकार माने जाते हैं और जिनकी अवस्था अस्सी वर्ष के करीब है, उनके सम्पर्क में बहुत रहे। वह अभी भी जब कभी उनको वह तीसरे-चौथे याद करते हैं तो अपने कण्ठ से उनकी किसी होरी को अथवा किसी स्थायी को गाने लगते हैं और उनकी चर्चा करने लगते हैं।

पढ़े-लिखे और शिक्षित गायकों में जो उनके शिष्य थे उनमें संगीत के विद्वान स्व० श्रीकृष्ण नारायण रतनजंकर का नाम सबसे पहले आता है

* हाल में ही इनकी मृत्यु हो गई है।

जिन्हें स्व० भातखण्डे जी के अनुरोध से फैयाज खाँ ने तीन-चार वर्ष तक शिक्षा दी थी। रतनजंकर जी को कौन नहीं जानता ? वह जीवन भर अपने पूज्य गुरु की श्रद्धा करते रहे और उनके आगे विनीत भाव से झुकते रहे। उनको हम एक कुशल और विद्वान गायक ही मानेंगे जिन्होंने संगीत-प्रचार का बहुत बड़ा काम किया था और जिन्होंने संगीत के लिए अपने पूरे जीवन को समर्पण कर दिया था। इनके बारे में भी हम अपनी दूसरी पुस्तक में खुलासा लिख चुके हैं।

स्व० खाँ साहब के दूसरे सभ्य और शिक्षित शिष्य दिलीपचन्द बेदी थे जो पहले पंडित भास्कर राव की सेवा में थे और उनकी मृत्यु के पश्चात उन्होंने फैयाज खाँ का आश्रय ढूंढा और उनके शिष्य हो गये। यह भी उनसे कुछ काल तक सीखते रहे। जैसा पहले कहा गया है कि यह इतने आजाद तबियत के व्यक्ति थे और इनमें ऐसी प्रखर बुद्धि और दिलेरी थी कि वह किसी भी गायकी के गुलाम नहीं बनना चाहते थे। इन्होंने अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनी एक अलग गायकी का निर्माण किया था जिसमें न तो भास्कर राव की गायकी के नक्शे थे और न फैयाज खाँ की गायकी के ही कोई लक्षण थे। इनकी गायकी अनेक फूलों का गुलदस्ता था जिसमें अधिक सुगन्ध पंजाब के संगीत की थी। जो कुछ भी हो, इन्होंने अपनी इस गायकी को अपने ढंग से सफल बनाया। यदि इनके कण्ठ में दोष न आ जाता और यह गाना छोड़कर संगीत-शिक्षा के काम में न जुट जाते तो यह आज हमारे प्रमुख ख्याल गायकों में होते और इनकी गणना भी प्रसिद्ध कलाकारों में होती। स्व० फैयाज खाँ के एक-आध और शिक्षित वर्ग के प्रतिभाशील शिष्य थे जिनके पास गायकी के प्रामाणिक नक्शे थे परन्तु वह व्यावहारिक संगीत के मैदान में पूरी तरह से नहीं उतरे और अपने ढंग से संगीत की सच्ची सेवा करते रहे और इस तरह अपने पूज्य गुरु की यादगार को ताजा करते रहे। ऐसे शिष्यों ने एक विशेष बड़ी कमी को पूरा किया था।

जैसा हम पहले कह चुके हैं हम फिर दुहरावेंगे कि जब 1950 में उस्ताद फैयाज खाँ का निधन हुआ था तो आगरा घराने की गायकी और उसकी प्रतिष्ठा का सूर्य-ग्रहण हुआ था। "आफताबे मूसीकी" का सूर्यास्त हो गया था परन्तु फिर भी आकाश में एक सान्ध्य-तारा दिखाई पड़ा जिसके अवलम्ब को घराने ने कृतज्ञता से स्वीकार किया। उनके बाद घराने के कर्णधार विलायत हुसैन खाँ ही बने। अपने-जीवन-काल में वह आगरा घराने के संरक्षक थे और घराने को उन पर पूरा भरोसा था। उनके बारे

में भी हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में खुलासा लिख चुके हैं। आगरा घराने के प्रति इस विद्वान और सहृदय गायक ने अपने कर्त्तव्य-कर्म का पूरा पालन बड़े साहस से किया था और उसकी प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने दी थी। कुछ समय तक तो ऐसा लगा कि घराने की प्रतिष्ठा का फिर से सूर्योदय हो गया है और अंधकार के बाद कुछ प्रकाश भी आ गया है। परन्तु जब घराने के दुर्भाग्य से विलायत हुसैन खाँ का भी देहान्त हो गया तो घराने का सहारा टूट गया। फैयाज खाँ के निधन पर जिस अनाथ घराने को विलायत हुसैन खाँ ने सनाथ बनाया था वह फिर से निराशा के अन्धकार में डूब गया।

तो अब इस घराने के जिम्मेदार, प्रौढ़ और अनुभवी संगीतज्ञों का धर्म है कि वह साथ मिलकर और पारस्परिक सहयोग से इस घराने की परम्परागत प्रतिभा को सुरक्षित रखें और इसकी गायकी को जीवित रखने का भरसक प्रयत्न करें। सेवा-भाव ही इन संगीतज्ञों का आदर्श होना चाहिए। स्वार्थ और अहं से काम नहीं चलेगा और न आलस और अभिमान से ही इस घराने की प्रतिष्ठा को कोई लाभ पहुँचेगा। गायकी का औपचारिक और बनावटी अभिनय करने वालों और जबरदस्ती घराने का एकाधिकारी बनने वालों को भी सचेत हो जाना चाहिए कि ऐसा करने से घराने की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचेगी और उसके सम्मान में भी कमी आ जायेगी। जब तक यह सब लोग विनम्रता से और सेवा-भाव से इस घराने के संगीत की स्वार्थहीन सेवा नहीं करेंगे तब तक इस घराने का भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा। इस घराने के छोटे और बड़े शिष्यों का यह कर्त्तव्य है कि वह संगीत को एक रोजगार ही न समझें परन्तु उसे एक महान् कला भी समझें। उसका अध्ययन करके और उसका अभ्यास करके ही इस घराने की गायकी की सच्ची व्याख्या कर सकते हैं। आत्म-त्याग और स्वार्थहीन सेवा के साथ उत्तम व्याख्या ही अब इस घराने के पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं। इस घराने से संबंधित गायक और विद्वान इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर संगीत की सेवा कर सकते हैं और दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं। हमारी शुभ मनोकामनायें उनके साथ हैं। वह शिष्य जो बहुत कम जानते हैं और वह जो बहुत ज्यादा जानने का दावा करते हैं, इन दोनों से इस घराने को खतरा है। उनसे भी जो शिष्य न होकर भी शिष्य होने का दावा करते हैं।

## आगरे का दूसरा घराना और उसके प्रमुख गायक

मुगल शासन के लंबे काल में देहली और आगरा को बहुत प्रतिष्ठा

मिली थी। संगीत के क्षेत्र में भी इन दोनों का बहुत नाम हुआ है और बड़े-बड़े संगीतज्ञ इनसे संबन्धित रहे हैं। घरानों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं। पहले तो वह जो संगीत के क्षेत्र में पुराने और प्रामाणिक घराने माने गये हैं जैसे ग्वालियर, आगरा और देहली इत्यादि। परन्तु दूसरे घराने वह हैं जिनकी व्युत्पत्ति दूसरे घरानों के सहारे हुई है। उदाहरण के लिए जिसे आजकल कुछ लोग पटियाला घराना कह कर पुकारते हैं और गुलाम अली खाँ को भी उससे संबन्धित करते हैं, वह पटियाला के गायक अलीबख्श और फतह अली के नाम से ही मशहूर हुआ है। परन्तु यह दो मशहूर गायक जो "अलिया फत्तू" के नाम से भी पुकारे जाते थे, देहली के प्रसिद्ध गायक तानरस खाँ के शिष्य थे और इसलिए वह देहली घराने ही के शिष्य माने जायेंगे। देहली के घराने की गायकी ही इनके गाने का मुख्य आधार थी और इन्होंने किसी और गायकी का आविष्कार नहीं किया। इनकी शिष्य-परंपरा को हम "पटियाला घराना" कह कर पुकार सकते हैं परन्तु इनकी गायकी को हम "पटियाला गायकी" के नाम से नहीं पुकार सकते। सच तो यह है कि अलीबख्श और फतह अली की प्रामाणिक गायकी का अब पता भी नहीं चलता। इसी तरह महाराष्ट्र के प्रसिद्ध गायक बालकृष्ण बुआ ग्वालियर गायकी के विशेषज्ञ थे और इसी गायकी का प्रचार उन्होंने महाराष्ट्र में किया और उसकी शिक्षा भी दी। उसके कुछ विशेष शिष्यों ने तो इस गायकी का अभ्यास भी किया परन्तु यह कहना कि इन शिष्यों के शिष्य भी ग्वालियर गायकी गाते थे, ठीक नहीं है। उन तक पहुँचते-पहुँचते तो इस गायकी का अन्त हो चुका था और उसके सारे नक्शे गायब हो चुके थे। हम एक और उदाहरण देकर इस बात को समझायेंगे। हम बता चुके हैं कि भास्कर राव बखले आगरा घराने के प्रसिद्ध गायक नत्थन खाँ के एक बहुत प्रसिद्ध शिष्य थे और वह आगरा घराने की गायकी की शानदार व्याख्या करते थे। परन्तु उनकी अपनी कोई अलग गायकी नहीं थी। उनके शिष्य उनकी गायकी का अनुकरण अपनी बुद्धि और अपनी योग्यता के अनुसार कर सकते थे। यदि वह ऐसा करने में असफल रहते थे तो हम इस बात के लिए उनके गुरु भास्कर राव बखले को दोषी नहीं ठहरा सकते। जब कभी किसी नई गायकी का जन्म ऐसी परिस्थिति में होता है, तो हम उसको प्रामाणिक नहीं मान सकते और न उसका संबन्ध हम किसी विशेष घरानेदार गायकी से जोड़ सकते हैं। यह माना जा सकता है कि कुछ नये घराने पुराने घरानों के आधार पर बनाये गये हैं, परन्तु उनकी मौलिकता को आसानी से मान्यता नहीं मिल सकती।

8

यह तो हुई एक बात। समकालीन गायक और वादक भी भिन्न-भिन्न शैलियों के अनुयायी होते हैं और इस बात को साबित करते हैं कि संगीत में विविधता का सिद्धान्त हमेशा माना गया है। प्रतिभा के भी कई प्रकार होते हैं। और उसके अनेक चमत्कारों से हमें संगीत के अथाह ज्ञान का पता चलता है। आगरे के असली घराने की बात हम कर चुके हैं। परन्तु उसके आस-पास भी ऐसे संगीतज्ञ हुए हैं जिनका विशेष महत्व रहा है और जिनका एक अलग घराना भी माना गया है। यह उसी समकालीन युग के संगीतज्ञों के साथ थे जिनका वर्णन हम अभी कर चुके हैं। इनको भी हम उस काल के प्रमुख कलाकार मानते हैं। व्यक्तिगत ढंग से इनमें से हर गायक अथवा वादक का अपना-अपना मूल्य था।

तो पहले हम इमदाद खाँ नाम के एक गायक की चर्चा छेड़ते हैं जो अपने जमाने के प्रसिद्ध गायक थे। इनका जन्म भी आगरे में सन् 1800 में हुआ था जिस समय घग्घे खुदाबख्श का भी जन्म हुआ था। यह दोनों समकालीन गायक थे। इमदाद खाँ के घराने में भी संगीत की उत्तम शिक्षा दी जाती थी और इनके पूर्वज भी घरानेदार गायक थे। अपने घराने के बड़े-बूढ़ों ही से शिक्षा पाकर यह एक अनुभवशील और प्रसिद्ध गायक बन गये थे। यह भी कहा जाता है कि काशी-नरेश जो उस समय आगरे में रहते थे, इनके शिष्य बन गये थे और इनसे गाना सीखते थे। उन्होंने इनका बहुत आदर-सत्कार किया। इमदाद खाँ जीवन भर आगरे ही में रहे और कहीं बाहर नहीं गये। इनका देहान्त आगरे में लगभग 1860 में हुआ।

हमीद खाँ भी आगरे के एक प्रसिद्ध गायक थे और इनका जन्म 1840 में हुआ था। सुनते हैं कि इन्हें अपने नाना नन्हें खाँ से संगीत की पूरी शिक्षा मिली थी और यह एक कुशल गायक बन गये थे जिनको ख्याति भी बहुत मिली थी। बुन्देलखण्ड की रियासतों में इनका आना-जाना होता और इन्हें मान भी काफी मिला। पन्ना रियासत से भी इनको हर साल वसंत के अवसर पर निमंत्रण आता था और वहाँ इनके गाने की बहुत प्रशंसा होती थी। लगभग 1909 में यह दसहरे के अवसर पर मैसूर गये थे और वहीं इनका देहान्त हो गया।

## नन्हें खाँ सलीम खाँ का घराना

इन दोनों का आपस में साले-बहनोई का संबन्ध था और इनका जन्म आगरे में लगभग 1800 में हुआ था। यह दोनों साथ-साथ गाते थे और लोग इन्हें आपस के भाई समझते थे। इन्होंने अपने घराने ही में ख्याल

की शिक्षा पाई थी और सुनते हैं कि यह दोनों बड़े प्रवीण गायक थे। भरतपुर, जोधपुर, जयपुर, अलवर, पन्ना ऐसी रियासतों में इन्होंने बड़ा नाम कमाया और रतनगढ़ के महाराजा ने इन्हें एक गाँव भी इनाम में दे दिया था। सुनते हैं कि इन दोनों गायकों ने अपनी सन्तान को भी अच्छी शिक्षा दी थी। इनका देहान्त 1895 के आसपास हुआ।

आगरे में एक प्यार खाँ नाम के गायक भी हुए हैं जो सलीम खाँ के बेटे थे और इन्हें अपने पिता से संगीत की शिक्षा मिली थी परन्तु ख्याल को छोड़ कर इन्हें ठुमरी में भी अधिक रुचि थी और वह उसे बड़ा अच्छा गाते थे। परन्तु इसके साथ-साथ यह जलतरंग भी बहुत अच्छा बजाते थे। महफिलों में इनके जलतरंग का समा बँध जाता था और लोग झूमने लगते थे। जयपुर के गुणीजन-खाने में भी यह नियुक्त हो गये थे और महाराजा माधौ सिंह भी इनके जलतरंग से बहुत प्रसन्न थे। जब कभी वहाँ कोई प्रतिष्ठित मेहमान आता था तो महाराजा माधौ सिंह उन्हें इनका जलतरंग हमेशा सुनवाते थे। इन्होंने अपने बेटों को भी जलतरंग की बड़ी अच्छी शिक्षा दी थी। इनका देहांत 1915 में जयपुर में ही हुआ था।

प्यार खाँ के बेटों में इनके मंझले बेटे लतीफ खाँ का जन्म 1875 में हुआ था। इनको भी ख्याल, ठुमरी और दादरा ऐसी शैलियों में बड़ी रुचि थी। सुरीला कण्ठ पाकर यह इस रंग के गाने को बहुत अच्छा गाते थे। इनका पालन-पोषण अपने पिता के पास जयपुर में ही हुआ था। वहाँ रह कर इन्होंने राजस्थान के बहुत से राजाओं और जागीरदारों को अपने गाने का भक्त बना लिया था और बहुत नाम भी कमाया था। सन् 1925 में यह घर छोड़ कर कहीं और चले गये और फिर इनका पता नहीं चला।

प्यार खाँ के तीसरे बेटे का नाम महमूद खाँ था। इनका ध्यान भी रंगीन गाने की तरफ अधिक था और यह भी राजस्थान में ही बहुत समय तक रहे। इन्होंने एक नये साज का भी अविष्कार किया था जिसका नाम इन्होंने "वीणा राग-स्वरूप" रखा था और जो यह स्वयं बड़े अच्छे ढंग से बजाते थे इनका निधन 1920 में हुआ था।

प्यार खाँ के छोटे बेटे का नाम रजा हुसैन था जो बड़ौदा राज्य में 1909 में नियुक्त हो गये थे और वहाँ बहुत समय तक रहे। इन्हें भी अपने घराने ही में संगीत की शिक्षा मिली थी और इन्होंने भी गाना सीखा था। परन्तु जलतरंग में इनको विशेष रुचि थी और वह उसे बहुत अच्छा बजाते

थे। वह सचमुच में उसके विशेषज्ञ थे और उनके श्रोता इनके जलतरंग का बहुत आनन्द लेते थे। इन पंक्तियों के लेखक इनसे भली-भाँति परिचित थे।

आगरा के प्रसिद्ध गायकों में अहमद खाँ का भी बहुत नाम हुआ है। यह अतरौली के मशहूर गायक महबूब खाँ 'दरस' के शिष्य थे और बड़े अच्छे शिक्षक थे। भारतवर्ष में इनकी ख्याति इसलिए भी फैली थी की यह आगरे की मशहूर गायिका जोहरा बाई के असली गुरु थे। संगीत के प्रेमी इस बात से परिचित हैं कि जोहरा बाई ने शास्त्रीय संगीत में बहुत नाम कमाया था और वह गवैयों की तरह गाती थीं। अहमद खाँ के सुपुत्र गुल मुहम्मद खाँ भी एक मंझे हुए गायक थे और बंटवारे के बहुत पहले ढाका में जाकर बस गये थे। परन्तु यह बराबर आते थे। अहमद खाँ के बड़े भाई मुहम्मद सिद्दीक खाँ भी बड़ी अच्छी शिक्षा देते थे और उन्होंने देहली की मशहूर गायिका नौशाबा बाई को तैयार किया था जो बहुत अच्छा गाती थीं।

आगरे के दो सारंगी वादक भी बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। पहले का नाम तो मुन्शी था जिसने कलकत्ते की फिल्म कम्पनी न्यूथियेटर्स में बड़ा नाम कमाया था। दूसरे सारंगी-वादक का नाम था बदल खाँ जिसने कलकत्ते के मशहूर ठुमरी-गायक गिरजा बाबू (गिरजा शंकर चक्रवर्ती) और तरुण गायक भीष्म-देव चटर्जी को गाने की सारी शिक्षा दी थी। बदल खाँ को गायकों को संगत करके बहुत सी चीजें याद हो गई थीं परन्तु वह स्वयं कोई गायक नहीं थे। कलकत्ते के कुछ बंगाली सज्जनों ने उनसे बहुत कुछ सीखा था।

●

5

# सदारंग देहली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और तानरस खाँ का घराना

मुगल युग से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक और बीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग के कुछ वर्षों तक देहली हिन्दुस्तानी संगीत का केन्द्र था। बड़े-बड़े गायक और वादक इस शहर से सम्बन्धित रहे हैं। अकबर का युग संगीत का वैभवशाली युग माना गया है। अबुल फजल की पुस्तक "आइने अकबरी" से हमें बहुत से संगीतज्ञों के नाम का पता चलता है। उस काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक संगीत की परम्परा की अविच्छिन्न धारा का प्रवाह होता रहा। परम्परा की निरंतरता पर कोई भी रोक-थाम नहीं लगाई गयी। संगीत का सतत प्रवाह बराबर चलता रहा। उस युग से लेकर अब तक देहली के उच्च कोटि के संगीतज्ञों ने संगीत के मान को बढ़ाया और उसकी महान सेवा की। "आइने अकबरी" से हमें उस वैभवशाली काल के बहुत से गायकों और वादकों के नामों का पता चलता है परन्तु जिनके बारे में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। प्रमुख गायकों में सुर ज्ञान खाँ, मियाँ चंद, मोहम्मद खाँ, बीर मंदल खाँ, दाऊद खाँ, सईद खाँ, मियाँ लाल, तानसेन के सुपुत्र तानतरंग खाँ, मुल्ला इशाक घाड़ी और उनके भाई रहमतुल्ला, नायक चरजू, सुल्तान हाफिज हुसैन मशेहंदी, रंगसेन, मीरअब्दुल्ला, मीरजादा खुरसानी के नाम थे। इसी तरह वादकों में ऐसे प्रवीण कलाकारों के नाम थे जैसे कासिम उर्फ कोहबर (रबाब का आविष्कार करने वाले) शाहाब खाँ (वीणावादक), प्रवीण खाँ (वीणा-वादक) दोस्त मुहम्मद

मशेंहदी (बाँसुरी-वादक) शाहमुहम्मद (शहनाई-वादक) मीर अब्दुल्ला (कानून-वादक) दरदी यूसुफ (तंबूरा-वादक), सुल्तान रशीद मशेंहदी (तंबूरावादक); मुहम्मद अमीर (तंबूरा-वादक), मुहम्मद हुसैन (तंबूरा-वादक), काशवेग कुवचाक-कुंबरी, शेख डावन घाड़ी और मीर सईद अली इत्यादि।

इनके अतिरिक्त अकबर के दरबारी गायकों में एक बिलास खाँ नाम के गायक भी थे जो बिलासखानी टोड़ी के आविष्कारक माने गये हैं। कुछ लोग इन्हें तानसेन का सुपुत्र भी बताते हैं। इस युग के देहली के प्रसिद्ध गायकों में एक लाल खाँ नाम के गायक भी थे जो आलाप, ध्रुपद और धमार के विशेषज्ञ थे। यह बिलास खाँ के दामाद थे और अकबर के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में इन्हें बहुत ख्याति मिली थी। इस युग के एक और प्रसिद्ध गायक का नाम उल्लेखनीय है। यह थे सुजान सिंह जो बाद में हाजी सुजान खाँ के नाम से भी मशहूर हुए थे। यह नौहार बानी के कुशल गायक थे और धमार शैली के भी अद्वितीय विशेषज्ञ थे। संगीत के इतिहास-लेखक इन्हें "हाजी सुजान खाँ" के नाम से जानते हैं और यह आगरा घराने के पूर्वज माने जाते हैं। इनके चारों बेटे अलखदास, मलूकदास, खलकदास और लोंग दास भी कुशल गायक थे।

शाहजहाँ के जमाने में भी कुछ नामी संगीतज्ञ हुए थे जिनमें से कुछ विलक्षण प्रतिभा के गायक और वादक माने जाते थे। इन संगीतज्ञों में से कुछ के नाम हम यहाँ दे रहे हैं। गायकों में कान खाँ, डागुर सलैम चंद और शेख मुहम्मद उस काल के प्रमुख कलावन्त माने जाते थे। इस जमाने में एक और कुशल संगीतज्ञ हुए हैं जिनका नाम बहुत हुआ। यह थे बहाउद्दीन नाम के प्रवीण कलाकार जो रबाब और बीन दोनों बजाते थे। परन्तु इसके साथ-साथ इन्हें ध्रुपद, होरी और तराना ऐसी शैलियों का भी बड़ा अच्छा ज्ञान था। इन्होंने स्वयं बहुत-सी चीजों की रचना की थी और बहुत से ध्रुपद और तराने भी बाँधे थे। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने भीमश्री और संकेत ऐसे नये रागों का भी आविष्कार किया था और यह एक बड़े विद्वान संगीतज्ञ थे।

मुगल साम्राज्य के पतन और उसके अंत के समय तक और उस समय की अनिश्चित राजनीतिक परिस्थितियों के होते हुए भी संगीत में चहल-पहल होती रही। देहली के आखिरी बादशाह बहादुर शाह के समय तक देहली में अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ हुए जिनमें मियाँ अचपल, बड़े छंगे खाँ, शादी खाँ, मुराद खाँ, तानरस खाँ, बहादुर खाँ और दिलावर खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके

बारे में आगे चलकर इस अध्याय में हम कुछ और बतायेंगे। बहादुर शाह के जमाने में और भी बहुत से कुशल संगीतज्ञ हुए थे, जिनमें मिर्जा काले, मिर्जा गौहर, मिर्जा शब्बू, फिरोजशाह, ख्वाजा जान और ख्वाजा मान प्रमुख कलाकार माने जाते थे।

देहली दरबार से संबन्धित संगीतज्ञों का वर्णन करते समय सबसे पहले हम तानसेन को याद करते हैं जिसकी गणना अकबर के "नवरत्न" में होती थी और जो ध्रुपद शैली का सर्वश्रेष्ठ गायक था और एक तरह से वह आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का जन्मदाता और आरम्भकर्ता भी माना जाता है। तानसेन ही ने ध्रुपद शैली को उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचाया था और उसकी प्रतिष्ठित परम्परा को स्थापित किया था। उसने इस शैली को बहुत गौरवशाली बनाया था और उसे अपनी संगीतकला का माध्यम बनाया था। वह उस युग के ध्रुपद-संगीत का एक तरह से आविष्कारक ही था और उसके बहुत बाद तक ध्रुपद ही हमारे संगीत का प्राण था और उसी में उसका दैवी प्रकाश था।

परन्तु दो-ढाई शताब्दियों के पश्चात् हमारे संगीत में एक ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ जिसे हम कभी भुला नहीं सकते और जिसका बहुत जबरदस्त प्रभाव आधुनिक संगीत पर पड़ा। यह ऐतिहासिक घटना देहली के बादशाह मुहम्मद शाह के राज्य-काल में हुई थी, जब ख्याल शैली का आविष्कार किया गया था जो ध्रुपद की मानो एक प्रतिक्रिया थी। जब हम देहली से संबन्धित संगीतज्ञों और कलाकारों का वर्णन करते हैं तो हम सदारंग ऐसे विलक्षण संगीतज्ञ को कभी नहीं भूल सकते। सदारंग ही ख्याल-शैली का जन्मदाता और आविष्कारक था और उसने ही ध्रुपद से एक दूसरी शैली का निर्माण किया था जो अपने उद्गम स्थान की उपेक्षा किसी दशा में नहीं करती थी। इसलिए सदारंग ऐसे विलक्षण और प्रतिभावान संगीतज्ञ पर भी दो-चार शब्द कहना आवश्यक हो जाता है।

सदारंग का असली नाम नियामत खाँ था और यह ध्रुपद-पद्धति के अनुयायी थे। यह "शाह सदारंग" के नाम से पुकारे गये हैं। यह वीणा और ध्रुपद में पारंगत थे और बड़ी अपूर्व और विलक्षण प्रतिभा वाले संगीतज्ञ थे। ईजाद अथवा आविष्कार करने की प्रवृत्ति इनमें शुरू से थी। परन्तु हमको यह भी समझ लेना चाहिए कि जब इन्होंने ख्याल ऐसी नई शैली का आविष्कार किया तो ध्रुपद का विरोध करके ऐसा नहीं किया। इनके मन में ध्रुपद के प्रति विद्रोह की भावना कभी नहीं थी और ध्रुपद की परम्परा के

सच्चे अनुयायी और भक्त होकर वह ध्रुपद शैली का विरोध कभी नहीं कर सकते थे। जिस ख्याल शैली को उन्होंने जन्म दिया था उसमें ध्रुपद का मांस और रुधिर अथवा शरीर ही नहीं था परन्तु उसकी आत्मा भी थी। व्यक्तिगत कुतूहल अथवा जिज्ञासा के वश में होकर और एक तरह की अनोखी प्रेरणा से प्रोत्साहित होकर यदि कोई प्रतिभाशाली संगीतज्ञ किसी प्राचीन शैली के आधार पर एक नई शैली का आविष्कार करता है जो निरर्थक और भद्दी नहीं लगती परन्तु जिसमें संगीत-कला का अनोखा आकर्षण होता है, तो हम उसकी उपेक्षा किसी कीमत पर नहीं कर सकते। यदि हम ख्याल को ध्रुपद की प्रतिक्रिया मानते हैं तो संगीत के विद्वान उसे संदिग्ध प्रतिक्रिया कह कर नहीं पुकार सकते। एक संगीतज्ञ की हैसियत से यह शैली एक तरह से सदारंग की भावात्मक प्रतिक्रिया ही कहलायेगी। यह शैली उनके निश्चय और आत्मबल को सूचित करती थी और उनकी अनोखी प्रतिभा को प्रकाशित करती थी। सदारंग ऐसा विलक्षण संगीतज्ञ ही ऐसी रोचक शैली का आविष्कार कर सकता था। यदि हम ख्याल शैली को प्रतिक्रिया के नाम से पुकारते हैं तो हम यह भी जानते हैं कि जहाँ तक सदारंग का सम्बन्ध था यह उनकी उदासीन प्रतिक्रिया नहीं कहलाई जा सकती और न उसको हम एक तरह की सामान्य प्रतिक्रिया ही मान सकते हैं। यदि यह कहना उचित समझा जाये तो हम यही कहेंगे कि संगीत की यह नई ईजाद उनकी प्रतिभा का अनोखा आविष्कार था और अनजाने ही उन्होंने एक ऐसी नई शैली का निर्माण किया था जिसको विद्वानों ने बाद में ध्रुपद की प्रतिक्रिया कह कर पुकारा।

ध्रुपद के आधार पर ही इस शैली का आविष्कार किया गया। इस तरह के आविष्कार पहले भी किये जा चुके थे। अमीर खुसरो ने पखावज को काटकर तबले की ईजाद की थी और वीणा के आधार पर सितार का निर्माण किया था। क्या टप्पा और ठुमरी और तराना और त्रिवट का आविष्कार भी इसी ढंग से नहीं किया गया था? अपूर्व बुद्धि वाले संगीतज्ञ ही ऐसा कर सकते थे। जिस ख्याल शैली का आविष्कार सदारंग ने किया था वह ध्रुपद शैली पर ही आधारित थी और उसमें ध्रुपद का विरोध कभी नहीं था। यदि यह कहा जाये कि ख्याल ध्रुपद का ही एक अनोखा अथवा विलक्षण रूप था तो यह भी कुछ हद तक सही होगा। सदारंग की विलक्षण प्रतिभा का अनुमान हम उनके घराने और उनकी संगीत शिक्षा से लग सकते हैं। कहा जाता है कि यह लाल खाँ के सुपुत्र थे और तानसेन के घराने के एक

बड़े नामी संगीतज्ञ थे। इनके जमाने में ध्रुपद, होरी और छन्द, प्रबन्ध ही का रिवाज था। ख्याल के आविष्कार के और भी कुछ कारण हो सकते थे। यह सम्भव है कि उस काल के बहुत से ध्रुपद-गायक ध्रुपद को ऐसे नीरस ढंग से गाते थे कि वह लकीर के फकीर जैसे बन गये थे और ध्रुपद एक रूढ़ि-ग्रस्त और बासी-तिवासी शैली के समान बन गया था जिसमें स्वतः प्रवृत्ति का अन्त हो गया था। वह शायद कला की दृष्टि से भी बेजान और रूखा बन गया था। कदाचित ध्रुपद रूढ़िवादी संगीतज्ञों के हाथों में पड़ गया था और वह प्राचीन रूढ़िवाद का प्रतीक-सा बन गया था। ऐसी परिस्थिति में जबरदस्त प्रतिक्रिया का होना अनिवार्य था। तो यह एक तरह की जबरदस्त प्रतिक्रिया थी जिस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता था। यह तो एक ऐसी बाढ़ थी जिसे कोई बाँध नहीं रोक सकता था। हम यह भी कह सकते हैं कि ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्या हम इस बात को नहीं जानते कि जब ख्याल भी नीरस बन गया था, तो ठुमरी ऐसी शैली का आविष्कार हुआ था ? इस तरह की प्रतिक्रिया का होना कला के क्षेत्र में स्वाभाविक माना गया है।

परन्तु इसके साथ-साथ हम एक और बात को भी नहीं भूल सकते। हमारे संगीत में ध्रुपद के होते हुए भी इस बात की गुंजाइश थी कि एक नई शैली का जन्म हो। यह हमारे संगीत की प्रचुरता अथवा बहुतायत और उसकी विविधता का प्रमाण था। हमारे संगीत में भिन्न-भिन्न शैलियों का जन्म हो सकता था और उसमें ऐसी विविधता की गुंजाइश थी। आधुनिक संगीत की तुलना हम तरह-तरह के फूलों से सुगन्धित बाग से कर सकते हैं जिसमें गुलाब और चम्पा की सुगन्ध के साथ मोतिया और बेले की महक भी मिलती है। यह संगीत सुन्दर पुष्पों का गुलदस्ता था जिसमें सौंदर्य और सुगन्ध के कई नमूने मिलते थे। तो यह असम्भव नहीं था कि ध्रुपद के रहते हुए भी ख्याल का जन्म हो। ध्रुपद और ख्याल के साथ को हम भारतीय संस्कृति का अनूठा संश्लेषण ही मानेंगे। ख्याल में ध्रुपद का विरोध पहले नहीं था और ख्याल की आत्मा ध्रुपद की आत्मा से घुल-मिल गयी थी। सदारंग ऐसे विश्लेषण के सिद्धान्त ही का समर्थक था। यही कारण था कि ख्याल अपने जन्म के पश्चात् भी ध्रुपद से बिल्कुल अलग नहीं हुआ और उसने उसके अनुशासन का भी परित्याग नहीं किया। ख्याल में ध्रुपद का विरोध बहुत बाद में शुरू हुआ जब उसकी शैली में बहुत से मनमाने परिवर्तन होने लगे और वह हर तरह से एक आजाद शैली बनने की चेष्टा

करने लगा। परन्तु जब सदारंग ने ख्याल का आविष्कार किया था तब ध्रुपद ही उसका आधार था।

तो सदारंग जिस विचार को लेकर आगे बढ़ा उसे जानना भी आवश्यक है। किसी भी ध्रुपद की अच्छी रचना के चार हिस्से होते हैं। जिन्हें हम स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग के नाम से पुकारते हैं। इन चार भागों में शब्दों के सहारे किसी राग के स्वरों की व्याख्या की जाती है। किसी भी कुशल ध्रुपद-गायक का यह धर्म होता है कि वह ऐसी किसी रचना को ठीक ढंग से गाये और ध्रुपद की विशेष तकनीक का भी उत्तम उपयोग करे। सदारंग ने जिस ख्याल शैली का आविष्कार किया था उसकी रचनाओं में केवल स्थाई और अन्तरा ही होते थे और वह लम्बी नहीं होती थी। तो इस तरह किसी सीखने वाले और सुनने वाले का जी भी नहीं ऊबता था। इन रचनाओं की कविता भी सुन्दर होती थी और उनके शब्दों में माधुर्य होता था। इस तरह यह अधिक रोचक भी होती थी और इसको कण्ठ से कहने में आनंद भी आता था। ख्याल रचना के ऐसे आविष्कार में और भी विशेषतायें थीं। इस रचना में ध्रुपद और धमार का भी आभास था और उनकी झलक दिखाई देती थी। इस शैली की गायकी भी अपने ढंग की निराली थी जिसका निर्माण सदारंग ने किया था। स्थाई और अन्तरा गाने के पश्चात् आकार, इकार और उकार के उच्चारण से किसी राग का असली रूप प्रकाशित किया जाता था। बोलों को कलात्मक ढंग से कहना और सम पर कला-चातुर्य दिखाते हुए खूबसूरती से आना, यह भी इस नई गायकी को विशेषता थी। राग के मार्मिक स्वरों पर ठहरना और "री" और "ओं" का सदुपयोग करके स्वरों का आनन्द लेना और उनके बहलावों से गाने को सुशोभित करना और सूक्ष्म कल्पनाओं का संकेत करना यह भी इस गायकी की मुख्य विशेषता थी। विलम्बित लय में ख्याल में ध्रुपद का गाम्भीर्य और ठहराव था और होरी-धमार का उत्साहपूर्ण संयम था। विलम्बित लय में ध्रुपद की शान्ति थी और उसकी गरिमा थी। जहाँ तक राग-व्याख्या का सम्बन्ध था इस शैली में कल्पना (ख्याल) का अधिक से अधिक सदुपयोग किया जाता था। परंतु वास्तव में यह कल्पना सौन्दर्यात्मक अथवा कलात्मक कल्पना ही होती थी। यह एक तरह से मौलिक कल्पना ही होती थी और इसमें ध्रुपद की सामान्य अनुकरणात्मक कल्पना का कोई आभास नहीं था। यदि किसी ध्रुपद-गायक के गाने में उसकी शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ होता है तो इस गायकी में सप्रयोजन अनुकरण की जगह अचेतन अनुकरण ने ले ली थी और कल्पना ने तर्कबुद्धि

का पद छीन लिया था। "ख्याल" का अर्थ ही कल्पना था परन्तु यह हवाई कल्पना नहीं थी और न यह किसी राग के स्वरों की मर्यादा का उल्लंघन करती थी। यदि ध्रुपद में कल्पना के पंख काट दिये जाते थे और वह अपनी सीमाओं के अन्दर ही उड़ सकती थी तो ख्याल में ऐसा नहीं होता था। ख्याल में कल्पना को पूरी आजादी मिलती थी परन्तु फिर भी वह किसी राग की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर पाती थी। सदारंग ने इस विचार को मन में रखकर ही ख्याल ऐसी शैली का आविष्कार किया था। बिलंबित लय में ख्याल ने ध्रुपद के गाम्भीर्य को और उसके संयम को अपनाया और उसकी प्रशान्तता अथवा उसकी प्रशान्ति को अपना लक्ष्य बनाया। इस तरह ख्याल ने ध्रुपद के गौरवान्वित और चिर प्रतिष्ठित संगीत को अपना आदर्श माना और संगीत में अभिजातवाद के सिद्धान्त को मान्यता दी। परन्तु सदारंग ने ख्याल में जीते-जागते, व्यावहारिक संगीत ही की कल्पना की थी और प्राचीन संगीत के किसी अमूर्त अथवा तत्वमीमांसीय सिद्धान्त का समर्थन नहीं किया था। ख्याल ने ध्रुपद की मर्यादा को सुरक्षित और जीवित रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और बिलंबित लय में उसके अनुशासन के गौरव पर आँच नहीं आने दी। उसने कल्पना को पूरी आजादी दी परन्तु राग-व्याख्या को रूखा और केवल तर्कनापरक नहीं होने दिया। ख्याल ने गायन-कला में सृजनात्मक कल्पना ही के सिद्धान्त को स्थापित किया और गायक की व्यक्तिगत प्रतिभा का भी पूरा समर्थन किया। इसलिए इस शैली में वस्तुनिष्ठता से अधिक व्यक्तिनिष्ठावाद को महत्व मिला।

जहाँ तक ताल और लय का सम्बन्ध था और गायकी के औपचारिक अनुशासन का सम्बन्ध था सदारंग ने ध्रुपद और होरी से पूरा-पूरा फायदा उठाया। परन्तु मध्य लय में और द्रुत लय में ख्याल ध्रुपद से बहुत अलग हो गया और उसने तानों और बोल-तानों के आभूषणों से अपने को सजाया और सँवारा। परन्तु द्रुत तानों के प्रवाह में ख्याल ने अपने संयम को खो दिया। जिस ध्रुपद में प्राचीन संगीत की पुनीत धारा का आविर्भाव हुआ था और जिसका वातावरण शान्त, स्निग्ध और मनोरम था, वहाँ कल्पना ने प्रवेश किया और ख्याल में उसका प्राधान्य स्थापित हो गया। ऐसा लगा मानो ध्रुपद की चेतना पर ख्याल का मृदु आघात-सा हुआ और उसके नयन-पक्षों में स्पन्दन हुआ। उसकी शून्य दृष्टि में एक अदृश्य कंपन हुआ। उसके मुख पर उद्वेग के चिह्न लक्षित हुए थे परन्तु संगीत ने केवल प्रसंग बदला था और यह परम्परावाद का प्रतिवाद अथवा खण्डन नहीं था। इस घटना से

शास्त्रीय परम्परा का लोप नहीं हो रहा था। ख्याल ने ध्रुपद का साथ नहीं छोड़ा और न वह उससे बिछुड़ गया। उसने केवल नये वस्त्र पहन लिये थे और नये आभूषणों से अपने को सजा लिया था। परन्तु उसकी आत्मा में वही सरस्वती वास करती थी जिसकी आराधना ध्रुपद करता था। यदि ध्रुपद ने समाधि ले ली थी तो ख्याल ने उसका मौन भंग किया था और उसके शरीर में सिहरन पैदा हुई थी। जिस ध्रुपद का नर-लोक से लेकर किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त था उसकी जगह अब लोकतंत्रीय ख्याल ने ले ली थी जो आम जनता का विश्वासपात्र बन गया था। यथार्थ में वह शास्त्रीय संगीत का विश्वस्त अनुचर था और आम जनता के प्रति वह उदासीन अथवा तटस्थ नहीं रह सकता था।

इसके अतिरिक्त ध्रुपद की तुलना में ख्याल को हम एक तरह से कल्पित और विलक्षण ही कह सकते हैं। परन्तु उस पर किसी दशा में भी हम अनुशासनहीनता का दोष नहीं लगा सकते। उसका भी अपना एक निश्चित अनुशासन था जो स्थायी और अन्तरा की कलायुक्त व्याख्या से संबंधित था और जो आगे चलकर घरानेदार गायकों के संगीत का आधार बना। परन्तु ध्रुपद और ख्याल में विशेष अन्तर यह था कि ख्याल में कल्पना को आजादी मिली थी और इसके साथ-साथ उसमें सौंदर्य-बोध-भाव के लिए भी काफी गुंजाइश थी अथवा भावात्मक अभिव्यक्ति को भी प्रोत्साहन मिला था और उस पर कोई अनावश्यक प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था। यदि यह कहना ठीक था कि एक सुयोग्य ध्रुपद-गायक एक तरह से विशुद्धिवादी कहलाता था और वह शुद्धता और शुद्धाचारवाद का समर्थन अथवा प्रतिवाद करता था, तो यह कहना भी गलत नहीं था कि एक ख्याल-गायक भावात्मक अभिव्यक्ति को अपना लक्ष्य मानता था और अपने गायन को कलात्मक और भावनापूर्ण बनाना था। ध्रुपद-गायन और ख्याल-गायन के बीच में ऐसी प्रतिपक्षता का होना स्वाभाविक था और इससे इन दोनों शैलियों का अलग-अलग चरित्र प्रकाशित होता था। परन्तु दोनों के बीच की रेखा मन्द ही थी।

एक बात में ध्रुपद और ख्याल एक समान थे। दोनों अपने-अपने अनुशासन के अधीन थे और दोनों में असाधारण बुद्धि की आवश्यकता होती थी। यह एक तरह की अनोखी प्रौढ़ बुद्धि होती थी जो ध्रुपद और ख्याल दोनों का पोषक बनती थी। यह माना कि ध्रुपद-गायकों और ख्याल-गायकों दोनों में एक तरह का बौद्धिक कुतूहल होता है। और दोनों को प्रज्ञा अथवा बुद्धि से प्रेरणा मिलती है। परन्तु कदाचित् यह कहना गलत न होगा कि एक

प्रतिभावान और बुद्धिमान ध्रुपद-गायक जो प्राचीन ध्रुपद के अनुशासन का पालन करता है, प्राय : बुद्धिवाद का समर्थन करता है और ध्रुपद-गायन के बौद्धिक मूल्य पर ही अधिक बल देता है। इसके विपरीत एक ख्याल-गायक जिसमें प्रखर बुद्धि और कल्पना दोनों का समावेश होता है, सौंदर्य-बोध-भाव से और भावना अथवा अनुभूति से अधिक काम लेता है और इस तरह वह सृजन भावना से ही अधिक प्रोत्साहित होता है।

तो हम यह भी कह सकते हैं कि सदारंग ने ख्याल का अविष्कार करके एक गायक को यह सुविधा दी और उसे प्रेरित किया कि वह भावों और कल्पनाओं के संसार में प्रवेश करे और कल्पनामय और भावनापूर्ण संगीत का आनन्द उठाये। इनके साथ-साथ एक गायक को यह भी सुविधा थी कि वह भावात्मक अभिव्यक्ति को अपना साधन बनाये और उच्चकोटि की राग-व्याख्या करे। काव्य ने भी संगीत का साथ दिया और भावुक कविता ख्याल-गायन की चिरसंगिनी बनी। सदारंग ने स्वयं बहुत से ख्यालों की रचना ब्रजभाषा में की थी जिन्हें अभी भी हम गायकों के कण्ठ से सुनते हैं। वह उच्चकोटि का कवि था और उसने कोमल पदावली वाले अच्छे-अच्छे ख्यालों की रचना की जिन्हें गायक आज तक गाते हैं। इसी तरह अदारंग की भी बहुत-सी रचनाएँ मशहूर हैं और वह भी ऊँचे संगीतज्ञ थे। उनका राग देसी का ख्याल अभी भी गायक बड़े चाव से गाते हैं। इस रचना के शब्द इस तरह से हैं :—

"साँची कहत हैं अदारंग यह नदी नाव संजोग।
कौन किसी के आवे-जावे, दाना-पानी किस्मत लावे,
यही कहत सब लोग॥"

सदारंग के शिष्यों में मनरंग का भी बहुत नाम हुआ है। इनकी राग बरखा की रचना बहुत मशहूर है :—

"ऐरी मैं को नाहीं परत चैन, तरपतहूँ में परी।
"मनरंग" पिया अजहूँ नहिं आये, अँसुवन लागी झरी॥"

सच तो यह है कि तानसेन के बाद सदारंग ही एक ऐसा विद्वान और प्रतिभासंपन्न संगीतज्ञ था जिसने ख्याल का अविष्कार करके हिन्दुस्तानी संगीत में एक हलचल-सी मचा दी थी और उसे एक दूसरी दिशा की ओर प्रेरित किया था। उसी की प्रेरणा से ख्याल के घरानों का भी जन्म हुआ और प्रतिष्ठित ख्याल गायकों ने संगीत को पुनर्जागरण की ओर फिर से प्रेरित किया।

अब हम पहले संक्षेप में उन्नीसवीं शताब्दी के देहली के कुछ प्रसिद्ध गायकों की चर्चा करेंगे जिन्होंने ख्याल-गायन के क्षेत्र में ख्याति पाई थी। इसके बाद देहली के तानरस खाँ के घराने की बात करेंगे। उन्नीसवीं शताब्दी के यह संगीतज्ञ अपनी जगह निराले थे और देहली के शाही दरबार से भी सम्बन्धित थे। इन संगीतज्ञों में सबसे पहले हमें देहली के बड़े छंगे खाँ की याद आती है जो अपने जमाने के बेजोड़ गायक माने जाते थे और लोग उनका बहुत आदर करते थे। इनकी गायन-कला को देखते हुए यह उस जमाने के नामी गवैये थे और 1850 के आस-पास यह देहली में थे और इनकी बड़ी ख्याति थी। यह शाही गवैये थे और कभी-कभी बाहर की रियासतों में भी जाते थे। यह अपने जमाने के बेजोड़ गायक माने जाते थे।

इनके आलावा शादी खाँ और मुराद खाँ भी इस काल के मशहूर गायक थे। यह बाप-बेटे साथ-साथ गाया करते थे और अलाप, होरी, ध्रुपद, ख्याल इन सब शैलियों पर इन्हें पूर्ण अधिकार था। यह दोनों गायक शाही दरबार के प्रतिष्ठित गायक माने जाते थे और इनका नाम दूर तक था। सारे भारतवर्ष की बड़ी-बड़ी रियासतों में इनका जाना बराबर होता था। राजा-महाराजा और रसिक और रईस इनके गाने का बहुत आनन्द लेते थे और पुरस्कार देने के अलावा इन्हें सम्मानित भी करते थे। इनमें आत्म-सम्मान की भावना भी थी और इज्जत के मामले में धन को कुछ नहीं समझते थे। इस बात का प्रमाण हमें एक विशेष घटना से मिलता है। सुनते हैं कि एक बार दतिया के महाराज भवानी सिंह ने इन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया और इन्हें बार-बार सुना और बहुत प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपने मन में सोचा कि इन बेजोड़ गायकों को एक नये ढंग से इनाम दिया जाये। सवा लाख रुपये के ढेर के ऊपर एक चबूतरा बनवाया गया और उसके ऊपर एक दुशाला डाल कर इन दोनों गायकों को उस पर बिठाया गया। और इसके अलावा हौदों के साथ कुछ हाथी और साज-सामान के साथ सात घोड़े, कीमती पोशाक और आभूषण भी इन्हें इनाम में मिले। दतिया ऐसी रियासत से जहाँ भारत-विख्यात पखावज-सम्राट कुदऊ सिंह ऐसे विलक्षण पखावज-वादक नौकर थे, ऐसे इनाम का मिलना अचम्भे की बात नहीं थी। परन्तु अचानक दतिया महाराज के मुँह से निकल पड़ा कि दिल्ली के बादशाह से भी उनके ऐसा इनाम नहीं मिल सकता था। इन दोनों गायकों को यह बात बुरी लगी, मगर वह इनाम पाकर चुपचाप महल के बाहर निकल आये। बाहर पहुँचते ही इन गायकों ने अपने सब इनाम गरीबों को बाँट दिये और

दान कर दिये। जब महाराज दतिया को पता चला कि इन गायकों ने अपने सब इनाम लुटा दिये तो उन्होंने इन गायकों को बुलाकर उसका कारण पूछा। पता चला कि इन गायकों को महाराज की वह बात बुरी लगी थी और उन दोनों ने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से महाराज दतिया से कहा "हम देहली के बादशाह के नौकर हैं और ऐसा इनाम तो बादशाह के किसी अनुचर से भी हम पा सकते थे।" महाराज दतिया ने उनकी वफादारी अथवा राजभक्ति को मन में बहुत सराहा और फिर से इन्हें एक हाथी, पांच घोड़े और बहुत से इनाम दिये। पहले जमाने में जैसे गायक अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करते थे उसी तरह राजा और रईस भी सहृदय और कला के सच्चे प्रशंसक होते थे। दतिया एक छोटी-सी रियासत थी परन्तु संगीत-कला के प्रेम के लिए वह सारे हिन्दुस्तान में मशहूर थी। पुराने बुजुर्ग अभी भी शादी खाँ और मुराद खाँ की चर्चा करते हैं।

मुराद खाँ और शादी खाँ की बात छेड़ कर हम बहादुर खाँ और दिलावर खाँ को भी नहीं भूल सकते। बहादुर खाँ, हैदर खाँ नाम के गायक के लड़के थे परन्तु इन्हें मुराद खाँ ने गोद ले लिया था और बेटे की तरह इनका पालन-पोषण करके इन्हें गाने की उत्तम शिक्षा भी दी थी। सुनते हैं कि इनका कण्ठ बहुत सुरीला था और यह बहुत पेचीदा और बलदार गायकी गाते थे। इनका भी बहुत नाम हुआ। यह पहले जम्मू रियासत में थे और उसके बाद दुजाना, जूनागढ़ और मुर्शिदाबाद ऐसी रियासतों में भी दरबारी गवैये रहे। अपने जीवन के अंतिम काल में यह कलकत्ते में जाकर रहे थे। यह अपनी पेचीदा फिरत के लिए मशहूर हुए हैं और इनका देहांत देहली में 1904 में हुआ था।

इनके बेटे का नाम दिलावर खाँ था जो सुनते हैं बहुत सुरीला और तैयार गाते थे। पंजाब में भी यह बहुत दिनों तक रहे और वहाँ उनको बड़ी ख्याति मिली। यह बंगाल की तरफ भी गये और इन्होंने कलकत्ते के बहुत से रईसों को अपने गाने का भक्त बनाया। अपने पिता की तरह इन्होंने भी बहुत मान-सम्मान पाया। इनका निधन देहली में 1909 में हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी में देहली में एक और प्रतिभाशाली और विद्वान संगीतज्ञ थे जिनका बाहर भी बहुत नाम हुआ। इनका जन्म देहली में 1800 के लगभग हुआ था और इनकी माँ हिम्मत खाँ कव्वाल बच्चे की सुपुत्री थीं। इनका नाम मीर नासिर अहमद था। अपनी ननिहाल से इनको गाने का प्रेम और उसका ज्ञान मिला। ननिहाल से इनके गले में सुरीलापन भी आया

और कंठ संगीत इनका मौरूसी हक अथवा वंशगत अधिकार बन गया। इनकी शिक्षा का आयोजन भी बड़े अच्छे ढंग से किया गया था। आम प्रथा के विपरीत इन्हें पाँच-छै वर्ष की अवस्था में एक मदरसे में भेज दिया गया था, जहाँ इन्हें उर्दू और फारसी की उत्तम शिक्षा मिली। इस शिक्षा के पश्चात् इनकी कलासंबन्धित प्रतिभा का भी विकास हुआ और यह किसी अनुभवशील और विद्वान बीनकार से वीणा की शिक्षा लेने लगे। कठिन परिश्रम के बाद यह एक चोटी के बीनकार बन गये। देहली के बादशाह ने इनकी बीन सुन कर इन्हें अपने दरबार में नियुक्त कर दिया। सुनते हैं कि बाद में इन्हें लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह ने बुलाकर अपने दरबार में नियुक्त कर लिया था और इनका शेष जीवन वहीं कटा।

देहली में एक और नामी संगीतज्ञ पन्नालाल गोसाईं थे जो अपने जमाने के बहुत प्रवीण सितार-वादक माने गये हैं। यह एक सभ्य और शिक्षित सितार-वादक थे जिनको संगीत का गहरा ज्ञान था और जिन्होंने संगीत-शिक्षा और संगीत-प्रचार के लिए बहुत कुछ किया। उन्नीसवीं शताब्दी के नामी संगीतज्ञों में इनकी गणना होती थी और यह यथार्थ में संगीत की एक संस्था के समान बन गये थे और इन्हें बहुत मान-सम्मान भी मिला। सुनते हैं कि इनके सितार वादन की शैली बहुत सुहावनी और लोकप्रिय थी और इसी कारण इनके शिष्यों की संख्या भी बहुत अधिक थी। परन्तु इन्हें संगीत-शिक्षा में हार्दिक रुचि थी और यह गायकों और वादकों के सत्संग को बहुत ऊँचा स्थान देते थे। इनके घर पर गाने-बजाने की चहल-पहल रोज होती थी और गायकों, वादकों और रसिक श्रोताओं की भीड़ जमा रहती थी। संगीत की शिक्षा पाने वाले लोगों को इससे बहुत लाभ पहुँचता था और इनके कानों में मीठे स्वर बराबर पड़ा करते थे। संगीत के रस में भीगा हुआ ऐसा भावनापूर्ण वातावरण लोगों को अच्छे संगीत की ओर प्रोत्साहित करता था और उन्हें संगीत-कला की प्रेरणा भी मिलती थी। संगीत का यह स्कूल अथवा संगीत-कला का यह केन्द्र अपने ढंग का निराला केन्द्र था। यहाँ पर संगीत विद्यार्थियों की पाठ्य-पुस्तक नहीं बन गया था परन्तु उसने कला का रूप धारण किया था। संगीत केवल अध्ययन करने वाला एक विषय ही नहीं था परन्तु व्यवहार में लाने वाली और अभ्यास करने वाली कला थी और जिसको संगीत के प्रेमी बड़े चाव से सीखते और सुनते थे। इस संगीत के स्कूल में संगीत का सच्चा वातावरण था और सीखने वालों को सीखने के अलावा सुनने का भी अवकाश मिलता था। निपुण कलाकारों को सुनकर

उनका हियाव बढ़ता था और उनकी अपनी प्रतिभा और बुद्धि का भी विकास होता था। संगीत के ऐसे सुहावने वातावरण में व्यक्तिगत अभिरुचि का स्तर भी ऊँचा हो जाता था और जितने लोग वहाँ आते थे मधुर स्वरों के रंग में रँग जाते थे।

सितार-वादन की शिक्षा की भी यहाँ बड़ी अच्छी सुविधा थी और गोसाईं जी स्वयं यह शिक्षा देते थे। परन्तु वह अच्छे-अच्छे गायकों को निमंत्रित भी करते थे और उनका आदर-सत्कार भी करते थे। उन कलाकारों को सुनकर सीखने वालों को बहुत लाभ पहुँचता था और इस तरह उनका संपर्क भी सुयोग्य कलाकारों से हो जाता था। इस तरह उनकी शिक्षा भी सार्थक बन जाती थी और उन्हें व्यावहारिक संगीत का बहुत अच्छा ज्ञान हो जाता था। संगीत सीखने के साथ-साथ गाना-बजाना सुनना भी बहुत आवश्यक होता है। उससे ज्ञान और रुचि का विकास होता है और मनुष्य के छिपे हुए भाव जाग उठते हैं। संगीत-शिक्षा के लिए स्वरों का ऐसा सुरीला वातावरण सदैव अनिवार्य होता है। पन्नालाल गोसाईं इस बात को जानते थे और समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने इस तरह के वातावरण का आयोजन किया था। वह केवल एक कुशल और प्रतिभाशाली सितार वादक ही नहीं थे परन्तु संगीत के विद्वान भी थे। उन्होंने संगीत की एक पुस्तक भी लिखी थी जिसका नाम "संगीत विनोद" था। इनका देहान्त देहली में 1885 के आस-पास हुआ था।

संगीत की ऐसी चहल-पहल के जमाने में देहली ऐसे शहर में और भी बहुत से अच्छे और नामी संगीतज्ञ हुए थे। इनमें से कुछ ऐसे भी थे जो अपनी वेश-भूषा से ही देहली के खास बाशिन्दे अथवा निवासी लगते थे और जो अपने रहन-सहन में पुरानी प्रथा का पालन करते थे। ऐसे एक गायक नूर खाँ थे जो देहली के ही निवासी थे और इनका जन्म भी देहली में हुआ था। इनको लोग दूर ही से पहचान लेते थे क्योंकि यह चोगोशिया टोपी पहनते थे और उन्हें बहुत से लोग "चोगोशिया नूर खाँ" कह कर भी पुकारते थे। यह इनकी लोकप्रियता का सूचक था। सुनते हैं कि संगीत की शिक्षा उन्हें अपने घराने के बुजुर्गों से पहुँची थी और अभ्यास करके वह चोटी के गायक बन गये थे। सुना जाता है कि जब यह किसी राग के स्वरों को सुरीले ढंग से आलापते थे तो लोग रीझ जाते थे और तड़प उठते थे। उन्होंने स्वरों की ऐसी सच्ची साधना की थी कि उनके गाने का तात्कालिक प्रभाव लोगों की चेतना पर पड़ता था। यह बहुत काल तक गुजरात में भी रहे और उनके

जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा वहीं कटा। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वह महाराजा रतलाम के यहाँ नियुक्त हो गये थे और वहीं 1890 में इनका देहान्त हुआ।

दो और प्रसिद्ध गायक देहली में थे जो बाप-बेटे थे और जिनके नाम यूसुफ खाँ और वजीर खाँ थे। यह हापुड़ के निजाम खाँ के लड़के थे परन्तु इनकी शिक्षा देहली में हुई थी। यह आलाप, ध्रुपद, होरी और धमार के विशेषज्ञ थे और चोटी के गायक थे। इन दोनों भाइयों की जोड़ी दूर-दूर तक मशहूर हो गई थी और बुजुर्ग गायक जिन्होंने इन दोनों भाइयों को सुना था इन दोनों की बहुत प्रशंसा करते थे। जब ऐसा कोई मँजा हुआ विद्वान वयोवृद्ध गायक इन दोनों गायकों की इतनी प्रशंसा करता था तो यह इस बात का प्रमाण था कि यह दो भाई कैसे विलक्षण गायक थे। गुणियों के मुख से ऐसी प्रशंसा सुनकर पता चलता है कि पिछले युगों में कैसे-कैसे विलक्षण गायक हुए हैं। शादी खाँ और मुराद खाँ की तरह यह दोनों भाई भी बड़े मशहूर गायक थे और दूर-दूर तक इनका नाम था। इन दोनों भाइयों ने सारे देश की सैर की और नागपुर और बंबई ऐसे शहरों में अपने गाने की धूम मचा दी। इन भाइयों को घूमने-फिरने का बहुत शौक था और इसलिए जब यह देशाटन के लिए निकले तो इनके बहुत से शिष्य भी बन गये और लोग इनके संगीत के भक्त बन गये। इन दोनों भाइयों ने महाराष्ट्र के बहुत से ब्राह्मणों को भी संगीत की शिक्षा दी थी। मशहूर गायक पांडु बुआ इन्हीं के शिष्य थे और उन्हें इनकी बहुत-सी बंदिशें याद थीं। स्व० भातखण्डे जी भी पांडुबुआ की बहुत प्रशंसा करते थे और देश के कुछ और गायकों ने भी इन्हें सुना था।

यूसुफ खाँ और वजीर खाँ के एक और भाई थे जिनका नाम सदरुद्दीन खाँ था। यह भी एक मशहूर गायक थे। थे तो यह देहली के निवासी परन्तु यह जयपुर में महाराजा रामसिंह के दरबार में नियुक्त हो गये थे। यह भी ध्रुपद और धमार में पारंगत थे और बड़े रियाजी गवैये थे जो प्रतिदिन कई घण्टे अभ्यास करते थे। उनका देहान्त जयपुर में 1880 में हुआ।

हापुड़ ऐसी छोटी जगह में दो-एक और मशहूर गायक हुए हैं जिनमें अलीबख्श नाम के एक ख्याल-गायक थे। इनकी गणना देश के नामी गायकों में होती थी। यह देहली के मशहूर ख्याल गायक तानरस खाँ के परम मित्र थे और उनके साथ बहुत रहते थे। यह दोनों एक-दूसरे के साथ गाया भी करते थे और इनमें आपस में बड़ा प्रेम था।

उनके बेटे मुहम्मद सिद्दीक खाँ भी बड़े मशहूर गायक हुए हैं और इन्हें अपने पिता से ख्याल की पूरी शिक्षा मिली थी। इनका जन्म देहली में 1850 में हुआ था। यह बड़े शान्त और गंभीर स्वभाव के गायक थे और बड़ी गंभीरता से स्वरों का आनन्द लेकर किसी राग की व्याख्या करते थे। इनके गाने में गाम्भीर्य के अलावा बड़ा चैन था और यह बड़ी शान्ति से किसी राग को गाते थे। श्रोता इनका गाना सुनकर मुग्ध हो जाते थे। अलवर, जयपुर और टोंक ऐसी रियासतों में उन्हें बहुत मान-सम्मान मिला। जब यह हैदराबाद 1880 में पहुँचे तो यह तानरस खाँ के साथ वहाँ दरबारी गायक नियुक्त हो गये थे। यह संगीत के बड़े अच्छे और मँझे हुए शिक्षक थे और इन्होंने कई नामी गायकों को शिक्षा दी थी जिनमें कुछ के नाम नीचे दिये गये हैं :—

1—मशहूर सारंगी-वादक अहमद खाँ जिन्हें इनसे बहुत सी अच्छी रागें पहुँची थीं।

2—इनायत खाँ पंजाबी जो बड़े अच्छे गायक थे और जो पूना में ही अधिक रहते थे।

3—बाबा राघव दास जो हैदराबाद के एक बड़े मन्दिर के महंत थे और जिन्हें संगीत का बहुत अच्छा ज्ञान पहुँचा था। यह संगीत के पारखी और ऊँचे विद्वान थे। इसके साथ-साथ यह कलाकारों का बहुत आदर-सत्कार करते थे और उन्हें निमंत्रित करते थे और उनका मान-सम्मान करते थे।

4—इनके अलावा मुहम्मद सिद्दीक ने अपने घराने से संबंधित कुछ गायकों को भी शिक्षा दी जिनमें शब्बू खाँ (तानरस खाँ के भतीजे) और अब्दुल करीम खाँ प्रमुख थे। अपने दोनों बेटों निसार अहमद खाँ और नसीर अहमद खाँ को भी इन्होंने ख्याल की पूरी शिक्षा दी थी।

नजीर खाँ उर्फ बाबा नसीर खाँ मुहम्मद सिद्दीक खाँ के छोटे बेटे थे और इनमें विलक्षण प्रतिभा थी। इन्हें अपने पिता से ख्याल की उत्तम शिक्षा मिली थी। यह देहली के अलावा हैदराबाद में भी बहुत काल तक रहे। लखनऊ में यह पंद्रह साल तक रहे और इन्हें बड़ी ख्याति मिली। ख्याल के घराने के होकर भी यह ठुमरी के, लखनऊ की ठुमरी के, अद्वितीय गायक माने जाते थे। यह पूरब अंग की ठुमरी बहुत अच्छा गाते थे और उसकी बेजोड़ व्याख्या करते थे। ठुमरी और दादरा दोनों यह बहुत अच्छा गाते थे। लखनऊ में इसी रंग का इन्होंने प्रचार किया था। साथ-साथ यह कव्वाली

भी बड़ी तन्मयता से गाते थे और बाराबंकी के देवे शरीफ के मजार पर बहुधा अपना कव्वाली गायन सुनाते थे। लखनऊ में इनके बहुत-से भक्त हो गये थे। यह लखनऊ की महफिलों के प्राण थे और जिस महफिल में पहुँच जाते थे वहाँ अपना रंग जमाते थे। लखनऊ के कथक नाच के घराने के मशहूर स्व० शम्भू महाराज इन्हीं के शिष्य थे और इनको बहुत मानते थे। "जोश" मलीहाबादी के छोटे भाई रईस अहमद खाँ भी इनके शिष्य थे। नसीर खाँ जनता के लोकप्रिय गायक थे और पूरक अंग के बेजोड़ गायक थे। लखनऊ में नसीर खाँ का जमाना गाने-बजाने की महफिलों का रंगीन युग था जिसका अंत बहुत पहले हो चुका था। नसीर खाँ बाद में लखनऊ छोड़कर अपने वतन देहली चले गये थे और वहीं पर उनका देहान्त हुआ। परन्तु अभी भी लोग लखनऊ में बाबा नसीर खाँ को याद करते हैं और उनकी पूरब की ठुमरी को नहीं भूल सकते।

## मियाँ अचपल

कभी-कभी किसी विशेष युग में एक ऐसे प्रतिभाशाली संगीतज्ञ का जन्म होता है जिससे बहुत से गायक अथवा वादक प्रेरित होते हैं और उसकी कला तथा ज्ञान से वह अधिक लाभ उठाते हैं। ऐसा कोई संगीतज्ञ केवल अपनी कला ही में पारंगत नहीं होता परन्तु संगीत का गहरा ज्ञान भी रखता है और अनोखा विद्वान भी होता है। देहली की पुरानी संगीत-परम्परा से सम्बन्धित बहुत से नामी गायक हुए हैं जिनके बारे में अभी हम थोड़ा-बहुत बता चुके हैं। यह गायक अपने जमाने के प्रसिद्ध कलाकार थे और इन्होंने मान-सम्मान के अतिरिक्त ख्याति भी बहुत पाई थी। परन्तु इन सबके अलावा एक और गायक थे जिनका विशेष ढंग से सम्मान होता था और जो एक तरह से अद्वितीय भी थे। उनकी अनन्यता को सबने माना है। अभी भी देहली के पुराने घरानेदार गायक अथवा वादक इनका नाम आदरपूर्वक स्मरण करते हैं। जिस तरह लोग बड़े छंगे खाँ ऐसे गायक को याद करते समय अपना कान छूते हैं, उसी तरह लोग मियाँ अचपल को भी बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं। रही कान छूने की प्रथा जिसका रिवाज अब तक है, इसे हम अंध-विश्वास कह कर नहीं पुकार सकते और न इसे हम असंगत वार्ता कह कर टाल सकते हैं। इसको हम एक तरह की आदरसूचक संकेत भाषा ही कह कर पुकार सकते हैं अथवा इसे हम घरानेदार और सम्मानित गायकों और वादकों के प्रति सद्भावना प्रकाशन भी कह सकते हैं।

अचपल का जन्म-स्थान कहाँ था और इनका असली नाम क्या था इसके बारे में हमें कोई निश्चित जानकारी नहीं है। यह शायद देहली के आसपास के रहने वाले थे और कव्वाल बच्चों के घराने के थे। इनको लोग अब तक "मियाँ अचपल" कह कर ही याद करते हैं। यह एक बड़े उच्चकोटि के कलाकार थे और इनकी प्रतिभा भी विलक्षण थी। इनका संगीत की बहुत सी शैलियों पर अधिकार था। यह गायक ही नहीं थे परन्तु कुशल संगीतकार भी थे। ख्याल, तराना, त्रिवट, चतुरंग, सरगम, इन सब पर इनका पूरा अधिकार था। इनकी बहुत सी रचनायें अब तक कुछ गायकों को याद हैं।

यह बड़े छंगे खाँ के समकालीन थे और उनके साथ दरबार के शाही गवैये थे। इन्होंने बहुत से शिष्यों को तैयार किया था और संगीत का बड़ा प्रचार किया था। देहली के सामान्य अथवा मध्य श्रेणी के गायक भी जिनके घराने में सारंगी-वादन का रिवाज रहा है, कभी-कभी जोश में आकर अपनी वंश-परम्परा का नाता मियाँ अचपल से जोड़ने लगते हैं। अंग्रेजी में एक कहावत है कि एक छोटे कद (छोटी हैसियत) का आदमी बड़ी कुर्सी पर बैठ कर कभी-कभी अपने को लंबा आदमी साबित करता है। जो कुछ भी हो, इससे पता चलता है कि मियाँ अचपल इतने पहुँचे हुए गायक थे कि देहली के मामूली से मामूली गायक भी इनसे अपना रिश्ता जोड़ते हैं और इनकी चर्चा करते हैं।

मियाँ अचपल ऐसी विलक्षण प्रतिभा के संगीतज्ञ थे कि इनकी कुछ विशेष रचनायें कुछ घरानेदार गायक अब तक गाते हैं। इनमें से कुछ बंदिशें बहुत प्रसिद्ध हुई हैं जैसे राग नट की रचना—"आज मनावन आये" बहार की बंदिश "हरी हरी डालियाँ," इमन कल्यान की चीज "गुरु बिन कैसे गुन गावें" लक्ष्मी टोड़ी की मशहूर बंदिश "जोबना रे लेलेया" इत्यादि। मिया अचपल कैसे महान गायक, संगीतज्ञ और शिक्षक थे इसका पता इसी बात से चलता है कि उन्होंने तानरस खाँ ऐसा नामी गायक तैयार किया था। इनका देहांत 1860 में हुआ।

## तानरस खाँ का घराना

हम हापुड़ ऐसी छोटी सी जगह का वर्णन कर चुके हैं जहाँ के रहने वाले मुहम्मद सिद्दीक खाँ नाम के एक गायक थे जिन्होंने बहुत से कुशल गायकों को शिक्षा दी थी। देहली के आस-पास के गायकों की चर्चा करते हुए

हम डासना नाम के कस्बे को भी नहीं भूल सकते। इसी डासना नाम की छोटी जगह के निवासी कादिर बख्श नाम के एक गायक थे जिनके घराने में ख्याल गाने की प्रथा पहले से चली आई थी। इनके घराने के बड़े-बूढ़ों में एक बड़े प्रसिद्ध गायक हुए थे जो कौड़िया वाले मस्तक के नाम से पुकारे जाते थे। पता चलता है कि कादिरबख्श 1800 के इधर-उधर देहली दरबार में एक गायक की हैसियत से नौकर थे। इनके तीन लड़के थे—कुतुब बख्श, मदार खाँ और हैदर खाँ।

कुतुब बख्श ही बाद में "तानरस खाँ" के नाम से मशहूर हुए। सुना जाता है कि यह नाम एक उपाधि के रूप में देहली के आखिरी बादशाह बहादुर शाह "जफर" की ओर से इन्हें मिला था। अपने जीवन के अन्त तक इन्होंने इसी नाम से सारे देश में ख्याति पाई थी और बहुत यश भी पाया था। यह देहली के शाही गवैये मियां अचपल के शिष्य हो गये थे और उनसे इन्होंने संगीत की बहुत अच्छी शिक्षा पायी थी। यह अपने गुरु की जी-जान से सेवा करते थे और साथ-साथ कड़ी मेहनत भी करते थे। सुनते हैं कि जब इनके उस्ताद मियाँ अचपल घोड़े पर सवार होकर रोज सैर को निकलते थे तो यह उनके साथ प्रतिदिन दस-बारह मील पैदल चलते थे। इन्होंने इस तरह की दिनचर्या का पालन बहुत काल तक किया और अपने पूज्य गुरु की सेवा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मियाँ अचपल भी अपने इस शिष्य से बहुत खुश थे और बड़े प्रेम से इन्हें घण्टों शिक्षा देते थे और रास्ते में भी कुछ बातें समझाया करते थे। ऐसे होनहार और मेहनती शिष्य को पाकर मियाँ अचपल ने भी शिक्षा देने में कोई कमी नहीं की और अपने परम शिष्य को संगीत का भरपूर ज्ञान दिया। घराने की शिक्षा पाने के अलावा जब कुतुब बख्श नाम के गायक को मियाँ अचपल ऐसे धुरंधर गायक से शिक्षा मिली तो इनके गाने में चार चाँद लग गये। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत इन पर ठीक बैठी। तो जब इन्हें बहादुर शाह जफर ने सुना तो वह इनके गाने से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने इन्हें "तानरस खाँ" ऐसा नाम दे दिया। बहादुर शाह "जफर" इन्हें अपना उस्ताद मानते थे और इनका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। बहादुर शाह "जफर" देहली का बादशाह ही नहीं था परन्तु एक माना हुआ उर्दू का कवि भी था जिसका काव्य बहुत मशहूर हुआ है। वह उर्दू के कवि "जौक" को अपना गुरु मानता था और काव्य और संगीत का सहृदय और उदारचित संरक्षक था। वह तानरस खाँ को अपना उस्ताद ही मानता था। इसका यही कारण था

कि यह बादशाह संगीत का भी रसिक था और एक कवि होने की हैसियत से उसके कान सुरीले थे। उसके समकालीन युग के अवध के बादशाह वाजिद अली शाह भी कवि थे (अख्तर मियाँ) और संगीत की बहुत अच्छी जानकारी रखते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में सहृदय और भावुक राजाओं और शासकों के ऐसे उदाहरण दो-चार ही मिलते थे।

तानरस खाँ उन्नीसवीं शताब्दी के चोटी के गायक थे। इनके गाने में इनकी सुहावनी और मन को लुभाने वाली गायकी का विशेष आकर्षण था। इनकी गायकी बहुत रोचक थी और उसमें बहुत से गुण थे। यह लयदारी भी बड़ी अच्छी जानते थे और उसके श्रृंगार से अपने गाने को सजाते थे। हम इस बात को मानने पर बाध्य हैं कि जिस गायक के गाने में लयदारी का आनन्द नहीं होता अथवा जो ताल और लय से नहीं खेल सकता और अपनी बंदिश को सँवारता और सजाता नहीं, हम उसके गाने को अधूरा ही मानेंगे। स्वरों की विचित्र और कलायुक्त उलट-पुलट में एक तरह की बौद्धिक निपुणता ही होती है। किसी रचना की ताल को भावनाहीन, गतिहीन और आलसी बनाना और केवल उसके सम पर ध्यान रखना, उसके वास्तविक श्रृंगार की उपेक्षा करना है। ख्याल-गायन में लयदारी का बहुत बड़ा स्थान है और जो गायक लय के चमत्कारों की अवहेलना करते हैं और ताल और लय का आनन्द नहीं लेते वह बहुत हद तक अपने गाने को कमजोर और नीरस बनाते हैं और उसमें कोई विशेष उत्साह नहीं होता। तानरस खाँ लयदारी से अपनी गायकी को भरपूर और सुशोभित करते थे। वह अपने गाने को लयदारी के आभूषणों से सजाते थे और इस बात को साबित करते थे कि ख्याल के गाने में किसी बंदिश को लय में सजाना हुनर समझा जाता था। बिना अच्छी लयदारी के किसी गायक का गाना कुछ फीका–सा रहता है।

ख्याल के अतिरिक्त तानरस खाँ तराने के भी विशेषज्ञ थे और उसे बड़े निराले ढंग से गाते थे। वह अपने तराने को "दिर दिर" की कलाबाजी नहीं समझते थे और न उसे तेज लय की अतिशयोक्ति बनाते थे। वह उसके बोलों को लय के अनोखे दर्जों में बिठा कर बड़े कलायुक्त ढंग से उसे गाते थे और सम पर तरह-तरह के ढंग से आते थे। श्रोतागण ऐसे तराने को सुनकर झूमने लगते थे और मस्त हो जाते थे। तानरस खाँ ने स्वयं बहुत से अच्छे तरानों की रचना की थी जो उनके प्रमुख शिष्यों को याद थे। हम तानरख खाँ को अपने घराने की शैली का सर्वश्रेष्ठ गायक और टीकाकार मानते हैं। इनकी

शिष्य-परम्परा ने इसी गायकी का अनुकरण किया और इसी की तरह-तरह ढंग की व्याख्या की। तानरस खाँ की गायकी ही इसके घराने की मार्ग-दर्शक बनी।

तानरस खाँ के घराने की एक विशेषता और भी थी जो ग्वालियर और आगरा के घरानों में नहीं पाई जाती थी। तानरस खाँ के घराने में कव्वाली गाने का भी रिवाज रहा है। तानरस खाँ स्वयं विशेष अवसरों पर कव्वाली-गायन करते थे। इनकी शिष्य-परम्परा ने भी कव्वाली को बहुत अपनाया और हैदराबाद में बस कर उसका काफी प्रचार किया। परन्तु इस घराने में कव्वाली शास्त्रीय संगीत के अलावा गाई गयी है और उसका स्थान अलग था। भक्ति और धार्मिक भावना के संबन्ध में कव्वाली को इस घराने के संगीत में मान्यता मिली और उसको घरानेदार संगीत का खण्डन नहीं माना गया है। बहुत से गायक तथा वादक मजारों पर कव्वाली-समारोहों में सम्मिलित होते रहे हैं। ग्वालियर के सरोद-वादक स्व० हाफिज अली खाँ और रामपुर के ख्याल-गायक स्व० मुश्ताक हुसैन खाँ, बरेली के अजीज मियाँ के मजार पर अकसर दर्शन के लिए जाते थे। परन्तु घरानेदार गायकों में तानरस खाँ ही एक ऐसे प्रसिद्ध गायक थे जो कव्वाली-गायन का खुलेआम हार्दिक समर्थन करते थे और उसमें हिस्सा भी लेते थे। उनकी शिष्य-परम्परा ने भी ऐसा ही किया। ऐसा करने में घरानेदार संगीत का न तो अनादर होता था और न कव्वाली शास्त्रीय संगीत का विरोध अथवा खण्डन करती थी। कव्वाली केवल इस बात का प्रमाण देती थी कि वह धार्मिक संगीत की लोकप्रिय शैली थी और शास्त्रीय संगीत का विशेषज्ञ उसकी व्याख्या भी कलायुक्त ढंग से कर सकता था। तानरस खाँ के घराने वाले बहुत से गायकों ने कव्वाली-गायन में भी निपुणता प्राप्त की और उसकी विशेष कला को बहुत सुशोभित किया। इसी तरह बहुत से और गायक भी अपने गायन के अंत में धार्मिक भजनों को बड़ी तन्मयता से और बड़े उत्साह से गाते हैं।

वह गायक भी जो शास्त्रीय गान के बाद लोकप्रिय संगीत की शैलियों को प्रसारित करते हैं, इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं कि इन शैलियों में शास्त्रीय संगीत का कोई विरोध नहीं होता। किसी भी कुशल गायक को इस बात का श्रेय मिलता है कि वह ख्याल-गायन के अलावा ठुमरी, दादरा अथवा गजल को भी कलात्मक ढंग से गा सकता है। कव्वाली को हम धार्मिक संगीत अवश्य मानते हैं परन्तु यथार्थ में वह लोकप्रिय संगीत के अन्तर्गत है। यदि तानरस खाँ के घराने में कव्वाली का रिवाज रहा है तो इससे उसकी

और यह दोनों ऐसे कुशल और प्रसिद्ध गायक बने कि सारे हिन्दुस्तान में इनका बहुत नाम हुआ। हम बाद में इनके विषय में दो चार शब्द और कहेंगे।

तानरस खाँ अपने जमाने के बहुत मशहूर ख्याल गायक थे और इनकी शिष्य-परम्परा ने भी बहुत नाम कमाया। ग्वालियर और आगरा के ख्याल के प्रतिष्ठित घरानों के साथ तानरस खाँ के घराने की भी गणना होती है। यह भी ख्याल का माना हुआ घराना है। इस घराने की शिष्य-परम्परा को भी बहुत मान-सम्मान मिला। यह मानना पड़ेगा कि तानरस खाँ की विलक्षण प्रतिभा ही ने इस घराने को अद्‌भुत प्रेरणा दी। जिस गायकी का निर्माण तानरस खाँ ने किया था और जिसको वह स्वयं व्यवहार में लाते थे उसी का अनुकरण उनकी शिष्य-परम्परा ने भी किया। उनके गाने की मुख्य विशेषता यह थी कि वह महफिल में बैठते ही श्रोताओं की अभिरुचि को एक क्षण में पहचान लेते थे और अपने गाने का रंग जमा लेते थे। उनके गाने का ऐसा समा बँध जाता था कि श्रोताओं को सुनते ही बनता था और वह मुग्ध हो जाते थे। महफिल अथवा सभा को खुश करना और उसे संगीत के आनन्द से भरना और उसी तरह का गाना सुनाना जो रोचक और लोकप्रिय हो, इससे एक गायक की अनोखी समझ-बूझ का पता चलता है और इससे उसकी लोकप्रियता का सबूत भी मिलता है। तानरस खाँ ऐसे ही गवैये थे और जब भी वह गाते थे उनके गाने का रंग बहुत जमता था। यह गुण बहुत से गायकों में नहीं होता और सब गायक अपने गायन को लोकप्रिय और रोचक नहीं बना पाते। इसको हम गायकों के गाने की कमी कहेंगे और इसे हम एक तरह का दोष भी मानेंगे। तानरस खाँ के बाद इस देश में केवल दो-चार ही ऐसे ख्याल गायक हुए हैं जिनका गायन जनता के लिए इतना रोचक और लोकप्रिय होता था कि सारे श्रोता उन्हें सुनकर मस्त हो जाते थे।

हम पहले बता चुके हैं कि तानरस खाँ के घराने में कव्वाली का रिवाज रहा है। हम इस बात को दुहरायेंगे कि कव्वाली से इस घराने के ख्याल गायन पर कोई आँच नहीं आई। तानरस खाँ की कव्वाली की भी बड़ी धूम थी। किसी धुरन्धर गायक का कव्वाली ऐसी लोकप्रिय शैली का मर्मज्ञ होना उसके बहुपक्षी संगीत का प्रमाण होता है। और यदि कोई प्रसिद्ध ख्याल गायक आलाप, होरी और ख्याल से लेकर ठुमरी, दादरा, गजल, टप्पा और तराना तक का विशेषज्ञ होता है तो यह और भी एक अचम्भे की बात होती है। आगरा घराने के स्व० फैयाज भी तानरस खाँ की तरह एक लोकप्रिय गायक थे और वह इन सब लोकप्रिय शैलियों के मर्मज्ञ थे। सच तो यह है

कि तानरस खाँ अपने ढंग के निराले गायक थे और आम श्रोताओं से लेकर दरबार की महफिलें तक उनके संगीत का आनन्द उठाती थीं। वह अपने जमाने के बेजोड़ गवैये थे।

पटियाले के अलीबख्श और फतहअली के अलावा इनके और भी दो-चार प्रतिभावान शिष्य थे जिनमें अब्दुल्ला खाँ, जहूर खाँ, महबूब खाँ और इनायत खाँ प्रमुख थे। इनके अलावा इनके कुछ और भी शिष्य थे जिनमें अपने ढंग की प्रतिभा थी। पहले तो उजागर सिंह नाम के मेवात के एक सारंगी-वादक थे जिन्होंने तानरस खाँ से बहुत सी चीजें याद की थीं। नन्हीं बाई नाम की खेतरी की एक गायिका भी इनकी शिष्या थी जो गोकीबाई की समकालीन थी और बहुत अच्छा गाती थी।

तानरस खाँ के दो बेटे थे, गुलाम गौस और उमराव खाँ। उमराव खाँ ही इनके बाद इस घराने के "जानशीन" अथवा उत्तराधिकारी बने। उमराव खाँ को अपने पिता से बड़ी अच्छी शिक्षा मिली थी और इनको ख्याति भी बहुत मिली। यह तानरस खाँ के छोटे लड़के थे और इस घराने के प्रसिद्ध गायक माने गये हैं। बहुत समय तक यह हैदराबाद में रहे। तानरस खाँ देहली-दरबार में नियुक्त थे और देहली का आखिरी बादशाह बहादुर-शाह "जफर" इनको अपने गुरु तुल्य मानता था। परन्तु 1857 के गदर के पश्चात् निजाम हैदराबाद ने इन्हें अपने यहाँ बुलवा लिया और तानरस खाँ और उनके कुटुम्ब के लोग वहीं रहने लगे। तानरस खाँ ऐसे उदारचित्त आदमी थे और ऐसे दयालु और चरित्रवान व्यक्ति थे कि हैदराबाद में रह कर भी वह देहली में घरानों के आश्रित व्यक्तियों की, और विशेषकर विधवाओं की, बराबर आर्थिक सहायता करते थे। यहीं पर तानरस खाँ का देहान्त 1890 के आसपास हुआ और इनकी समाधि शाह खामोश साहब की दरगाह के बाजू में अब तक मौजूद है।

तानरस खाँ की मृत्यु के पश्चात् इनके छोटे लड़के उमराव खाँ ही इस घराने के उत्तराधिकारी बने और इन्हीं को इस उत्तराधिकार के अन्तर्निहित अधिकार मिले। आम जनता में और गायकों और वादकों के बीच में भी उमराव खाँ को ऐसी मान्यता मिली। बहुत दिनों तक यह हैदराबाद दक्षिण में निजाम के दरबार में नियुक्त रहे। स्व० मीर महबूब अली खाँ के शासन काल से लेकर मीर उसमान अली खाँ के राज्याभिषेक तक और कुछ वर्ष बाद भी यह हैदराबाद के दरबारी गायक रहे। इसके बाद यह होली के अवसर पर इन्दौर भी गये और वहाँ इनको बहुत मान-सम्मान मिला और

बहुत से पुरस्कार भी मिले। बाद में ग्वालियर के महाराज सिंधिया ने इन्हें अपने दरबार में नियुक्त कर दिया था जहाँ यह कुछ काल तक रहे। परन्तु कुछ समय के पश्चात् यह फिर हैदराबाद लौट गये। उत्तर-प्रदेश से भी इनका काफी सम्बन्ध रहा और यहाँ भी यह आते-जाते रहते थे। तानरस खाँ के सुपुत्र होकर और एक नामी ख्याल गायक की हैसियत से इनको बहुत प्रतिष्ठा मिली और गायकों और वादकों के समाज में भी इनको बहुत सम्मान मिला। यह अपने घराने की गायकी की बहुत अच्छी व्याख्या करते थे और इनके पास बन्दिशों का बढ़िया संग्रह भी था। यह शिक्षक भी बहुत अच्छे थे। यह बताना कठिन है कि अपने घराने में अपनी सन्तान के अलावा और किस-किस को इन्होंने शिक्षा दी। परन्तु इनके लड़के सरदार खाँ का भी बहुत नाम हुआ।

## सरदार खाँ

इनको अपने पिता से बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी और परिश्रम करके यह एक सुयोग्य और प्रसिद्ध गायक बन गये थे। गायकों में भी इनको सम्मान मिला था। परन्तु किसी कारणवश यह बँटवारे के बहुत पहले 1925 में पाकिस्तान चले गये थे और लाहौर में जाकर बस गये थे।

सरदार खाँ को अपने पिता से बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी और वह परिश्रम करके बहुत कुशल और अनुभवी गायक बन गये थे। इस घराने के प्रथम श्रेणी के गायकों में भी इनकी गणना होती थी। जब यह लाहौर पहुँचे तो उस समय वहाँ फतह अली खाँ के लड़के आशिक अली खाँ और अलीबख्श के घराने के गायक अख्तर हुसैन मौजूद थे और बड़े गुलाम अली खाँ और छोटे गुलाम अली खाँ अभी उभर रहे थे। इनके अलावा और गायकों के बीच में भी उन्हें बहुत मान-सम्मान मिला। उमराव खाँ के लड़के और तानरस के पोते होकर पंजाब में उन्हें बहुत आदर मिला। विशेष रूप से फतह अली खाँ और अलीबख्श की शिष्य-परम्परा ने उनको अपनी श्रद्धा अर्पित की। परन्तु अपने घराने की प्रतिष्ठा के अलावा सरदार खाँ में भी एक गायक की हैसियत से ऐसे गुण थे कि उन्हें गुणीजन-समाज में भी मान्यता मिली। उनके गाने में एक ऐसी विशेषता थी जो पंजाब के बहुत से नामी और तैयार गवैयों में नहीं पाई जाती थी। सरदार खाँ के गाने की विशेषता यह थी कि वह बड़े इतमिनान अथवा धैर्य से गाते थे और उनके गाने में गांभीर्य अथवा ठहराव था। वह स्वरों का आनन्द लेकर अपने किसी राग को बढ़ाते थे और

स्थाई और अंतरे की बढ़त को भी इसी ढंग से करते थे। यह बात नहीं थी कि उनमें तैयारी नहीं थी। परन्तु ख्याल-गायन में वह उन गायकों में नहीं थे कि बैठते ही तानों की आतिशबाजी शुरू कर दें और राग और चीज की बढ़त को अप्रधान समझें। एक घरानेदार गायक की हैसियत से वह गायकी के अनुशासन का पालन करते थे और अपने गाने को हर तरह से गंभीर और कलायुक्त बनाते थे। उनका लक्ष्य था, "गायकी के साथ राग की व्याख्या और चीज की बढ़त।" वास्तव में यही घरानेदार गायकी का निचोड़ है। उनका गाना तानों और सरगमों पर आधारित नहीं था परन्तु घरानेदार गायकी ही उसका मुख्य आधार थी।

सरदार खाँ को छोड़कर हम उमराव खाँ के और किसी प्रतिभावान शिष्य का विशेष नाम नहीं सुनते। पंजाब में बस जाने के बाद सरदार खाँ के जीवन की और घटनाओं की भी हमको कोई विशेष जानकारी नहीं है।

तानरस खाँ के बड़े लड़के का नाम गुलाम गौस था और इनके दो लड़कों ने भी अच्छा नाम कमाया। गुलाम गौस के बड़े बेटे का नाम अब्दुल रहीम था। गुलाम गौस मुंशी फाजिल थे और अपने छोटे भाई उमराव खाँ की तरह कोई गायक ही नहीं थे। इसलिए अब्दुल रहीम को घराने के बड़े-बूढ़ों से ही संगीत की शिक्षा मिली और यह बहुत अच्छा गाने लगे। सुना है कि इनका कण्ठ सुरीला और मीठा था और इनकी आवाज में दर्द था। ख्याल, त्रिवट और तराना ऐसी सब शैलियों पर इनका अधिकार था और यह एक मँझे हुए गायक माने जाते थे। गाने के अलावा यह कविता भी अच्छी करते थे और देहली के महाकवि दाग के अनुयायी और शिष्य थे। इनका उपनाम "नादिर" था और इन्होंने बहुत सी सुन्दर गजलों की रचना की। यह हैदराबाद में बहुत काल तक नौकर रहे और वहीं 1930 में सत्तर वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ। इनके शिष्यों के बारे में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं है। शायद इसका यह कारण भी था कि उस जमाने में हैदराबाद में कव्वाली की बहुत चहल-पहल थी और लोग शास्त्रीय संगीत के प्रति कुछ उदासीन से हो गये थे। यह बात स्वाभाविक थी जब अच्छे और मँझे हुए गायक भी कव्वाली-गायन में बहुत दिलचस्पी लेने लगे थे और उसकी भावुक तन्मयता में अपने को खो बैठते थे।

गुलाम गौस के मँझले बेटे का नाम अब्दुल करीम खाँ था। इन्हें भी अपने घराने के अनुभवी गायकों से बड़ी अच्छी शिक्षा पहुँची थी। इनके पास अच्छी-अच्छी बंदिशों का बड़ा अच्छा संग्रह था। बहुत वर्ष पहले इन पंक्तियों

के लेखक ने इनसे ललिता-गौरी की एक बड़ी सुन्दर बंदिश सुनी थी जिसके गाते ही महफिल में समा बँध गया था। ऐसी चीजें गाकर यह महफिल में बैठते ही अपना रंग जमा लेते थे। इनकी गायकी बड़ी रोचक थी और इनकी बोल-तानें भी अपने ढंग की निराली थी। इन्हें फारसी का भी अच्छा ज्ञान था और इन्हें उर्दू की बहुत सी सुन्दर पंक्तियाँ भी याद थीं। कव्वाली-गायन की सभाओं में भी यह बहुत जाते थे और उच्चकोटि के काव्य से अपने श्रोताओं को मुग्ध करते थे। यह अपने घराने के शिक्षित और अनुभवी गायकों में थे जिनके पास बंदिशों का बड़ा अच्छा संग्रह था।

परन्तु इन गायकों के अतिरिक्त तानरस खाँ के घराने में एक और गायक थे जिनकी प्रतिभा विलक्षण थी। इनका गाना बहुत कुछ निराला था औरों में अलग था। यह थे शब्बू खाँ जो हैदर खाँ के लड़के थे और तानरस खाँ के भतीजे थे। इनको भी अपने घराने ही में शिक्षा मिली थी। परन्तु इनकी व्यक्तिगत अभिरुचि अथवा इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति मुशकिल गायकी की ओर प्रेरित थी और इन्होंने पेचीदा और बलदार गायकी का बहुत अभ्यास किया था। संभव है कि घराने के ऐसे किसी विशेष गायक को इन्होंने अपना आदर्श माना था। अथवा यह स्वभाव ही से ऐसी गायकी के भक्त और अनुयायी थे और अभ्यास करके उन्होंने उस पर अधिकार प्राप्त किया था। हम कव्वाल बच्चों की गायकी का वर्णन कर चुके हैं जो अपनी पेचीदा फिरत के लिए मशहूर थी। शब्बू खाँ की फिरत भी पेचीदा और बलदार फिरत थी और उन्होंने इस फिरत को अपने ढंग से माँझ लिया था। इस गायकी का कला-चातुर्य और इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति का वैचित्र्य अपने ढंग का निराला था। शब्बू खाँ ऐसी ही गायकी के विशेषज्ञ थे। परन्तु स्वरों की ऐसी अनोखी काट-छाँट को हम एक तरह की गणितीय उलट-पुलट ही नहीं कह सकते थे। ऐसा करने से किसी राग का स्वरूप नहीं बिगड़ता था परन्तु उन स्वरों में एक नया चमत्कार चमक उठता था और राग-व्याख्या का स्तर भी ऊँचा उठ जाता था। इस तरह के गायन में केवल एक बौद्धिक कुतूहल ही नहीं होता था परन्तु स्वरों की रंजकता भी होती थी। परन्तु शब्बू खाँ की गायकी में किराना गायकी का कोई आभास नहीं था और न उसमें किराना गायकी की नीरस पुनरावृत्ति थी। वह अपने ढंग की पेचीदा गायकी थी और शायद उसमें कव्वाल बच्चों की पेचीदा गायकी की थोड़ी-बहुत झलक भी मिलती थी। मगर थी वह उनकी अपनी गायकी जो तानरस खाँ के घराने की प्रचलित गायकी से बहुत-कुछ अलग थी।

एक दिन इसी लखनऊ में चालीस वर्ष पहले संगीत की एक विशेष गोष्ठी में जहाँ स्वर्गीय पंडित भातखण्डे भी मौजूद थे, शब्बू खाँ ने पूरिया और मालकोश की ऐसी अद्भुत और कलात्मक व्याख्या की थी कि सारे श्रोता मुग्ध हो गये थे और गुणीजनों से उन्हें बड़ी वाह-वाह मिली थी। अभी भी वह दृश्य हमारी आँखों के सामने फिर से आ जाता है और उस दिन की याद जाग उठती है। उनके साथ दो तंबूरे छिड़ रहे थे और उनके पीछे बाबा नसीर खाँ बाजा लेकर बैठे थे और गले से भी कुछ कहते जाते थे। शब्बू खाँ उनके पिता मुहम्मद सिद्दीक खाँ के शिष्य रह चुके थे।

शब्बू खाँ का देहान्त हैदराबाद में 1939 में हुआ था। उन्होंने अपने भांजे प्यारे खाँ को भी शिक्षा देकर अच्छा तैयार किया था।

तानरस खाँ के घराने के शिष्यों में एक अब्दुल अजीज खाँ नाम के गायक भी थे जिन्हें उमराव खाँ और मुहम्मद सिद्दीक खाँ दोनों से थोड़ी-बहुत शिक्षा मिली थी। यह शहादरे के गायक महमूद खाँ के पौत्र थे। इन्होंने बहुत-सी रियासतों की सैर की और यह गुजरात की धरमपुर नाम की रियासत में बहुत काल तक रहे। यह ख्याल के अतिरिक्त ध्रुपद और धमार भी अच्छा गाते थे। बंबई में 1940 में इनका देहान्त हुआ।

इनके दूसरे भाई का नाम मसीत खाँ था जो अच्छे ख्याल गायक थे। इन्होंने बहुत सी बंदिशों की रचना की थी और इनका उपनाम "मगन-पिया" था। यह अधिकतर अतरौली में रहे। यह 1915 में हैदराबाद चले गये थे और वहाँ हकीम बन गये थे। इनका देहान्त भी वहीं हुआ।

## तानरस खाँ के शिष्य फतह अली और अलीबख्श और पटियाला घराना

पिछले कुछ वर्षों में जब कभी लोग स्व० बड़े गुलाम अली खाँ के गाने की प्रशंसा करते थे तो उनकी "पटियाला गायकी" पर भी कुछ प्रशंसात्मक टिप्पणी करते थे। आज भी जब वह संसार में नहीं है तब भी उनके होनहार सुपुत्र मुनव्वर अली खाँ के गाने की प्रशंसा करते हुए भी लोग उनकी पटियाला गायकी की प्रशंसा करते हैं। घरानों की इस मामूली जानकारी वाली पुस्तक में भी यह आवश्यक है कि हम "पटियाला घराना" और "पटियाला गायकी" के बारे में दो चार शब्द कहें। पंजाब में लोक संगीत के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत का भी बहुत बोल-बाला रहा है और वहाँ के संगीतज्ञों का

देश भर में नाम हुआ है। तिलवन्डी के ध्रुपद गायन को बहुत ख्याति मिली थी। वहाँ के भिन्न-भिन्न कलाकारों का भी काफी नाम हुआ है। उदाहरणार्थ तबले में कादिर बख्श और करम इलाही ऐसे तबलावादकों को संगीत के विद्वानों से मान्यता मिली थी। वहाँ के गायक और वादक सारे हिन्दुस्तान में मशहूर थे। तो इस सम्बन्ध में यह जान लेना भी आवश्यक है कि हम पटियाला घराना और उसकी गायकी किसे कहेंगे। जिनको हम पटियाला घराने का जन्मदाता मान सकते हैं वह थे अलीबख्श और फतहअली खाँ। यह कौन थे ? यह दोनों अलीबख्श के पिता मियाँ कालू से संगीत सीखते थे और बाद में इन्हें मियाँ कालू ने बहराम खाँ की शिष्या गोकी बाई का शिष्य बनवा दिया था। इन दोनों का जन्म पटियाला में 1850 में हुआ था। यह एक दूसरे को अपना भाई मानते थे। अथवा मुँहबोले भाई थे। यह दोनों बड़े मेहनती और तीक्ष्ण बुद्धि के होनहार, तरुण गायक थे। मियाँ कालू को इस बात की चिन्ता रहती थी कि इन्हें किसी नामी और घरानेदार गायक का शिष्य बनवायें जिससे गायकों के बीच में बैठकर यह दोनों गाने लगें। गायकों और वादकों के संगीत क्षेत्र में यह प्रथा चली आई है कि किसी ऊँचे ढंग की संगीत गोष्ठी में वही गायक गा सकता है जिसे किसी घरानेदार अथवा नामी गायक से शिक्षा मिली हो। किसी गायिका से शिक्षा पाकर यह सम्भव नहीं था कि किसी गायक को अनुमति मिल जाये कि वह घरानेदार संगीतज्ञों की सभा में गा सके। बहराम खाँ की शिष्या गोकी बाई एक प्रवीण गायिका थी और उसका नाम भी काफी दूर-दूर तक फैला था। परन्तु उन्हें एक घरानेदार गायक का पद नहीं मिल सकता था। थी तो वह एक गायिका ही। मियाँ कालू इस कमी को खूब जानते थे और उसे दूर करने का उपाय सोचा करते थे। जब तानरस खाँ एक बार देहली से जयपुर गये तो मशहूर बीनकार रजब अली खाँ ने उनकी दावत की। अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ वहाँ जमा हुए। मौका पाकर मियाँ कालू ने किसी तरह से अलीबख्श और फतह अली को भी इस महफिल में गवाया और लोगों को सुनवाया। फिर हाथ जोड़कर मियाँ कालू ने तानरस खाँ से निवेदन किया कि वह इन दो तरुण गायकों को अपनी शरण में ले लें। तानरस खाँ ने इन होनहार गायकों की प्रखर बुद्धि को देखकर इन्हें अपना शिष्य बना लिया। इसके पश्चात् तानरस खाँ ने इन्हें शिक्षा देकर और इनसे परिश्रम करवाकर इन दोनों को सुयोग्य गायक बनाया। फिर तो इन दोनों गायकों का ऐसा नाम चमका कि सारे हिन्दुस्तान में इनकी ख्याति फैल गई।

यह दोनों टोंक के दरबार में बहुत काल तक नियुक्त रहे। टोक नरेश नवाब इब्राहीम खाँ ने जो संगीत के सच्चे पारखी थे इन दोनों को 'जनरल-करनल' ("जनरैल-करनैल") की उपाधि दी थी। बाद में पटियाला-नरेश के आग्रह से यह दोनों पटियाला लौटकर आ गये थे। यह दोनों अपनी तैयारी के लिए सारे देश में प्रसिद्ध थे। बहुत से लोग इन्हें "अलिया फत्तू", के नाम से भी जानते थे। इतने नामी गायक होते हुए भी इन्हें अभिमान छूकर नहीं गया था और यह सब गुणियों का एक सा आदर करते थे और उनसे विनीत भाव से मिलते थे। अपने जीवन-काल के अन्त तक 1920 तक यह दोनों गायक अपने गुरु की सन्तान का और उनकी शिष्य-परम्परा का बहुत आदर करते रहे। पुराने गायकों से सुना है कि यह दोनों कभी-कभी तानरस खाँ के सुपुत्र उमराव खाँ की डाँट-फटकार भी सुनते थे और चुप रहते थे। यह केवल इनका औपचारिक शिष्टाचार ही नहीं था परन्तु इनकी सच्ची विनीत भावना थी और अपने पूज्य गुरु के प्रति इनकी श्रद्धांजलि थी। तानरस खाँ के घराने के प्रमुख शिष्य इस बात को जानते थे कि यह दोनों कैसे नामी और धुरन्धर गायक थे और इनको कैसा यश प्राप्त हुआ था। यह भी सच था कि इनके बाद कोई दूसरा गायक आसानी से जम नहीं सकता था। यह भी सच था कि तानरस खाँ की शिष्य-परम्परा का हर गायक इनसे टक्कर नहीं ले सकता था। ऐसे अवसरों पर उमराव खाँ और जहूर खाँ नाम के एक गायक ही अपने घराने की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने देते थे।

फतह अली खाँ के लड़के आशिक अली खाँ का भी बहुत नाम हुआ और यह बड़े नामी और अनुभवी गायक थे। इनका चरित्र साधुओं का-सा था। इनका अपने ढंग का निराला गाना था और यह बहुत दबंग गाते थे। यह अपने पूज्य पिता की शिष्य-परम्परा की प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने देते थे। 1938 के आस-पास लाहौर में जब इन्हें पता चला था कि बड़े गुलाम अली खाँ बहरे वहीद खाँ (किराना गायकी के विशेषज्ञ और हीराबाई बडोद-कर के गुरु) के शिष्य होना चाहते थे तो इन्होंने वहीद खाँ को चुनौती दी थी कि बड़े गुलाम अली खाँ को शिष्य बनाने के पहले वह उनके साथ लाहौर के 'तकिये' पर गा बजा लें। इस चुनौती का कारण यह था कि बड़े गुलाम अली के पिता कुसुर वाले अलीबख्श फतह अली के शिष्य थे और इसलिए फतह अली खाँ की सन्तान का यह धर्म था कि वह अपने घराने की प्रतिष्ठा पर आँच न आने दे। इन पंक्तियों का लेखक इस अवसर पर लाहौर में था

और उसे विशेष घटना की जानकारी है। वहीद खाँ ने उस चुनौती को स्वीकार नहीं किया और वह 'तकिये' पर उस दिन नहीं गये।

अलीबख्श के भांजे मियां जान खाँ भी बड़े अच्छे गायक थे और इन्हें अपने नाना मियां कालू से भी बड़ी अच्छी शिक्षा मिली थी। इनके गाने में समझ-बूझ थी और कला का चमत्कार भी था। यह एक अनुभवी और मंझे हुए गायक थे और गायकों में इनका आदर भी बहुत होता था। यह बहुत सी रियासतों में भी गये। इन्दौर रियासत में नियुक्त होने के पश्चात् यह जीवन भर वहीं रहे।

काले खाँ भी कुसुर वाले अली बख्श की तरह फतह अली खाँ के शिष्य थे। यह बहुत खुला-खुला, दमदार गाना गाते थे और इनकी तानें बहुत जोरदार थीं। इनमें मियां जान खाँ का-सा ज्ञान नहीं था परन्तु इनका गाना बहुत प्रभावोत्पादक था और उसमें एक तरह का दबंगपन था। यह बड़े गुलाम अली के चाचा या मामा लगते थे। इनका देहान्त कानपुर में 1915 में हुआ।

यह लखनऊ भी आकर रहते थे और लखनऊ के मशहूर गायक बाकर खाँ से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी।

कुसुर के अलीबख्श (बड़े गुलाम अली खाँ के पिता) भी फतह अली खाँ के शिष्य थे। परन्तु इनका ध्यान लोकप्रिय संगीत की ओर अधिक गया था और इन्होंने अपने लड़कों गुलाम अली खाँ और बाकर अली खाँ—को संगीत की शिक्षा दी। लखनऊ के 1924-25 के संगीत-सम्मेलन में यह निमन्त्रित हुए थे।

फतह अली खाँ और अलीबख्श की शिष्य परम्परा में लाहौर के अख्तर हुसैन का भी बहुत नाम हुआ। यह अपने ज्ञान और अपनी गायन-कला के लिए काफी प्रसिद्ध हुए और एक अनुभवी और सुयोग्य शिक्षक भी माने जाते थे।

आधुनिक काल में पटियाला से सम्बन्धित गायकों में बड़े गुलाम अली खाँ का सबसे अधिक नाम हुआ है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में यह सारे पंजाब ही के सबसे प्रसिद्ध गायक नहीं माने जाते थे परन्तु इस देश के प्रसिद्ध गायकों में भी इनकी गणना होती थी। यह एक प्रसिद्ध ख्याल गायक माने जाते थे और लोकप्रिय संगीत (पंजाब की ठुमरी) के बेजोड़ गायक थे। इन्होंने मान और यश दोनों पाया और इनको बहुत ख्याति मिली। प्रश्न उठता है क्या यह पटियाला गायकी गाते थे? पटियाला गायकी हम किसे कहते हैं? अथवा पटियाला घराना हम किसे मानते हैं? हम पहले भी इस

बात की ओर संकेत कर चुके हैं। मियाँ काल्लू से लेकर अलीबख्श और फतह अली खाँ के प्रमुख शिष्यों तक हम पटियाला घराने के क्षेत्र को मानते हैं। हम यह भी मानने को तैयार हैं कि मियाँ जान खाँ, काले खाँ, आशिक अली और अख्तर हुसैन भी पटियाला गायकी की अपने-अपने ढंग से व्याख्या करते थे। परन्तु हम बड़े गुलाम अली खाँ की गायकी को प्रामाणिक पटियाला गायकी नहीं मान सकते। यह उनकी अपनी गायकी थी जो उनकी सुरीली तानों पर और उनकी असीम भावुकता पर आधारित थी। अलीबख्श और फतह अली खाँ की गायकी तानरस खाँ की गायकी पर आधारित थी। उनके अपने शिष्यों की गायकी उनकी गायकी का भाषान्तर था। परन्तु जो गायकी बड़े गुलाम अली खाँ गाते थे वह पटियाला की प्रामाणिक गायकी नहीं थी। या तो उनको उसकी ठीक शिक्षा नहीं मिली थी अथवा उनको उसका ज्ञान और अभ्यास नहीं था। कदाचित् यह भी संभव है कि वह गायकी उनके मतलब की नहीं थी और उसमें वह अपनी मनमानी भावुकता का प्रवेश नहीं कर पाते ये। जो कुछ भी हो, जिस गायकी को वह गाते थे और जिसकी वह शिक्षा भी देते थे वह पटियाला गायकी नहीं थी परन्तु उनकी अपनी एक अलग गायकी थी जिसको सुनकर आम श्रोता बहुत प्रसन्न होते थे। उनको इस बात का श्रेय था कि जैसे वह बागेश्वरी और मालकोश गाकर अपने को ख्याल गायक सिद्ध करते थे उसी तरह 'का करूँ-सजनी आये न बालम' गाकर वह पंजाब के माहिया और वहाँ की पहाड़ी ऐसी लोक संगीत की धुनों का कलात्मक प्रयोग करके अपने आम श्रोतागण को अपूर्व आनन्द से भर देते थे। क्या यह कोई कम बात थी ? तो फिर उनकी गायकी को 'पटियाला गायकी' कह कर उनके गाने की प्रशंसा करना एक तरह से निरर्थक मालूम पड़ता है। उनके सुपुत्र मुनव्वर खाँ के गानों को भी पटियाला गायकी से संबन्धित करना असंगत है। ऐसा विचार उनके गाने की उन्नति में बाधा भी डाल सकता है। और उनके आगे के संगीत का पथ-प्रदर्शक भी नहीं बन सकता।

यदि हम पटियाला घराना मान भी लेते हैं तो वह वास्तव में तानरस खाँ के घराने क़ी एक शाखा थी और उसी घराने के अंतर्गत थी। पटियाला घराने का उद्गम-स्थान तानरस खाँ का घराना था और उसकी व्युत्पति का आधार भी वही प्रामाणिक घराना था। जब कभी ऐसे एक नये घराने का जन्म होता है तो आगे चल कर उसकी शिष्य-परम्परा में एक तरह की व्युत्पन्न गायकी का आभास होता है। गायकी का इस तरह का परिवर्तन भी स्वाभाविक हो जाता है। जब टकसाल नहीं रहती तो खोटे (जाली) सिक्के

बनाये जाते हैं और वह भी चलने लगते हैं। परन्तु पटियाला घराने में ऐसा नहीं हुआ। पटियाला गायकी में बहुत कुछ परिवर्तन हुए परन्तु उसके प्रमुख और प्रतिभावान शिष्यों ने उसके आधार को बहुत अधिक नहीं बदला। परन्तु जहाँ तक बड़े गुलाम अली खाँ की अपनी गायकी का संबन्ध था, उसमें इस पटियाला गायकी का बहुत कम आभास था। उनका पाठान्तर व्यक्तिगत ढंग से उनकी अपनी देन थी और उनकी गायकी में तानरस खाँ के प्रामाणिक गायकी के लक्षण नहीं दिखाई देते थे। सच पूछा जाये तो अलीबख्श और फतह अली खाँ की गायकी का अब लोप हो गया है और उसके चिह्न भी अब नहीं दिखाई देते।

जहाँ तक तानरस खाँ की गायकी का संबन्ध है उसका भी यह अवनति-काल है। तानरस खाँ की शिष्यपरंपरा जहाँ कहीं भी हो उसका यह धर्म है कि वह इस प्रतिष्ठित गायकी को जीवित बनाये रखे। यह मानना पड़ेगा कि ख्याल-गायन के प्रगतिशील विकास में इस गायकी का भी हाथ रहा है।

# 6

# सहारनपुर के संगीतज्ञ और ध्रुपद-गायक बहराम खाँ का घराना

संगीत की मुख्य शैलियों को ध्यान में रख कर और उसकी विविधता पर विचार करते हुए इस अध्याय में हम ध्रुपद के एक प्रसिद्ध घराने का संक्षेप में वर्णन करेंगे। हमें विश्वास है कि ख्याल के घरानों का वर्णन करते-करते प्रसंग का यह परिवर्तन पाठकों के लिए रुचिकर साबित होगा। हम दूसरे अध्याय में तानसेन की शिष्य-परंपरा का वर्णन कर चुके हैं। इस अध्याय में हम आधुनिक युग के ध्रुपद के एक प्रसिद्ध घराने का वर्णन करेंगे जिसको बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। भिन्न-भिन्न घरानों का वर्णन करते समय हम ध्रुपद के इस प्रतिष्ठित घराने पर भी दो-चार शब्द कहेंगे।

सुविधा के लिए हम इस घराने को "सहारनपुर का घराना" कह कर भी पुकार सकते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान के गायक और वादक इसे "बहराम खाँ का घराना" ही मानते हैं। सेनिया घराने के अतिरिक्त और भी संगीत के मुख्य केन्द्रों में ध्रुपद शैली की परम्परा सुरक्षित रही है। दक्षिण में बीजापुर में बहुत पहले ध्रुपद का वैभवशाली युग था। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में बनारस, लखनऊ और रामपुर उत्तर प्रदेश में ध्रुपद शैली के मुख्य केन्द्र माने जाते थे। बंगाल में विष्णुपुर का और बिहार में दरभंगा का भी इस शैली से बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी में ध्रुपद का उत्थान हुआ था। बनारस और रामपुर के सेनिया घराने का समकालीन एक और घराना हुआ है जो "सहारनपुर का घराना" कहलाता है। परन्तु

जिसे हम पाठकों की सुविधा के लिए "बहराम का घराना" कहेंगे। इस घराने के मार्गदर्शक बहराम खाँ माने जाते हैं और इनकी ध्रुपद-शैली ही इस घराने की गायकी का स्रोत मानी जाती है। परन्तु यदि इस घराने को हम सहारनपुर का घराना भी मानें तो यह भी एक तरह से ठीक है। सामूहिक रूप से सहारनपुर अच्छे-अच्छे, नामी संगीतज्ञों से संबन्धित रहा है और उसकी संगीत परंपरा का बहुत मान था। जिला सहारनपुर का संगीत से घनिष्ठ संबन्ध रहा है। इसलिए हम वहाँ के संगीतज्ञों को सहारनपुर घराने के अन्तर्गत मान सकते हैं।

कहा जाता है कि सहारनपुर के बरनावा शरीफ के शेख खलीफा रमजानी के शिष्य खलीफा मुहम्मद जमा एक बहुत पहुँचे हुए सूफी संत थे। परन्तु यह केवल एक धार्मिक पुरुष ही नहीं थे और न केवल एक माने हुए सूफी संत ही थे परन्तु संगीत विद्या में भी यह हर तरह से निपुण थे और उसके मर्मज्ञ थे। लोग कहते हैं कि यह वीणा, रबाब और सितार में पारंगत होने के अतिरिक्त एक बेजोड़ गायक भी थे। इन्होंने संगीत का ज्ञान निर्मल शाह ऐसे अद्वितीय संगीतज्ञ से प्राप्त किया था। यह संगीत में इतने प्रवीण थे और इनमे ऐसी असाधारण प्रतिभा थी कि इनके गुरु ने इन्हें "खलीफा" की उपाधि दे दी थी। ऐसी उपाधि संगीत के किसी अनन्य कलाकार ही को मिल सकती थी। खलीफा मुहम्मद जमाँ देहली के अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह के दरबार में भी थे और इनका देहान्त देहली में ही हुआ।

मुहम्मद जमाँ के अतिरिक्त सहारपुर में और भी कुशल संगीतज्ञ हुए हैं जिनमें एक-आध का तो भारतवर्ष भर में नाम था। इस संबन्ध में सहारनपुर के एक विशेष घराने का वर्णन करना बहुत आवश्यक है। हमारे सामने दो कुशल गायकों के नाम आते हैं—गुलाम तकी खाँ और गुलाम जाकिर खाँ। यह दोनों अल्तारक्खे खाँ के बेटे थे। इन दोनों ने अपने पिता से संगीत की शिक्षा पायी थी। सुना है कि यह दोनों भाई ध्रुपद और होरी बहुत अच्छा गाते थे। इनके और भाइयों के नाम थे गुलाम आजम, गुलाम कासिम और गुलाम जामिन। यह सब कुशल गायक थे और ग्वालियर, ज़यपुर और अलवर के दरबारों में नौकर थे।

## बन्दे अली खाँ

यह गुलाम जाकिर के पुत्र थे और इन्होंने अपने पिता और उनके भाइयों से संगीत की उत्तम शिक्षा पाई थी। इन्होंने गाना छोड़ कर वीणा-वादन का

अभ्यास किया था और उच्चकोटि के वीणा-वादक बन गये थे। इनका भारतवर्ष भर में नाम था। ऐसा कौन-सा संगीत का विद्यार्थी है जिसने बन्दे अली खाँ बीनकार का नाम नहीं सुना है ? आधुनिक संगीत के इतिहास में इनकी गणना इस देश के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में होती है। वाद्य संगीत में इनका नाम अमर रहेगा और यह चोटी के बीनकार थे जिनका मान-सम्मान प्रथम श्रेणी के गायकों और वादकों के साथ होता था। यह उन वीणा वादकों में थे जो अपनी विशेष कला में अद्वितीय थे। अपने चरित्र की एक विशेषता के लिए यह सारे देश में प्रसिद्ध हो गये थे। लोग बताते हैं कि इनमें फकीरों अथवा साधुओं की सी सरल प्रकृति थी और यह एक मनमौजी जीव थे जो सदैव संगीत के रंग में डूबे रहते थे। इनकी चित्तवृत्ति अथवा भाव-दशा अपने ढंग की निराली थी और यह अपने मन की लहर अथवा चित्त की तरंग में खोये-से रहते थे। यह अपने संगीत की मस्ती में सदैव मस्त रहते थे और यह जिस भौतिक संसार में रहते थे उसकी सुध इनको नहीं रहती थी। इस कारण यह राजा और गरीब अथवा ऊँचे और नीचे का अन्तर नहीं जानते थे और इनके आचरण में किसी भी तरह की कृत्रिमता नहीं थी। यह सरल प्रकृति के मनमौजी जीव थे जिन्हें धन और सम्मान का भी कोई लोभ नहीं था। इसलिए इनके स्वभाव को खुशामद अथवा चापलूसी नहीं छू गई थी। ऐसे व्यक्ति के चरित्र मे स्वतः प्रवृत्ति होती है और उसके दैनिक जीवन के कार्यों में एक तरह की स्वतोगति होती है। उसे अपने आगे की खबर नहीं होती और वह अपनी मस्ती में ही डूबा रहता है। बन्दे अली खाँ इसी तरह के सच्चे और सरल और खुले-डुले जीव थे जिनके चरित्र में कोई बनावट नहीं थी। बहुत-सी बातें तो वह अपनी तरंग में कह जाते थे और वह इतने भोले और सीधे व्यक्ति थे कि उनको इसका ज्ञान भी नहीं होता था। यही कारण था कि लोग उन्हें एक सच्चा कलाकार मानते थे और उनकी किसी बात का बुरा नहीं मानते थे। इनके जीवन की बहुत-सी घटनायें अब कहानियाँ बन कर रह गयी हैं और लोग उन्हें बड़े चाव से अभी भी सुनाते हैं।

राजा, रईस, नवाब, वह किसी की भी परवाह नहीं करते थे और अपने आत्म-सम्मान को किसी दशा में भी नहीं खोते थे। ऐसे मनमौजी कलाकार का लोग बुरा भी नहीं मानते थे। इसको हम इनके चरित्र की स्वभाविक देन ही मानेंगे और उसका कोई स्वभाविक दोष नहीं मानेंगे। संगीत के क्षेत्र में ऐसी असाधारण स्फूर्ति वाले कलाकार बहुत कम हुए हैं।

सुना है कि यह किसी दरबार में अपनी वीणा बजाते-बजाते अपनी धुन में बाहर निकल गये और फिर रोके न रुके थे। ऐसे मनमौजी कलाकार पर क्या नियंत्रण लगाया जा सकता था? इनके बारे में एक दिलचस्प घटना और है। सुना है कि एक बार हैदराबाद के निजाम महबूब अली खाँ ने महल के एकांत में इनकी बीन सुनने का प्रबन्ध किया। जब बन्दे अली खाँ वहाँ पहुँचे तो निजाम ने उनसे पूछा "क्या बन्दे अली खाँ आप ही हैं?" इस प्रश्न के उत्तर में वह फौरन बोले, "जी हाँ, आप बन्दगाने अली हैं और मैं बन्दे अली हूँ।" इसके बाद इन्होंने जब अपनी बीन बजाई तो उस संगीत-गोष्ठी के सारे श्रोता उसे सुनकर मुग्ध हो गये। बजाते-बजाते जब उन्हें एक बार खाँसी आई तो उन्होंने सामने रखे हुए सोने के उगालदान में थूक दिया। संगीत, गोष्ठी के अन्त होने पर निजाम ने उस उगालदान को उनके साथ भेज दिया। बन्दे अली खाँ ने जब यह सुना तो बोले: "जिस उगालदान में मैंने थूका है वह मुझे नहीं चाहिए।" निजाम इस बात को सुनकर अप्रसन्न नहीं हुए परन्तु इसको उनकी मौज ही समझें। जैसे आजाद और मनमौजी जीव बन्दे अली खाँ थे वैसे सच्चे और सहृदय गुण-ग्राहक निजाम भी थे।

बन्दे अली खाँ के वीणा-वादन में उनके चरित्र की स्वतः प्रवृत्ति की झलक मिलती थी और उनकी संवेगी भावदशा का भी निरूपण था। उनके बाज में ऐसी मिठास थी कि मामूली श्रोता पर भी उसका प्रभाव पड़ता था। जिस मस्ती अथवा तन्मयता से वह अपनी बीन बजाते थे उसी तन्मयता और भावुकता से उनके श्रोता भी उसे सुनते थे और उसका आनन्द उठाते थे। वादक और श्रोता के बीच का यह पारस्परिकता-संबंध अपने ढंग का निराला था। संगीत में इस तरह की पारस्परिकता अब देखने में नहीं मिलती। जब बन्दे अली खाँ स्वरों के भावुक प्रवाह में डूब जाते थे तो वह अपने श्रोताओं को भी अपने वादन-संगीत की स्वतोगति के साथ ले चलते थे। यही कारण था कि उनकी बीन को सुनकर श्रोता आनन्द में खो जाते थे।

सुना है कि एक बार जब इनका वीणा-वादन सुनकर किसी राजा ने इन्हें एक सोने की ईंट भेंट की थी तो बाद में वहाँ से चलकर रास्ते में इन्होंने उसे भी लुटा दिया था। लोटा, बिस्तर और वीणा ही इनका सारा सामान हुआ करता था और मुहरों को भी ठीकरे ही समझते थे। यश और मान की भी इनको कोई चिंता नहीं थी। यह एक बहुत उच्चकोटि के सच्चे कलाकार थे जिन्हें संगीत का सच्चा तपस्वी कहा जा सकता था। इनके लिए संगीत एक पुण्य अथवा पवित्र साधना थी और यह अपने शिष्यों को

भी ऐसी प्रेरणा से प्रेरित करते थे। यही कारण था कि इनके बहुत से भक्त बन गये थे। जो रस इनके वीणा-वादन में था इसी प्रेम और स्नेह का रस इनके चरित्र में भी था। जब यह अपने देशाटन के लिए निकला करते थे तो वह उनकी तीर्थयात्रा बन जाती थी। जहाँ कला का प्रेम होता था और जहाँ कला के सच्चे भक्त होते थे वहीं उनका तीर्थ-स्थान बन जाता था। इसलिए जब यह पूना पहुँचे तो संगीत के भक्तों ने इन्हें हाथोंहाथ लिया। यह अपने महाराष्ट्रीय शिष्यों की भक्ति और उनके प्रेम के बोझ से ऐसे दब गये कि यहाँ पर ही बस गये और वहीं के हो गये। अभी भी पूना में पार्वती के पुल के पास पीर साहब की दरगाह में इनकी कब्र अब तक मौजूद है जिसका दर्शन करने संगीत के प्रेमी जाया करते हैं।

## बहराम खाँ

बहराम खाँ की गणना उन विद्वान संगीतज्ञों में होती थी जो अपनी विद्या में भरपूर थे और जिनमें अनोखा पाण्डित्य था। परन्तु वह उन बुद्धि-जीवी संगीतज्ञों में नहीं थे जो केवल संगीत की सैद्धान्तिक रूपरेखा ही से परिचित थे और जो केवल संगीत के किसी सिद्धान्तवाद अथवा मत ही के समर्थक थे। यथार्थ में उन्हें व्यावहारिक संगीत का बड़ा गहरा ज्ञान था और उन्होंने संगीत की उत्तम शिक्षा पाई थी। वह स्वयं एक कुशल ध्रुपद-गायक और संगीत-शिक्षक थे और उनको संगीत का कोरा सैद्धान्तिक अथवा शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं था। एक धुरन्धर गायक होने के अतिरिक्त उन्हें शास्त्रीय संगीत का गहरा व्यावहारिक ज्ञान भी था। उनको "उस्ताद बहराम खाँ" न कहकर "पंडित बहराम खाँ" कहकर भी पुकारा जा सकता था और ऐसे संबोधन को वह आपत्तिजनक न समझते। वह एक विद्वान संगीतज्ञ के पद को एक कलाकार की हैसियत अथवा प्रतिष्ठा से बहुत ऊँचा समझते थे। उनके मत के अनुसार एक विद्वान गायक अथवा वादक एक भावुक कलाकार से बहुत ऊँचा होता था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वह संगीत के वैज्ञानिक सिद्धान्त ही को मानते थे अथवा संगीत की ज्ञान मीमांसा ही का समर्थन करते थे। यदि वह संगीत की कोरी कल्पना ही करते और उन्हें उसका सैद्धान्तिक ज्ञान ही होता तो वह एक धुरन्धर गायक न कहलाते। यह मानने को हम तैयार हैं कि अपने ध्रुपद-गायन में वह अपनी तर्कबुद्धि ही का अधिक सहारा लेते थे और उसे एक भावुक कलाकार की तरह भावनापूर्ण नहीं बनाते थे। वह अपने ध्रुपद-गायन को संगीत के

ज्ञान का और अपने पाण्डित्य का साधन तथा प्रदर्शन मात्र समझते थे और भावात्मक अभिव्यक्ति से शायद दूर भागते थे अथवा वह उस पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाते थे। वह भावुकता के दास नहीं थे परन्तु वह शास्त्रीय संगीत की ही उच्चकोटि की व्याख्या करते थे। वह ध्रुपद शैली के विलक्षण अनुवादक और टीकाकार थे और उसकी मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करते थे। वह ऐसे संगीत की कल्पना नहीं कर सकते थे जिसमें न तो संगीत का गहरा ज्ञान हो और न जिसमें उसका तर्कनापरक अथवा बौद्धिक कला-कौशल ही हो। वह अपने को एक विद्वान ध्रुपद-गायक ही समझना चाहते थे और अपने ज्ञान ही से प्रेरित होना चाहते थे। सीमारहित भावुकता के उद्देश्य से वह कोसों दूर थे। उसको वह संगीत का अप्रधान गुण मानते थे। वह प्राचीन ध्रुपद-गायन के सैद्धान्तिक आधार ही का समर्थन करते थे और ध्रुपद को कला-प्रदर्शन का चमत्कार अथवा कौतुक नहीं बनाना चाहते थे। वह शास्त्रीय संगीत के गूढ़ ज्ञान को भावुकता से बहुत ऊँचा समझते थे। आधुनिक युग में हमें किसी हद तक इसका थोड़ा-बहुत समान्तर स्व० उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के सरोद-वादन में मिलता था। वह भी एक विद्वान सरोद-वादक थे और एक भावुक कलाकार नहीं थे। बहराम खाँ की तरह शायद वह भी संगीत में बुद्धिवाद का प्रतिवाद करते थे और एक भावुक कलाकार नहीं कहलाना चाहते थे।

परन्तु प्रश्न पूछा जा सकता है कि बहराम खाँ थे कौन? यह इमामबख्श नाम के एक गायक के सुपुत्र थे और इनका जन्म सहारनपुर जिले के अंबेठा नाम के गाँव में 1800 के लगभग हुआ था। इन्होंने अपने पिता से और अपने परिवार के बुजुर्गों से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। परन्तु छुटपन से ही इन्हें संगीत के अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत से भी विशेष प्रेम था। संगीत के शास्त्रों के अध्ययन करने के लिए हिन्दी अथवा संस्कृत का ज्ञान होना आवश्यक था। इन्होंने इस ज्ञान का सदुपयोग किया और संगीत के जो भी शास्त्र इन्हें उपलब्ध हो सके उन सबका इन्होंने मनन किया। यही कारण है कि इनके वंशज भी अपने गायन के आरम्भ में कभी-कभी संस्कृत के श्लोकों का उच्चारण करते थे। संगीत विद्या की यह प्रथा इस घराने में बहराम खाँ के काल से चली आई थी। परन्तु बहराम खाँ ने ऐसे ज्ञान का प्रचार एक रिवाज समझकर ही नहीं किया परन्तु उन्हें ऐसे ज्ञान में हार्दिक रुचि भी थी। संगीत के ग्रन्थों का अध्ययन करना वह अपना धर्म समझते थे। एक विद्वान गायक होकर ही वह जयपुर नरेश महाराजा रामसिंह

के दरबार में नियुक्त हो गये थे। यह दरबार और भी बड़े-बड़े चोटी के संगीतज्ञों से सुशोभित था। इस दरबार में कव्वाल बच्चों के घराने के प्रसिद्ध गायक मुबारक अली खाँ, रजब अली खाँ बीनकार, इमरत सेन सितारवादक, घघ्घे खुदाबख्श ख्याल गायक और हैदरबख्श और सदरुद्दीन ऐसे नामी संगीतज्ञ भी नियुक्त थे। ऐसे गुणियों का सत्संग बहराम खाँ की रुचि और उनकी प्रतिभा के लिए बहुत अनुकूल था। संगीत के ऐसे कला संचारित और ज्ञान-सुशोभित वातावरण में इनके ज्ञान और इनकी विद्या का पूर्ण विकास हुआ। गुणचर्या में इन्हें पहले से विशेष रुचि थी और इसलिए इस दरबार में इस तरह का विचार-विनिमय इनके लिए सुलभ हो गया। संगीतज्ञों के संपर्क में आकर बहराम खाँ ने ऐसी विद्या-गोष्ठी के स्तर को बहुत ऊँचा कर दिया और दरबार के संगीत का वातावरण भी बहुत कुछ बदल गया। इसका परिणाम यह भी हुआ कि दूर-दूर से और संगीतज्ञ और संगीत के विद्वान भी बहराम खाँ से संगीत के भिन्न-भिन्न विषयों पर वाद-विवाद करने आने लगे। महाराज रामसिंह भी गुणियों के ऐसे सत्संग को सराहते थे और प्रोत्साहित करते थे। जयपुर नरेश को संगीत से सच्चा प्रेम था। उनके इस प्रोत्साहन से जयपुर दरबार के संगीत की बहुत उन्नति हुई। उनका यह उदार संरक्षण अपने ढंग का निराला था। जयपुर के अतिरिक्त ग्वालियर, इन्दौर, अलवर, बड़ौदा, रामपुर और मैसूर ऐसी रियासतों में भी संगीत की बहुत चहल-पहल रही है और शास्त्रीय संगीत को बहुत मान्यता मिली है। यह रियासतें कला की पारखी मानी गयी हैं। जयपुर दरबार में भी प्रतिभासंपन्न संगीतज्ञों को मान-सम्मान के अतिरिक्त कला का भी अधिक प्रोत्साहन मिलता था। ऐसा न होता तो वहाँ ऐसे चोटी के गायकों और वादकों के साथ बहराम खाँ ऐसे विद्वान ध्रुपद-गायक का सत्संग न होता। उनकी विलक्षण प्रतिभा को ऐसे दरबार ही से प्रेरणा मिल सकती थी।

इस दरबार में बहराम खाँ अपने को संगीत का परम भक्त और उसका उद्धारकर्ता भी समझ सकते थे और ध्रुपद शैली की विजय घोषणा कर सकते थे। यहाँ पर वह शास्त्रीय संगीत की आत्मा में प्रविष्ट हो गये थे और उनका पौरुष-गर्व कभी परास्त नहीं हो सकता था। संगीत की अमृत संजीवनी ने उनकी आत्मा में प्रवेश किया था और यहाँ पर वह कर्तव्य-विमूढ़ नहीं बन सकते थे और न काठ के समान संज्ञाहीन ही बन सकते थे। ऐसे सत्संग में उनकी प्रतिभा का भी अधिक से अधिक विकास हुआ और उनकी गायन-कला को पूरी मान्यता मिली।

बहराम खाँ के बहुत से प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली शिष्य थे जिनको बहुत ख्याति प्राप्त हुई थी। उनमें से कुछ के नाम यह थे; भारत-विख्यात गायिका गोकीबाई जिसने पटियाला के अलीबख्श और फतह अली खाँ को संगीत की शिक्षा दी थी। फरीद खाँ पंजाबी, मौलाबख्श साँकड़े वाले और पटियाला के मियाँ कालू। अपने घराने में इन्होंने अपने सुपुत्र अकबर खाँ और सद्दू खाँ को और अपने भाई हैदर खाँ के पोते जाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाबन्दे खाँ को भी शिक्षा दी थी। इनके अतिरिक्त बन्दे अली खाँ ऐसे नामी बीनकार ने भी इनसे शिक्षा पाई थी। इन सब नामों को पढ़कर हम समझ सकते हैं कि बहराम खाँ किस विलक्षण प्रतिभा के संगीतज्ञ और संगीत के विद्वान थे। इनके वंशज का आज भी नाम है और इनकी शिष्य-परम्परा को बहुत मान-सम्मान मिला है।

बहराम खाँ के बारे में यह कहा जाता है कि जब यह महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में गये तो वह इनके पांडित्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बहराम खाँ को निम्नलिखित पदवी दी :—

"अल्लामा अबुले–अवामे–अरबाबे–इल्मे मौसीकी षट्शास्त्री, स्वर-गुरु, बृहस्पति, पाताल-शेष, आकाश–इन्द्र, पृथ्वी–मांडलिक ॥"

इसके पहले कि इनके वंशज के बारे में हम कुछ कहें हम यह बताना भी आवश्यक समझते हैं कि संगीत के उस सुनहरे युग में ध्रुपद और ख्याल का गहरा पारस्परिक सम्बन्ध था। जैसा पहले बताया जा चुका है, ख्याल गायकी को पहले आलाप ध्रुपद और होरी की शिक्षा भी दी जाती थी। ध्रुपद और ख्याल के सहयोग का सबसे अच्छा उदाहरण हमें बहराम खाँ और आगरा घराने के घग्घे खुदाबख्श की घनिष्ठ मित्रता में मिलता है। यह दोनों आपस में जिगरी दोस्त थे और इनकी दाँत काटी रोटी थी। दोनों एक दूसरे के साथ जयपुर दरबार में भी नियुक्त थे। इन दोनों में ऐसी घनिष्ठ मित्रता थी कि इन्होंने आपस में पगड़ी भी बदली थी। आगरा घराने के वंशज और बहराम खाँ के वंशज इस बात से परिचित हैं। बहराम खाँ और घग्घे खुदाबख्श के जीवन की बहुत-सी घटनायें मशहूर हैं। यह दो जिगरी दोस्त आपस में एक-दूसरे से झगड़ते भी थे और एक दूसरे को मनाते भी थे। सुनते हैं जब आगरे में इन दोनों का कभी झगड़ा हो जाता था तो दो-एक दिन तक यह एक-दूसरे से नहीं बोलते थे और फिर यह देखा जाता था कि यह दोनों बेचैन होकर अपनी-अपनी पीनस (पालकी) में बैठकर एक दूसरे की तरफ जाते थे और अन्त में इनका मिलन हो जाता था और इनके झगड़े का

अन्त हो जाता था। यह भी सुना है कि जब एक गाता था दूसरा उस पर व्यंगात्मक आलोचना के छींटे कसता था। परन्तु यह एक तरह का बनावटी नाटकीय अभिनय होता था और दोनों फिर एक दूसरे से स्नेहपूर्वक मिल जाते थे और एक हो जाते थे। इनकी बातचीत में व्यंग, आलोचना और फबती का पुट भी होता था परन्तु इन्हें कोई एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकता था। घघ्घे खुदाबख्श के बड़े लड़के वयोवृद्ध उस्ताद गुलाम अब्बास खाँ जिनका देहान्त एक सौ बीस वर्ष की अवस्था में हुआ था और जिनको इस शताब्दी के पहले भाग में कुछ लोगों ने देखा था और उनके सम्पर्क में आये थे, बहुत सी ऐसी दिलचस्प घटनाओं का वर्णन करते थे। वह यह भी बताते थे कि जब वह बालक थे तो उन्होंने अपने घराने के और लड़कों के साथ बहराम खाँ का गाना भी कभी-कभी सुना था जिसे वह समझ न पाते थे परन्तु सुनकर हँस पड़ते थे और उसे अपने विनोद का साधन मानते थे।

बहराम खाँ और घघ्घे खुदाबख्श की मित्रता से पता चलता है कि उस जमाने में संगीत की परम्परा हर तरह से अविभाज्य थी और उसका विभाजन ध्रुपद और ख्याल की प्रतिकूल शैलियों में नहीं हुआ था। इसी को हम अपने संगीत की आदर्श संकल्पना मानेंगे। संगीत शैलियाँ कुछ भी रही हों परन्तु उसके एकता सिद्धान्त का खण्डन कभी नहीं हुआ। हम इस बात पर प्रकाश डाल चुके हैं कि घरानेदार ख्याल गायकी ध्रुपद शैली के ऋण को स्वीकार करती थी और उसके गुणों से लाभ भी उठाती थी। घरानेदार ख्याल गायकों को ध्रुपद का व्यावहारिक ज्ञान होता था और उनकी प्रारम्भिक शिक्षा आलाप ध्रुपद और होरी ही से आरम्भ होती थी। प्रतिष्ठित ख्याल के घरानों ने इसी आदर्श को अपने सामने रखा और उसका पूरा पालन किया। यह भी बता चुके हैं कि आगरा घराने के पूर्वज और मार्गदर्शक घघ्घे खुदाबख्श आलाप, ध्रुपद और होरी प्राचीन शैलियों से भली-भाँति परिचित थे। यह सब ध्यान में रखते हुए हमें आश्चर्य नहीं होता कि आधुनिक युग के दो अलग-अलग प्रतिष्ठित घरानों के आरम्भकर्ता और मार्गदर्शक आपस में ऐसे घनिष्ठ मित्र थे। यह दोनों संगीत की इस एकता-सूत्र से बंधे हुए थे। इस तरह इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध, दोनों का स्नेह और दोनों की सच्ची मित्रता, इन सबको भी इनके संगीत के पारस्परिकता-सम्बन्ध ने पुष्ट किया था। संगीत के इस पुनीत एकता सिद्धान्त ने भी इनके पारस्परिक स्नेह को प्रोत्साहित किया था। यह दोनों गायक ध्रुपद और ख्याल शैलियों के सामंजस्य और उनके मौलिक संश्लेषण के मानो दो

उज्वल प्रतीक थे। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास में कदाचित ऐसा दूसरा उदाहरण और नहीं है। यह दोनों गायक अपने-अपने घराने के प्रथम अन्वेषक और मार्गदर्शक थे। अभी इन दोनों घरानो की शिष्य-परंपरा इन दोनों अद्वितीय गायकों को अपना पूर्वज मानती है। बहराम खाँ का घराना और घग्घे खुदाबख्श का घराना संगीत की प्राचीन और अटूट परम्परा की सुनहरी कड़िया हैं।

## बहराम खाँ के वंशज

### जाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाबन्दे खाँ

यह दोनों गायक बहराम खाँ के घराने के अद्वितीय गायक माने गये हैं। यह बहराम खाँ के वंशज थे और सारे देश में इनकी जोड़ के दूसरे और ध्रुपद-गायक नहीं थे। यह बहराम खाँ के भाई हैदर खाँ के पोते थे और इनके पिता का नाम मुहम्मद ज़ान खाँ था। यह दोनों सगे भाई थे और इनको संगीत की शिक्षा साथ-साथ मिली थी। इनको अपने घराने ही में ध्रुपद और होरी की शिक्षा मिली थी। बहराम खाँ ने इन होनहार बालकों को मियाँ आलमसेन का शिष्य बनवा दिया था जिनसे इन्हें आलाप की घरानेदार तालीम (शिक्षा) मिली थी। उत्तम शिक्षा पाने के बाद और साथ-साथ कड़ा परिश्रम करके यह दोनों भाई भारतवर्ष के सबसे प्रसिद्ध ध्रुपद गायक बन गये थे।

आधुनिक युग में और इस शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों में यह दोनों भारतवर्ष के विद्वान और बेजोड़ ध्रुपद-गायक माने जाते थे। यह कहना भी ठीक होगा कि बहराम खाँ के बाद यह दोनों ही इस प्रतिष्ठित घराने के उत्तराधिकारी और मार्गदर्शक माने गये। बहराम खाँ के पद चिन्हों पर चलकर इन दोनों ने भी संगीत का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया और ध्रुपद शैली की अनुपम व्याख्या की। जैसा हम पहले कह चुके हैं इस बात को हम फिर दुहरायेंगे कि प्रत्येक प्रथम श्रेणी के घराने में दो-तीन गायक अथवा वादक ही ऐसे होते हैं जिनसे उस घराने की विलक्षण प्रतिभा जानी जाती है। किसी भी घराने में औसत अथवा सामान्य बुद्धि वाले गायक अथवा वादक तो बहुत से होते हैं जो उस घराने की गायकी अथवा उसके बाज का प्रदर्शन अपने-अपने ढंग से करते हैं। इनमें से जो बहुत मामूली बुद्धि अथवा योग्यता रखते हैं, कभी-कभी अपने घराने की शैली का मिथ्या निरूपण अथवा विकृतीकरण भी करते हैं। शायद ऐसा कोई गायक अथवा वादक

शिक्षा के अभाव के कारण अथवा प्रखर बुद्धि न रख कर अपनी गायकी अथवा अपने बाज को उपहास चित्र के समान बना देता है। फिर भी कुछ लोग जो गायकी अथवा बाज के महत्व को नहीं समझते, ऐसे किसी गायक अथवा वादक का सम्बन्ध किसी नामी घराने से जोड़ते हैं। कभी-कभी हम समाचार-पत्रों में भी संगीत की ऐसी टीका पढ़ते हैं, जब किसी दैनिक समाचार पत्र का संवाददाता किसी ऐसे कलाकार के गाने में पटियाला गायकी की खोज करता है अथवा किसी सितार वादक के सितार-वादन में सेनिया बाज की झलक देखता है परन्तु घरानेदार गायकी अथवा बाज के सम्बन्ध में ऐसे उदाहरण अपवाद ही माने जायेंगे।

यह देखा गया है कि किसी सम्मानित और सुप्रसिद्ध घराने में दो, तीन अथवा चार गायक अथवा वादक ही ऐसे होते हैं जो उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करते हैं और उसकी शैली की भी बेजोड़ व्याख्या करते हैं। बहराम खाँ के घराने और घघ्घे खुदाबख्श के आगरा घराने की चर्चा करते हुए हम यह कह सकते हैं कि जैसा आगरा घराने में घघ्घे खुदाबख्श के बाद गुलाम अब्बास खाँ, नत्थन खाँ, कल्लन खाँ और फैय्याज खाँ का बड़ा नाम रहा है, उसी तरह बहराम खाँ के घराने में उनके बाद जाकिरुद्दीन खाँ, अल्लाबन्दे खाँ और उनके लड़के जियाउद्दीन खाँ और नसीरुद्दीन खाँ का नाम हुआ था। और जैसे बहराम खाँ के शिष्यों में गोकी बाई और बन्दे अली खाँ बीनकार का नाम हुआ था, उसी तरह आगरा घराने की शिष्य-परम्परा में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध ख्याल गायक पंडित भास्कर राव बखले का भी नाम हुआ था। परन्तु बहराम खाँ के बाद जैसी ख्याति जाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाबन्दे खाँ को मिली थी वैसी घराने के और किसी गायक को नहीं मिली। इसी तरह हम यह भी कह सकते हैं कि आगरा घराने में घघ्घे खुदाबख्श के बाद जैसी प्रतिष्ठा फैयाज खाँ को आधुनिक काल में मिली वैसी घराने के और किसी गायक को कभी नहीं मिली।

जाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाबन्दे खाँ को अपने जीवन-काल में बहुत मान मिला और उन्होंने ख्याति भी बहुत पाई। बड़ी-बड़ी रियासतों में उन्होंने मान-सम्मान पाया और उनकी संगीत-कला को उचित आदर मिला। जब यह दोनों तरुण गायक थे तभी से इनके गाने की धूम मच गयी थी। सामान्य श्रोतागण और संगीतज्ञ दोनों इनके आलाप और ध्रुपद को सुनकर मुग्ध हो जाते थे। रईसों, राजाओं और महाराजाओं ने इन्हें हाथोंहाथ लिया और पुरस्कार और धन देने के अतिरिक्त इनका बहुत आदर सत्कार

भी किया। राजस्थान की रियासतों ने इनको बहुत सम्मानित किया। जब उदयपुर-नरेश महाराणा सज्जन सिंह ने इन्हें सुना तो इनको अपने दरबार में नियुक्त कर दिया और वहाँ पर इन दोनों का बहुत आदर-सत्कार होता रहा। जयपुर, अलवर और किशनगढ़ ऐसी रियासतों से भी इन्हें बहुत से इनाम मिले और इनका बहुत आदर किया गया। अलवर के राजा मंगल सिंह की हार्दिक इच्छा थी कि वह दोनों भाई अलवर जाकर रहने लगें। अल्लाबन्दे खाँ तो 1924 में अलवर दरबार में चले गये थे परन्तु जाकिरुद्दीन खाँ ने उदयपुर कभी नहीं छोड़ा और उनका स्वर्गवास वहीं हुआ।

दो विशेष अवसरों पर इन दोनों गायकों ने अपनी प्रतिभा का विलक्षण प्रदर्शन किया था। पहला अवसर तो वह था जब बड़ौदा-नरेश महाराजा सियाजी राव ने 1915 में एक संगीत-सम्मेलन का आयोजन किया था जिसमें गुण-चर्चा को भी विशेष स्थान मिला था। पंडित देवल और मिस्टर क्लेमेंट नाम के संगीत के दो विद्वानों ने एक ऐसा हारमुनियम बजाया था जिस पर हिन्दुस्तानी संगीत की बाईस श्रुतियाँ निकल सकती थीं। परन्तु इन दोनों गायकों ने यह सिद्ध कर दिया कि यह बात असंभव थी और हारमोनियम ऐसे विदेशी साज में बारह स्वरों के अलावा श्रुतियों के लिय कोई गुंजाइश नहीं थी। उन्होंने गाकर यह भी सिद्ध कर दिया कि गला छोड़कर हारमोनियम इस बात का दावा नहीं कर सकता था कि उस पर श्रुतियाँ अथवा स्वरों की अति सूक्ष्म तर्जें भी निकाली जा सकती थीं। इन दोनों भाइयों ने गाकर यह बताया कि गले से ही यह श्रुतियाँ निकल सकती हैं और बाजे में केवल बारह स्वर होते हैं। उनहोंने गाकर यह भी सिद्ध कर दिया कि ऐसे किसी हारमोनियम का आविष्कार करना निरर्थक था जिस पर बाईस श्रुतियाँ निकल सकती थीं। जब इन दोनों गायकों ने ऐसे दावे अथवा ऐसी चुनौती का खण्डन किया तो सबको यह बात माननी पड़ी। फलस्वरूप ऐसे अविष्कार को निरर्थक वार्ता ही का पद दिया गया। यह सच था कि इन दोनों गायकों ने उत्तम शिक्षा पाकर अपने कण्ठ की ऐसी निरन्तर साधना की थी कि इनके गले से श्रुतियों का प्रदर्शन हो सकता था। जब इन्होंने ऐसा करके दिखा दिया तो इनके पाण्डित्य की सारे संगीत सम्मेलन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की और इनको हर प्रकार से सम्मानित किया गया। यह घटना आधुनिक संगीत के इतिहास में बड़ा महत्व रखती है।

दूसरे विशेष अवसर पर जब इनकी गायन-कला को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वह था जब यह दोनों भाई लखनऊ के अखिल-भारत-संगीत-सम्मेलन में

1924-25 में गये थे। इस सम्मेलन में संगीत के माने हुए विद्वान सम्मिलित हुए थे जिनमें स्व० भातखण्डे जी का नाम सबसे पहले आता था। पाठक अपने मन में इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि पचास वर्ष पहले संगीत-संसार में कैसी चहल-पहल थी और उस जमाने में कैसे-कैसे अनोखे गायक और वादक इस देश में थे। वह युग अब फिर लौट कर नहीं आ सकता। रामपुर के फिदा हुसैन ऐसे अद्वितीय सरोद-वादक भी इस संगीत-सम्मेलन में आये थे। जिन उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को बाद में प्रथम श्रेणी का सरोद-वादक माना गया था, वह इस संगीत सम्मेलन में एक वाइलिन-वादक की हैसियत ही से प्रसिद्ध हुए थे और उनको वाइलिन-वादन पर ही प्रथम पुरस्कार मिला था। वह मैहर बैंड के निदेशक होकर आये थे। बनारस के बीरु मिश्र और लखनऊ के आबिद हुसैन ऐसे तबला-वादक भी इस संगीत-सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। बड़ौदा के फैयाज ने भी इस संगीत-सम्मेलन को सुशोभित किया था और भी अच्छे-अच्छे कलाकार यहाँ पर आये थे जिन सबके नाम यहाँ नहीं गिनाये जा सकते। जिस संगीत-सम्मेलन में ऐसे-ऐसे विद्वान और संगीतज्ञ उपस्थित थे वहाँ जाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाबन्दे खाँ ने अपने आलाप और ध्रुपद का विलक्षण प्रदर्शन किया। इन दोनों भाइयों के पीछे बैठ कर अल्लाबन्दे खाँ के बड़े लड़के नसीरुद्दीन खाँ तंबूरा छेड़ रहे थे और गाने का थोड़ा-बहुत साथ भी कर रहे थे। इस संगीत-सम्मेलन में यह दोनों प्रतिष्ठित भाई ऐसा प्रभावोत्पादक गाना गाये जिसमें विद्वत्ता और कला-चमत्कार का ऐसा अनोखा सम्मिश्रण था कि उत्तर प्रदेश के गवर्नर विलियम मैरिस ने अपने हाथों से इन्हें एक स्वर्ण पदक प्रदान किया था। इस अवसर पर भी इन दोनों ने अपने घराने की ध्रुपद शैली की प्रतिष्ठा स्थापित की थी और यह सिद्ध किया था कि वह अपने ढंग के अद्वितीय गायक थे।

इसके पहले बनारस में जिस संगीत-सम्मेलन का आयोजन किया गया था उसमें भी यह दोनों गायक सम्मिलित हुए थे। भातखण्डे जी के आयोजित किये गये सारे संगीत-सम्मेलनों में यह दोनों गायक भाग लेते थे।

अपने जीवन-काल के अंत तक इन दोनों ध्रुपद गायकों को बहुत मान-सम्मान मिला था। बनारस के महामंडल ने अल्लाबन्दे खाँ को 'संगीत-रत्न' की उपाधि दी थी। इनका स्वर्गवास 1925 में हुआ। विद्वानों का विचार था कि दोनों भाइयों में जाकिरुद्दीन खाँ अधिक विद्वान और प्रतिभाशाली

गायक थे। कभी-कभी गाते-गाते हँसी में वह अपने छोटे भाई अल्लाबन्दे खाँ पर व्यंगात्मक आक्षेप करते थे और हँस कर कहते थे कि शायद उन्हें अपनी सन्तान बढ़ाने ही में अधिक दिलचस्पी थी।

जाकिरुद्दीन खाँ के सुपुत्र जियाउद्दीन खाँ को भी अपने पिता से बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी और वह बहुत अच्छा गाते थे। लोगों की राय थी कि अपने घराने में वह अपने चचेरे भाइयों से भी अच्छा गाते थे। जहाँ तक ख्याति का सम्बन्ध था अल्लाबन्दे खाँ के सबसे बड़े लड़के नसीरुद्दीन खाँ का बहुत नाम हुआ और वह संगीत के मैदान में पहले उतर आये थे। जियाउद्दीन खाँ ने ऐसा नहीं किया था और उनका देहान्त जल्दी हो गया। अल्लाबन्दे खाँ के चारों लड़के—नसीरुद्दीन, रहीमुद्दीन, इमामुद्दीन और हुसैनुद्दीन (तानसेन पाण्डे), अपने-अपने ढंग से विद्या और गुण से सपन्न थे। नसीरुद्दीन खाँ और रहीमुद्दीन खाँ के बारे में हम अपनी दूसरी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी संगीत' के रत्न' में खुलासा वर्णन कर चुके हैं। हुसैनुद्दीन खाँ अथवा 'तानसेन पाण्डे, भी बड़े अच्छे गायक थे और इमामुद्दीन खाँ की तरह इनमें भी बड़ी समझ-बूझ थी। नसीरुद्दीन खाँ के बाद रहीमुद्दीन खाँ ही इस घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक माने जाते थे। नसीरुद्दीन खाँ के लड़के नसीरुमोइनुद्दीन और नसीर अमीनुद्दीन (डागर बन्धु) का भी कुछ वर्षों पहले नाम हुआ था। अब इनके छोटे भाई और रहीमुद्दीन के सुपुत्र ही इस घराने के तरुण और होनहार गायक माने जाते हैं।

इनके अतिरिक्त बहराम के सुपुत्र सआदत अली खाँ उर्फ सद्दू खाँ भी बड़े विद्वान गायक थे और उनके लड़के रियाजुद्दीन खाँ को भी अच्छी ख्याति मिली थी। सब की चर्चा करते हुए हम बहराम खाँ के भांजे अब्बन खाँ को भी नहीं भूल सकते जिनका देहान्त सहारनपुर में हुआ था। यह भी बहराम खाँ की तरह संगीत के विद्वान और मर्मज्ञ थे और इनके गाने में भी विद्वत्ता की पूरी झलक थी।

7

# जयपुर का घराना

जैसा हम पहले बता चुके हैं, इस देश की कुछ रियासतें विशेष रूप से संगीत के क्षेत्र में प्रमुख रही हैं। यह वह रियासतें थी जिन्हें केवल संगीत से प्रेम ही नहीं था परन्तु इन्होंने संगीत की उन्नति के लिए भी बहुत कुछ किया। इनमें से कुछ राजा और महाराजा ऐसे भी थे जिन्होंने प्रसिद्ध गायकों अथवा वादकों से संगीत सीखा था और उन्हें संगीत का बड़ा अच्छा ज्ञान था। क्या इतिहास हमको यह बात नहीं बताता है कि मुगल राज्य का वैभवशाली सम्राट् अकबर संगीत, कला, साहित्य और दर्शन इत्यादि से कितना प्रेम करता था? वह एक बड़ा भावुक और सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति था विद्या और ज्ञान का सदैव मनन करता था। अकबर कला का पारखी था और उसने तानसेन ऐसे महान गायक को अपने दरबार में नियुक्त करके इस बात को सिद्ध किया कि उसके मन में भारतीय संगीत के लिए कितनी बड़ी श्रद्धा थी और संगीत में उसको कितना आनन्द मिलता था। वह तानसेन को अपना गुरु मानता था और उसके संगीत के मूल्य को जानता था। हम इस बात को काल्पनिक घटना नहीं मान सकते कि बादशाह अकबर भेष बदल कर तानसेन के साथ उसके पूज्य गुरु हरिदास स्वामी डागुर का दर्शन करने गया। और यह भी सच हो सकता है कि अकबर ने तानसेन के गुरु से थोड़ी बहुत बात-चीत भी की हो। जब अकबर किसी महान सूफी संत अथवा महात्मा से मिलने जा सकता था तो यह बात क्यों संदिग्ध अथवा अनिश्चित मालूम पड़ती है कि वह तानसेन के गुरु से भी मिला? प्राचीन काल में अकबर ऐसे सहृदय शासक दो-चार और भी थे। मुगल शासकों में मुहम्मद शाह (रंगीले)

और बहादुर शाह 'जफर' भी संगीत और काव्य के प्रेम के लिए प्रसिद्ध थे। इस.काल के बहुत पहले ग्वालियर का राजा मान सिंह तोमर संगीत का विद्वान माना गया था और उसका ग्रन्थ 'मान कुतूहल' इस बात का प्रमाण था। देहली का अंतिम मुगल सम्राट् बहादुर शाह 'जफर' भी अपने दरबारी गायक तानरस खाँ को अपना गुरु मानता था। इसी तरह अवध के आखिरी बादशाह वाजिद अली शाह भी कथक नाच के प्रथम अन्वेषक ठाकुर प्रसाद को अपना गुरु मानता था। ऐसे और भी उदाहरण इस संबन्ध में दिये जा सकते हैं। रीवाँ-नरेश ने भी तानसेन को अपना गुरु माना था।

यह मानी हुई बात है कि कुछ रियासतें अपने संगीत के प्रेम के लिए बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। जयपुर ऐसी रियासतों में प्रमुख मानी गई है। जिस तरह ग्वालियर, इंदौर, अलवर, उदयपुर, भरतपुर, बड़ौदा, देवास और मैसूर ऐसी रियासतों का संगीत से विशेष सम्बन्ध रहा है, उसी तरह बनारस, लखनऊ, रामपुर और जयपुर राज्य भी संगीत के केन्द्र माने जाते थे। इन रियासतों में बड़े-बड़े प्रतिभा सम्पन्न गायक और वादक हुए हैं। इन बड़ी रियासतों के अतिरिक्त कुछ छोटी रियासतों का भी संगीत के क्षेत्र में काफी नाम हुआ है। दतिया के भारत-विख्यात पखावज-वादक कुदऊ सिंह भी दतिया ऐसी रियासत का नाम सारे देश में चमका गये हैं। सेनिया घराने के ध्रुपद गायक और रबाब-वादक मुहम्मद अली खाँ ने गिद्धोर ऐसी रियासत को सारे भारतवर्ष में मशहूर कर दिया था। तानसेन ने रीवाँ ऐसी रियासत को अमर बना दिया था। मशहूर सरोद-वादक अलाउद्दीन खाँ ने मैहर को हिन्दुस्तान भर में मशहूर कर दिया था। आधुनिक युग में बंगाल की महिषादल और बिहार की बनैली ऐसी छोटी रियासतों ने भी संगीत के क्षेत्र में अपने संगीत के लिए ख्याति पाई है।

जयपुर के महाराजा रामसिंह के दरबार में भारतवर्ष के नामी गायक और वादक नियुक्त थे जिनकी थोड़ी-बहुत चर्चा हम पहले कर चुके हैं। परन्तु इस प्रसंग में यह बताना आवश्यक है कि कुछ बड़ी और छोटी रियासतें कुछ विशेष संगीतज्ञों ही से सम्बन्धित रही हैं। जैसे कोल्हापुर ऐसी रियासत अल्लादिया खाँ ऐसे धुरन्धर गायक से सम्बन्धित रही है, उसी तरह देवास भी रजबअली खाँ के नाम से मशहूर हो गया है। लोग अभी भी 'इन्दौर के नसीरुद्दीन', 'उदयपुर के जाकिरुद्दीन खाँ' और 'अलवर के अल्लाबन्दे खाँ' कह कर इन प्रसिद्ध ध्रुपद गायकों की चर्चा करते हैं। पिछले वर्षों में खुर्जे के उस्ताद अलताफ हुसैन खाँ भी बाद में 'बनैली के अलताफ हुसैन, कहलाने

लगे थे। लोग अब तक 'गौरी पुर के इनायत खाँ' सितार-वादक को याद करते हैं। इसी तरह उत्तर प्रदेश में बहुत से लोग 'खजूर गाँव के अब्दुल गनी खाँ' सितार-वादक को भी याद करते हैं। परन्तु इन छोटी रियासतों में एक ऐसी रियासत भी थी जिसके शासक स्वयं एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे और उनका सारे देश भर में नाम था। यह थे बिलसी (बदाऊँ के पास) के नवाब छम्मन साहब (सआदत अली खाँ) जो नवाब हैदरअली के सुपुत्र थे। नवाब छम्मन साहब अपने जमाने के बेजोड़ सुरसिंगार-वादक थे और इन्होंने अपने पिता से संगीत की शिक्षा पाई थी। नवाब हैदरअली खाँ मशहूर सेनिया घराने के माने हुए सुरसिंगार-वादक बहादुर हुसैन के शिष्य थे और संगीत के मर्मज्ञ थे। छम्मन साहब के मित्रों में स्व० भातखण्डे जी और राजा नवाब अली ऐसे विद्वान थे। भैया साहब गनपत राव भी इनके परम मित्र थे और वह बहुत काल इनके साथ बिलसी में रहे। छम्मन साहब के सुरसिंगार के आगे कभी-कभी रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ की वीणा भी फीकी पड़ जाती थी। वह अपने ढंग के बेजोड़ सुरसिंगार-वादक थे और उनका देहांत जल्दी हो गया था।

परन्तु कुछ ऐसी भी रियासतें हैं जिनका सम्बन्ध घरानों से भी रहा है। ग्वालियर के प्रसिद्ध ख्याल गायकों के घराने की चर्चा हम कर चुके हैं। देहली के दरबारी गायक तानरस खाँ के घराने का संक्षेप वर्णन भी हम कर चुके हैं। जयपुर भी उन प्रसिद्ध रियासतों में थी जहाँ व्यावहारिक संगीत की परम्परा का प्रगतिशील विकास हुआ था। यहाँ पर भी भिन्न-भिन्न संगीतज्ञों के कला-कौशल ने संगीत की विभिन्न शैलियों का पोषण किया था। वीणा, सितार, ध्रुपद और ख्याल की शैलियाँ यहाँ के कल्पनामय और भावनापूर्ण वातावरण में आजादी से फली और फूलीं। वाद्य संगीत और कंठ संगीत दोनों को यहाँ पर प्रेरणा मिली और जयपुर दरबार के उत्साह ने संगीतज्ञों को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया। संगीत के ऐसे अनोखे सत्संग में जयपुर घराने का जन्म हुआ जिससे बहुत से संगीतज्ञ अलग-अलग घरानों से सम्बन्धित थे। कदाचित यह कहना गलत न होगा कि जयपुर घराना ही एक ऐसा घराना था जिसके अंतर्गत गायक और वादक दोनों थे। बहराम खाँ की ध्रुपद शैली और घग्घे खुदाबख्श की ख्याल शैली के साथ मुबारक अली खाँ की कव्वाल बच्चों की ख्याल शैली और रजब अली खाँ के वीणा-वादन की वाद्य शैली और इमरत सेन के सितार-वादन की सेनिया वाद्य शैली— यह सब एक दूसरे के साथ मिल गयी थी। संगीत की शैलियों के इस सुन्दर

गुलदस्ते को ही हम जयपुर घराने की विशेषता कह कर पुकार सकते हैं। इन सब शैलियों के साथ जयपुर के ख्याल गायक मुहम्मद अली खाँ के घराने की शैली भी मिल गयी थी। इस तरह सोने पर सुहागा हो गया था। जयपुर घराना संगीत के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित और सम्मानित घराना माना गया था जिसका बहुत जबरदस्त प्रभाव आधुनिक युग के संगीत पर पड़ा था। इसके पहले कि इस सम्बन्ध में हम और कुछ कहें, हमें यह याद रखना चाहिए कि आधुनिक युग के सबसे प्रसिद्ध संगीत के विद्वान स्व० भातखण्डे जी के पूज्य गुरु जयपुर के गायक मुहम्मद अली खाँ थे।

इस घराने का वर्णन हम जयपुर के प्रसिद्ध वीणा-वादक रजब अली खाँ से आरम्भ करेंगे। हम पिछले अध्याय में मशहूर बीनकार बंदे अली खाँ के बारे में लिख चुके हैं। हम यह भी जानते हैं कि वह सहारनपुर जिले के रहने वाले थे और उनके पूर्वज भी वहाँ के रहने वाले थे। परन्तु शायद हम उन्हें किसी विशेष स्थान से सम्बन्धित नहीं कर सकते। वह एक स्वतन्त्र और मनमौजी कलाकार थे और जहाँ कहीं उनके मन की उमंग उन्हें ले जाती थी वहीं वह चले जाते थे और घूमने-फिरने ही में उन्हें बहुत हार्दिक रुचि थी। वह सरल प्रकृति के जीव थे और उनका चरित्र फकीरों अथवा साधुओं का—सा था। जहाँ तक वीणा-वादन का सम्बन्ध था वह अपने ढंग के निराले बीनकार थे और वीणा बेजोड़ बजाते थे। उनकी बीन में कला और विद्वत्ता दोनों का समावेश था। श्रोता उनके भक्त बन जाते थे और संगीत से विशेष प्रेम रखने वाले उनके शिष्य बन जाते थे।

## रजबअली खाँ

दूसरे वीणा-वादक भी जिनका वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं भारतवर्ष के एक बड़े प्रसिद्ध बीनकार थे और जयपुर राज्य से सम्बन्धित थे। यह भी एक माने हुए चोटी के बीनकार थे और यह एक तरह से आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ वीणा-वादक माने गये हैं। वाद्य संगीत की भिन्न-भिन्न शैलियों को देखते हुए और उसकी अलग-अलग निराली विशेषताओं का अवलोकन करते हुए हम इन दो प्रसिद्ध और बेजोड़ बीनकारों की तुलनात्मक समीक्षा करना व्यर्थ और निरर्थक समझते हैं। संगीत की शैलियों में संगीत के तरह-तरह के पुष्पों की अलग-अलग सुगंध होती है और सब का रसात्मक आनन्द अलग-अलग ढंग का होता है। यदि गायन अथवा वादन में गायकों और वादकों के व्यक्तित्व की छाप होती है तो यह उचित नहीं है कि हम उनकी मनमानी

तुलना करें और उनके गुणों की छानबीन करें। इस तरह के विश्लेषण में हम संगीत का वास्तविक आन्नद खो बैठते हैं हम इतना ही कहेंगे कि जैसे बन्देअली खाँ अपने ढंग के निराले बीनकार थे, उसी तरह रजब अली भी अपनी तरह के अद्वितीय वीणा-वादक थे। दोनों बेजोड़ कलाकार थे।

यदि वाद्य संगीत का कोई मननशील विद्यार्थी हमसे यह प्रश्न पूछे कि रजब अली कौन थे तो इस प्रश्न का उत्तर हम संक्षेप में देंगे। रजबअली खाँ यथार्थ में अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे और प्रसिद्ध संगीतज्ञ इनायत हुसैन खाँ तामझामिये के शिष्य थे। बीन की शिक्षा इन्होंने अंबैठा के हसन खाँ से प्राप्त की थी। इसी अंबैठा नाम के स्थान में प्रसिद्ध ध्रुपद गायक बहराम खाँ का भी जन्म हुआ था। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् रजब अली खाँ अपने रियाज में जुट गये और इन्होंने ऐसी घोर तपस्या की कि यह एक बेजोड़ वीणा-वादन बन गये। अपने जीवन-काल में और अपने जमाने में इनकी जोड़ बीनकार दूर-दूर तक नहीं मिलते थे। सच तो यह है कि किसी अपूर्व बुद्धि और प्रतिभा वाले वादक अथवा गायक को रियाज भी बहुत फलता है। निरन्तर अभ्यास शिक्षा में चार चाँद लगा देता है। वास्तव में रजब अली खाँ बड़ी अनोखी प्रतिभा के वादक थे और रियाज करके कुछ समय के पश्चात् ही वह इस देश के अद्वितीय बीनकार बन गये थे। पुराने गायकों और वादकों से यह भी सुना है कि यह कंठ संगीत भी बहुत अच्छा जानते थे और यह गले से भी बहुत सुरीले थे। इन्हें गाने में केवल स्वाभविक रुचि ही नहीं थी परन्तु यह गाना जानते थे और गायकों की तरह गाते थे। यह गले से सुरीले ही नहीं थे परन्तु गायन-कला से भी भली-भाँति परिचित थे। हम ऐसे वादकों का तो उदहरण दे सकते हैं जो गले से सुरीले थे परन्तु स्वयं गायक नहीं थे। ग्वालियर के प्रसिद्ध सरोद-वादक स्व० उस्ताद हाफिज अली खाँ एकांत की महफिल में ठुमरी और दादरा के बोलों को कभी-कभी बड़े सुरीले ढंग से कहते थे। परन्तु रजब अली खाँ गायकों का-सा गाना भी गा सकते थे यदि वह बीन न बजाते तो शायद वह गायक ही बन जाते। इसको हम कुदरत की देन ही मानेंगे कि रजब अली खाँ एक नामी बीनकार होने के अतिरिक्त गायन-कला के भी मर्मज्ञ थे।

यह जयपुर राज्य में नियुक्त हो गये थे और जयपुर—नरेश इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे और इनसे बीन सीखते थे। हमें याद आता है की रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ भी सेनिया घराने के प्रसिद्ध बीनकार वजीर खाँ को अपना पूज्य गुरु मानते थे और उनका हर तरह से बहुत आदर-

सत्कार करते थे। रजब अली खाँ, वजीर खाँ के पिता अमीर खाँ और बहादुर हुसैन खाँ सुरसिंगार-वादक के समकालीन थे और जयपुर में इनका बड़ा सम्मान होता था। महाराजा रामसिंह ने इन्हें जागीर दे रखी थी और रहने के लिए एक बड़ी हवेली भी दी थी। सुना जाता है कि रजब अली खाँ जब चाहते थे पालकी पर बैठ कर महल के अंदर जा सकते थे और इन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता था। और किसी संगीतज्ञ को यह अधिकार प्राप्त नहीं था कि वह बिना किसी रोक टोक के महल के अन्दर जा सके। जब यह महल में पहुँचते थे तो महाराजा रामसिंह इनका स्वयं स्वागत करते थे और इनका उचित आदर-सम्मान करते थे। जैसे एक मामूली गायक अथवा वादक अपने गुरु का आदर करता है और विनीत भाव से उससे मिलता है, उसी तरह जयपुर नरेश भी रजब अली खाँ को अपना गुरु समझ कर इनका बहुत आदर करते थे। इसको हम राजाओं और महाराजाओं की मौज अथवा भावुकता ही नहीं मान सकते। इसका कारण केवल यही था कि रजब अली खाँ ऐसे प्रतिभा संपन्न वादक थे और ऐसी सुन्दर वीणा बजाते थे कि महाराजा रामसिंह अपने को उनका शिष्य मानकर उनको अपनी श्रद्धा अर्पित करते थे और अपने आचरण से भी इस बात को प्रमाणित करते थे। किसी नामी संगीतज्ञ को दरबारी गायक अथवा वादक नियुक्त करके उसका आदर-सत्कार करना और बात है और किसी गायक अथवा वादक को अपना पूज्य गुरु मान कर उसका व्यक्तिगत मान-सम्मान करना बिल्कुल दूसरी बात है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास में ऐसे समझदार गुण-ग्राहक राजाओं और महाराजाओं के बीच में बहुत कम पाये जाते हैं। हम जयपुर-नरेश महाराजा रामसिंह को इस संबन्ध में एक तरह का अपवाद ही मानेंगे। वह संगीत के कैसे भावुक प्रेमी और पारखी थे इस बात का पता तो हमें उनके दरबार के गायकों और वादकों से ही चलता है। जिस दरबार में बहराम खाँ, घग्घे खुदाबख्श, मुबारक अली खाँ, इमरत सेन और रजब अली खाँ ऐसे धुरन्धर गायक और वादक नियुक्त रहे हों वह हर प्रकार से संगीत-कला का "नव रत्न" कहला सकता था और जिस जयपुर राज्य का शासक संगीत का ऐसा भावुक गुण-ग्राहक रहा हो वहाँ रजब अली खाँ ऐसे नामी बीनकार को ऐसा सम्मान हो यह भी कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। बीसवीं शताब्दी के तीसरे भाग में ऐसे किसी राजा अथवा महाराजा की कल्पना करना असंभव मालूम पड़ता है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के संगीत के स्वर्णयुग में यह बात संभव थी।

रजब अली खाँ वास्तव में एक बड़े प्रतिभासंपन्न और अनोखे वीणा-वादक थे जिनकी प्रतिभा के बहुत से पक्ष थे। इनकी बनाई हुई बहुत सी चीजें काफी मशहूर हुई हैं। इन्होंने सितार की भी बड़ी-अच्छी अच्छी गतें बनाई थीं जो इनके घराने के शिष्यों को याद थीं। यह भी सुना जाता है कि इनके घर पर हर दूसरे-तीसरे दिन गाना बजाना हुआ करता था और गायकों तथा वादकों की एक भीड़ जमा रहती थी। इनको ऐसी आपस की संगीत-गोष्ठी में बहुत आनन्द आता था। एक बार जब देहली के मशहूर ख्याल गायक तानरस खाँ जयपुर गये थे तो वहाँ गाने-बजाने का क्रम कई दिन तक चलता रहा। जब तानरस खाँ जयपुर से देहली वापस आने लगे तो उसके एक दिन पहले रजब अली खाँ ने उनको दावत दी और आग्रह किया कि वह उस निमंत्रण को स्वीकार करें और एक दिन और रुक जायें। तानरस खाँ बड़ी खुशी से इस बात को मान गये और दावत में गये। कोई गायक अथवा वादक जब किसी नामी कलाकार की दावत करता है तो कई घण्टों के गाने-बजाने का आयोजन किया जाता है। यह प्रथा बहुत काल से चली आई है और अभी भी इसका रिवाज है। इस दावत में सम्मिलित होने वाले जयपुर के सब नामी संगीतज्ञ थे और बहुत ऊँचे ढंग के गाने-बजाने का प्रबंध किया गया था। इसी दावत में मियाँ काल्लू, जो गोकी बाई की संगत करते थे, अपने दो शिष्यों अलीबख्श और फतह अली को लेकर गये थे और उन्हें तानरस खाँ का शागिद बनवाया था। नामी संगीतज्ञों की शानदार संगीत-गोष्ठी में जब अलीबख्श और फतह अली को तानरस खाँ ने अपना शिष्य बनाया तो इन तरुण गायकों को गुणियों का आशीर्वाद मिला और ऐसे धुरन्धर संगीतज्ञों का अनुमोदन पाकर इन दोनों ने संगीत के क्षेत्र में बड़े साहस से प्रवेश किया और आगे चलकर बहुत नाम भी कमाया।

रजब अली खाँ ऐसे प्रसिद्ध वीण वादक और संगीतज्ञ उस युग के देदीप्यमान रत्न थे और वाद्य संगीत के अद्वितीय कलाकार थे। उस समय के संगीत-रसिकों पर और अपनी शिष्य-परम्परा पर इनका बहुत जबरदस्त प्रभाव पड़ा। इनका स्वर्गवास महाराज माधोसिंह के राज्यकाल के आरम्भ में हुआ था।

महाराज माधोसिंह के राज्यकाल में जयपुर दरबार में एक और प्रसिद्ध बीनकार नियुक्त थे जिनका नाम साँवल खाँ था। यह भी प्रथम श्रेणी के वीणा-वादक थे और इनमें भी विलक्षण प्रतिभा थी। उस जमाने में राजाओं और महाराजाओं के दरबारों में गायकों और वादकों के साथ बीनकार भी

हुआ करते थे। जयपुर दरबार अपने बीनकारों के लिए मशहूर रहा है। साँवल खाँ पुरानी प्रथा और रीति-रिवाज के मानने वाले थे और उनकी वेश-भूषा भी अपने ढंग की निरीली थी। जिन पुराने लोगों ने इन्हें देखा था वह बताते हैं कि यह अपने सिर पर सवाईदार जयपुरी पगड़ी पहनते थे और ढाल, तलवार समेत रहते थे। इनका रहन-सहन भी रईसों के आचरण से मिलता जुलता था। इनको हुक्का पीने की बहुत आदत थी और बगैर हुक्के के इनका जी नहीं लगता था। इसलिए यह हमेशा अपने साथ एक नौकर रखते थे जो इनका हुक्का लिए इनके साथ-साथ चला करता था। उसका केवल यह काम था कि वह हुक्का भरे और इन्हें पिलाये। हुक्के का आनन्द लेना साँवल खाँ के दैनिक् जीवन का प्रधान अंग था और वह उनकी दिनचर्या से सम्बन्धित था। कुछ लोगों को पान खाने की बहुत आदत होती है और वह हर दस-दस निट में पान खाते हैं, उसी तरह साँवल खाँ को भी हुक्का पीने की बहुत आदत थी और वह उसके बिना नहीं रह सकते थे।

मगर जब वह अपनी बीन बजाने बैठते थे तो वह उसमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि सब कुछ भूल जाते थे। वह अपने वीणा-वादन में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि संसार को भूल जाते थे। उनके हाथ में ऐसी मिठास थी कि वह प्रत्येक श्रोता के दिल को खींच लेते थे और मुग्ध कर देते थे। वह स्वभाव ही से मीठा बाज बजाते थे और एक भावुक कलाकार थे। उनके वीणा-वादन में उनका दिल बोलता था और आम श्रोताओं पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। उनकी बीन में दिल बोलता था, दिमाग नहीं बोलता था। यही कारण था कि वह अपने सारे श्रोताओं को फौरन मना लेते थे और इस तरह अपने बाज के कला-कौशल का भावात्मक प्रदर्शन करते थे। परन्तु मिठास के साथ-साथ उनके बाज में संगीत की विद्या का भी आभास था और यह पता चलता था कि उन्हें वादन-कला का गहरा ज्ञान था और वह बहुत मननशील संगीतज्ञ थे। परन्तु कला-चमत्कार के साथ-साथ उनमें शिष्टता भी कूट-कूट कर भरी थी और वह अपने सभ्य आचरण से सबका मन मोह लेते थे।

रजब अली खाँ के बाद उनकी शिष्य-परम्परा में मुशर्रफ खाँ ने भी बहुत ख्याति पाई। वह रजबअली खाँ के भांजे थे और उन्हें अपने घराने ही में स..गीत की पूरी शिक्षा मिली थी। परिश्रम करके वह एक बड़े नामी बीन-

कार बन गये थे और उनका दूर-दूर तक नाम था। उनके जमाने के समकालीन वीणा-वादकों में रामपुर के बीनकार उस्ताद वजीर खाँ का नाम सबसे पहले आता था। वह भी इनकी बीन से बहुत प्रभावित हुए थे और इनके सामने बजाने में कभी-कभी संकोच भी करते थे। बहुत-सी रियासतों में मुशर्रफ खाँ का बहुत नाम हुआ और इन्हें मान-सम्मान भी बहुत अधिक मिला। महाराजा खेतड़ी इनके शिष्य बन गये थे और इनका बहुत अतिथि-सत्कार करते थे और अपने पास ही ठहराते थे। महाराजा अलवर ने जब इन्हें सुना तो इतने खुश हुए कि एक गाँव इनाम में दे दिया और अपने दरबार में नियुक्त कर दिया। एक बार यह महाराजा अलवर के साथ रामपुर भी गये थे और इन्हें सुनकर रामपुर के लोग बहुत खुश हुए थे। यह भी सुना है कि इनकी बीन के बाद वजीर खाँ ने अपनी बीन नहीं बजाई और इनका रंग बहुत ही जमा। यह देखने-सुनने में भी एक सुडौल, खूबसूरत आदमी थे और इनका बदन गठीला और कसरती था। जिन घरानेदार संगीतज्ञों ने इन्हें देखा था वह बताते हैं कि मुशर्रफ खाँ पर सब कपड़े सजते थे और उनको लोग "जामाजेब इंसान" कहा करते थे। उन्हें अच्छे कपड़े पहनने का शौक भी था और उनको बहुत से लोग "शौकीन मिजाज" आदमी भी कहा करते थे।

वीणा-वादन के क्षेत्र में वह अपने जमाने के बेजोड़ बीनकार थे और दूर-दूर तक उनके टक्कर का बीनकार दूसरा और नहीं था। अच्छे-अच्छे बीनकार, सरोदिये और सितारिये उनके बाज को सुनने के लिए लालायित रहते थे कि उन्हें उसके नक्शों से थोड़ा-बहुत फायदा पहुँच जाये। उनके सुयोग्य शिष्यों से भी कुछ वादक इस तरह का लाभ उठाना चाहते थे। यह कहना ठीक होगा कि मुशर्रफ खाँ अपने जमाने के बीनकारों में बेजोड़ थे और वीणा की प्रतिष्ठित, घरानेदार शैली की ही व्याख्या करते थे। एक बार वह फ्रांस की नुमाइश में जाकर अपनी वीणा को यूरोप के लोगों को भी सुना आये थे। उनका देहान्त 1909 में हुआ था और रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ उनके बाद दस-बारह वर्ष तक और जिन्दा रहे। यह बात हमें माननी पड़ेगी कि इन दोनों प्रसिद्ध और घरानेदार बीनकारों के निधन के पश्चात् वीणा-वादन की प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा।

मुशर्रफ खाँ के बड़े बेटे का नाम मुसाहिब अली खाँ था। इनको अपने पिता से बीन की बड़ी अच्छी शिक्षा मिली थी। कठिन परिश्रम करके यह भी एक प्रवीण वीणा-वादक बन गये थे और इनका नाम भी चारों ओर फैल गया था। परन्तु यह अपने स्वभाव से आजाद प्रकृति के भावुक जीव थे और

कहीं टिक कर नौकरी नहीं कर सकते थे। इसलिए यह राजदरबारों के सम्मान से वंचित रहे और बिना कहीं नियुक्त हुए भी खुश रहते थे। इन्हें गाने का भी शौक था और इनका गला बहुत सुरीला था। यह अपने मन-बहलाव के लिए अच्छी-अच्छी गजलें गाया करते थे और इनके मित्र और स्नेही ऐसे कंठ संगीत का बहुत आनंद लेते थे। इनका स्वर्गवास 1912 में हुआ।

मुशर्रफ खाँ के मँझले लड़के का नाम सादिक अली खाँ था जिनका देहान्त कुछ वर्ष पहले लखनऊ में ही हुआ। इन्हें भी अपने पिता से वीणा-वादन की बड़ी अच्छी शिक्षा मिली थी और यह वीणा बहुत सुन्दर बजाते थे। यह बड़े सुयोग्य और प्रतिभाशील वीणा-वादक थे और जहाँ तक वीणा के घरानेदार बाज का सम्बन्ध था और उसकी वादन-कला की प्राचीन पद्धति का सम्बन्ध था, यह उसके मर्मज्ञ थे। इन्हें बीन की प्राचीन, सुव्यवस्थित शैली का गहरा ज्ञान था और बहुत से नामी वादक इस बात से परिचित थे और इनका बहुत आदर करते थे। अपने पिता की तरह यह भी बहुत सी रियासतों में रहे। यह बहुत काल तक झालावाड़ में रहे। इसके बाद अलवर के महाराज जयसिंह ने इन्हें अपने दरबार में नियुक्त कर दिया था। यहाँ भी यह कुछ वर्षों तक रहे। अपने जीवन के अन्तिम दस वर्षों में यह रामपुर दरबार में भी नियुक्त हो गये थे परन्तु जमींदारी के अन्त होने पर रामपुर के संगीतज्ञों और कलाकारों को छुट्टी दे दी गई थी। अन्त में यह लखनऊ में आकर रहने लगे थे। संगीत सम्मेलनों में और आकाशवाणी के भिन्न-भिन्न केन्दों से भी यह अपना वीणा-वादन प्रसारित करते थे। यह उच्चकोटि के बीनकार थे और इनकी वादन-कला का और इनके व्यक्तित्व का खुलासा वर्णन हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में कर चुके हैं। इनके सुयोग्य सुपुत्र असद अली खाँ ही अब मुशर्रफ खाँ के घराने के उत्तराधिकारी माने जाते हैं। हमारी शुभ कामनायें उनके साथ हैं।

एक और नामी बीनकार भी जयपुर से सम्बन्धित थे जिनका नाम जमालुद्दीन खाँ था। इनको सारा हिन्दुस्तान स्व० उस्ताद अब्दुल अजीज खाँ विचित्र वीणा-वादक का गुरु जानता था और इन्होंने ही उनको सारंगी छुड़वाकर विचित्र वीणा की शिक्षा दी। अब्दुल अजीज खाँ पैंतीस वर्ष सारंगी बजाने के बाद इनके शिष्य बने थे। ठीक इसी तरह अब्दुल अजीज खाँ के शिष्यों ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने भी अपने परम शिष्य अहमद रजा सारंगी-वादक को विचित्र वीणा-वादक बनाया। अब उनके यह शागिर्द सारंगी बजाने में अपगा अपमान समझते हैं। किसी के बहुत आग्रह पर ही

अब यह किसी निजी महफिल में छिपा-चोरी से सारंगी बजाते हैं। परन्तु अपने पूज्य गुरु के घराने की तरह इनके घराने में भी सारंगी-वादन का रिवाज रहा है। इनको भी इस बात का श्रेय है कि यह अपने प्रयास से एक कुशल विचित्र बीणा-वादक बन गये।

जब हम अपने पाठकों को यह बताते हैं कि जमालुद्दीन खाँ ने अब्दुल अजीज को विचित्र वीणा-वादक बनाया और अब्दुल अजीज ने भी ऐसा ही किया, तो हम दोनों वादकों को इस बात का श्रेय देते हैं। यदि जमालुद्दीन खाँ ऐसा सुयोग्य गुरु अब्दुल अजीज को न मिलता तो शायद वह विचित्र बीन कभी न बजाते। इसी तरह देहली अकाशवाणी के स्थायी कलाकार अहमद रजा को भाग्य से अब्दुल अजीज खाँ न मिलते तो शायद वह सारंगी बजाना कभी न छोड़ते। सगीत के क्षेत्र में घटनाओं का ऐसा आकस्मिक संपात आश्चर्यजनक होता है। हम ऐसे संपात अथवा संपतन का एक दूसरा उदाहरण देकर समझायेंगे। लाहौर के गुलाम मुहम्मद खाँ भी अच्छे गायक हुए हैं। यह पटियाले के मशहूर गायक अलीबख्श की शिष्या सरदार बाई के साथ सारंगी बजाने पर नौकर थे। परन्तु इन्हें गाने का बहुत शौक था और यह सारंगी बजाते-बजाते बहुत सी चीजें सीख लेते थे। जब सरदार बाई ने एक दिन इन पर व्यंगात्मक कटाक्ष करके आक्षेप किया और कहा कि "सारंगी क्यों बजाते हो जब गाने का शौक है।" तो यह बात इनके मन में लग गई और यह बाद में देहली के गायक उस्ताद उमराव खाँ के शागिर्द बन गये और गाना सीखने के लिए इन्होंने बड़े संकट सहे। बाद में यह एक नामी गायक बन गये थे और इन्होंने अपने दोनों भाइयों रमजान खाँ और अतामुहम्मद को भी अच्छा गायक बनाया।

जमालुद्दीन खाँ ने अपने शिष्य अब्दुल अजीज खाँ को इस देश का एक प्रसिद्ध वादक बनाया और विचित्र वीणा-वादन का प्रथम अन्वेषक बनाया। हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में उस्ताद अब्दुल अजीज खाँ के बारे में खुलासा लिख चुके हैं।

जमालुद्दीन खाँ एक घरानेदार संगीतज्ञ थे। यह ग्वालियर के अमीर खाँ सितार वादक के दूसरे लड़के थे और इनका जन्म जयपुर में 1859 में हुआ था। इन्होंने नामी बीनकारों से वीणा की शिक्षा प्राप्त की थी और वीणा-वादन में देश भर में बड़ी ख्याति पायी थी। वह बड़ौदा रियासत के महाराज सियाजी राव गायकवाड़ के दरबार में नियुक्त हो गये थे। महारानी बड़ौदा भी इनसे वीणा-वादन की शिक्षा लेती थीं। इन्हें संगीत का गहरा

ज्ञान था और यह वीणा-वादक होने के अतिरिक्त संगीत के अच्छे विद्वान भी थे। इन्हें बहुत से पुराने ध्रुपद भी याद थे और यह वीणा के विशेषज्ञ थे। यह बहुत शिष्ट और ऊँचे आचरण वाले संगीतज्ञ थे और इनका चरित्र भी गम्भीर और मननशील था। इनको बहुत आदर-सम्मान मिला था और "वीणा विनोद" की उपाधि भी इन्हें मिली थी। समकालीन वादकों में इनका बड़ा नाम था। इनका देहान्त 1929 में हुआ।

अमीर खाँ के तीसरे बेटे का नाम शमसुद्दीन खाँ था। इन्होंने अपने पिता से सितार की शिक्षा पायी थी और यह बड़े नामी सितारिये थे। इनका हाथ भी बहुत मीठा था और श्रोतागण इनके सितार का बहुत आनन्द लेते थे। यह बहुत सी रियासतों में भी सम्मानित हुए। बाद में यह बम्बई में आकर बस गये थे और बहुत से रईस इनसे सितार सीखते थे। इनका देहान्त 1920 में हुआ।

आबिद हुसैन खाँ जमालुद्दीन खाँ के सुपुत्र हैं और यह बड़ौदे में बहुत काल तक रहे। इन्हें अपने पिता से वीणा की अच्छी शिक्षा मिली थी और इन्होंने गाना भी सीखा था और बहुत सुरीला गाते थे। कुछ काल तक किसी कारणवश इन्होंने बीन छोड़-सी दी थी और गाने ही पर अधिक जोर देते थे। परन्तु बाद में यह वीणा भी उसी उत्साह से बजाने लगे। बाद में यह बड़ौदा छोड़ कर नवाब जंजीरा के पास चले गये थे और वहीं रहने लगे थे। अभी भी कभी-कभी इनका वीणा-वादन देहली रेडियो से प्रसारित किया जाता है। बड़ौदा के हीरजी डाक्टर ने भी इन्हीं से वीन की शिक्षा प्राप्त की थी और पिछले वर्षों में वह कई बार आकाशवाणी से भी बजाये। आबिद हुसैन ऐसे सुयोग्य संगीतज्ञ के और भी भक्त हैं और संगीत-संसार इनसे भली-भाँति परिचित है। जमालुद्दीन खाँ के सुयोग्य सुपुत्र होकर इनको काफी सम्मान मिला है।

जयपुर में एक और बड़े नामी संगीतज्ञ हुए हैं जिनकी गणना पुराने विद्वान गायकों में होती थी। इनका नाम अमीर बख्श था। यह महाराज रामसिंह के दरबार में नियुक्त थे और यह बड़ी अनोखी प्रतिभा वाले संगीतज्ञ थे। यह गोंदपुर के घराने के मदारबक्श के लड़के थे और इन्होंने अपने पिता ही से ध्रुपद और होरी की शिक्षा प्राप्त की थी। कुछ समय के पश्चात् यह सदरुद्दीन खाँ के शिष्य हो गये थे जिन्होंने इन्हें आलाप और होरी की शिक्षा दी थी। सुना जाता है कि इन्हें गाने से इतना प्रेम था और वह उसमें ऐसे डूबे रहते थे कि रात-रात भर नहीं सोते थे और अपने दैनिक जीवन का तीन

चौथाई हिस्सा गाने में और गाने के अभ्यास में बिताया करते थे। यह सितार भी बड़ा सुन्दर बजाते थे और इनके बाज में एक विशेष आकर्षण शक्ति थी। यह कितने बड़े विद्वान और अनुभवी गायक थे इसका पता हमें इसी बात से चलता है कि जयपुर के प्रसिद्ध गायक करामत खाँ इन्हीं के शिष्य थे और आलाप, ध्रुपद और होरी में उनका भारतवर्ष भर में नाम था। बम्बई के सुप्रसिद्ध गायक स्व० विलायत हुसैन खाँ के पहले गुरु करामत खाँ ही थे। हम इसी बात से जान सकते हैं कि करामत खाँ ऐसे धुरन्धर गायक के गुरु अमीर बख्श कैसी विलक्षण प्रतिभा के गायक रहे होंगे। अमीर बख्श के एक और शिष्य थे जिनका नाम नजीर खाँ था और वह भी बड़े मशहूर सितार-वादक हुए हैं। अमीर बख्श का देहान्त जयपुर ही में हुआ था।

इस अध्याय के अंत में हम एक और प्रतिभासंपन्न और सुप्रसिद्ध गायक का वर्णन करेंगे जिनका नाम मुहम्मद अली खाँ था। जयपुर के पास एक स्थान फतहपुर भी है ज़हाँ के गायक मशहूर हुए हैं। इनको लोग मुहम्मद अली खाँ फतहपुर के नाम से भी जानतें थे। इनका जन्म जयपुर में हुआ था परन्तु यह लोगों से बताया करते थे कि इनके पूर्वज फर्रुखाबाद के रहने वाले थे। जो कुछ भी हो, इनका सारा-परिवार जयपुर ही में रहता था और लोग इन्हें जयपुर का निवासी मानते थे।

मुहम्मद अली खाँ को अपने घराने के बड़े-बूढ़ों से संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई थी और इनके पास बंदिशों का बड़ा अच्छा संग्रह था जिनमें गायकी के तरह-तरह के नक्शे मिलते थे। कुछ लोग इन्हें "मनरंग" का पोता कहते थे। यदि यह बात संदिग्ध अथवा अनिश्चित भी मानी जाती थी तो इस बात को सब मानते थे कि इन्हें मनरंग की बहुत सी चीजें याद थीं और संगीत संसार में इनकी प्रतिष्ठा का बहुत मान था। संगीत के शिक्षित वर्ग में इनकी प्रतिष्ठा का एक और कारण था। संगीत के सुप्रसिद्ध विद्वान भातखण्डे जी भी इनके शिष्य बन गये थे और इन्हें बहुत मानते थे। उन्होंने इनसे बहुत कुछ सीखा भी था और इनकी कुछ रचनाओं की स्वरलिपि भी की थी। "चतुर पण्डित" मुहम्मद अली खाँ के शिष्य बन गये थे—यह कोई मामूली बात नहीं थी। यदि भातखण्डे जी अपनी आत्मकथा लिखते और उसमें यह बात बताते कि उन्होंने अपने गुरु मुहम्मद अली खाँ से किस ढंग से और किस विशेष योग्यता से सीखा तो ऐसा वर्णन संगीत से सम्बन्धित राष्ट्रीय अभिलेखागार की अमूल्य निधि बन जाता। कितना अच्छा होता कि संगीतज्ञों के संस्मरण लिखते समय व्यावहारिक संगीत के लोकप्रिय इतिहास-लेखक और

संगीतज्ञों के जीवन की मार्मिक घटनाओं के कहानी-लेखक ऐसी कमी को पूरा करते। जब तक इस तरह का रोचक वर्णन न लिखा जायेगा तब तक व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र के प्रसिद्ध गायकों और वादकों की जानकारी अधूरी रहेगी। आधुनिक संगीत की कहानी लिखते समय इस तरह का वर्णन करना विषयान्तर नहीं माना जा सकता। यथार्थ में ऐसी चर्चा संगीत के समूचे इतिहास के अन्तर्गत ही है। संभव है कि कोई अनोखी परख वाला विद्वान किसी दिन इस विषय की ओर अपना ध्यान दे। ऐसे आयोजन से संगीत के छात्रों को भी बहुत लाभ पहुँचेगा, विशेषकर उन विद्यार्थियों को जो विश्व-विद्यालयों में संगीत की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यदि संगीत की राजकीय संस्थायें इस ओर उदासीन हैं तो कोई भी संस्था जिसका साहित्य और संगीत से सम्बन्ध है, इस कार्य को अपने हाथ में ले सकती है।

मुहम्मद अली खाँ के दो और शिष्य थे—गलते बाले हरिवल्लभ आचार्य और दुर्गाबाई। इनको "हर रंग" की उपाधि मिली थी और इनका घराना "कोठी वाल" के नाम से भी पुकारा जाता था। इनके घराने को हम जयपुर का प्रमुख ख्याल घराना मानते हैं और इनके वंशज भी प्रतिष्ठित गायक माने गये हैं। यह महाराज रामसिंह के दरबार में नियुक्त थे और इनका देहान्त महाराज माधोसिंह के राज्य-काल में हुआ।

मुहम्मद अली खाँ के सुपुत्र आशिक अली खाँ भी अपने घराने के प्रतिष्ठित गायक थे। इनको अपने पिता से शिक्षा मिली थी और इनको अपने घराने की बहुत सी अच्छी बंदिशें याद थीं। इनका जन्म महाराज रामसिंह के राज्य-काल में हुआ था और यह महाराज माधोसिंह के दरबार में नियुक्त हो गये थे। यह अपने घराने की गायन-कला के मर्मज्ञ थे और अपनी गायकी के विशेषज्ञ थे। हम यह तो नहीं कह सकते कि जीवन की विलास वस्तुएँ ही इन्हें अधिक आकर्षित करती थीं। परन्तु हम यह मानने को तैयार हैं कि अपने स्वभाव से यह आराम अथवा सुख के इच्छुक थे। यह रामपुर और किशनगढ़ ऐसी रियासतों में भी रहे और वहाँ इनको अधिक सम्मान भी मिला। इनका देहान्त 1915 में हुआ।

जयपुर घराने का वर्णन करते हुए हम जयपुर के गायक कल्लन खाँ को भी नहीं भूल सकते जिनका इस शताब्दी के पहले भाग में जयपुर में बहुत नाम था। यह करामत खाँ ध्रुपद गायक के समकालीन थे और आगरा घराने के प्रतिष्ठित गायक थे और जिन्होंने संगीत-शिक्षा का बहुत जबरदस्त काम किया था और अपने बहुत से शिष्यों को कुशल गायक बनाया था।

इनके पिता घघ्घे खुदाबख्श बहराम खाँ ध्रुपद-गायक थे। साथ महाराज राम सिंह के दरबार में नियुक्त थे जहाँ के प्रमुख कलाकारों में मुबारक अली खाँ, इमरत सेन और रजब अली खाँ ऐसे नामी संगीतज्ञ भी थे। इसके बाद के संगीतज्ञों की जो पीढ़ी आई उसमें कल्लन खाँ, ख्याल गायक और करामत खाँ, ध्रुपद-गायक के नाम सबसे पहले आते थे। आगरा घराने के प्रमुख प्रतिनिधि होकर और घघ्घे खुदाबख्श के सुपुत्र होने की हैसियत से इन्होंने आगरा घराने की गायकी का बहुत बड़ा प्रचार अपनी संगीत-शिक्षा के माध्यम से किया और बड़े अच्छे-अच्छे गायकों को तैयार किया। इस तरह जयपुर घराने की विविध शैलियों के साथ आगरा घराने की गायकी को भी बहुत मान मिला।

अंत में हम जयपुर के मशहूर सितार-वादक हैदर खाँ को भी नहीं भूल सकते। यह हुसैन बख्श उर्फ छैती खाँ के सुपुत्र थे और सितार-वादन की शिक्षा इन्हें अपने चाचा निसार हुसैन से मिली थी। यह कुशल और अनुभव-शील सितार-वादक थे और बाद में देहली के रेडियो स्टेशन में नियुक्त हो गये थे जहाँ पर बहुत वर्षों तक रहे। इनका देहान्त देहली में ही हुआ।

8

# खुर्जा का घराना

हम अपने पाठकों को यह बताना आवश्यक समझते हैं कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ था। इसी संगीत को हम आजकल शास्त्रीय संगीत कह कर पुकारते हैं। जो लोग संगीत से अनभिज्ञ होते हैं अथवा जिनकी जानकारी बहुत मामूली होती है वह अपनी बोलचाल की भाषा में इस संगीत को "राग-रागिनियों वाला संगीत" अथवा "पक्का गाना-बजाना" कह कर पुकारते हैं। जिस बृजभाषा और जिस सांस्कृतिक विचार धारा का सम्बन्ध इस संगीत से रहा है उसका जन्म भी उत्तर प्रदेश के साहित्य और उसके दार्शनिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और कला-सम्बन्धी विचारों में हुआ है। यह कहना भी ठीक होगा कि उत्तर प्रदेश में साहित्य और संगीत ने बड़े सहयोग की भावना से प्रोत्साहित होकर एक ही तरह का सैद्धान्तिक प्रचार किया था। जिस तरह संगीत साहित्य पर निर्भर रहा है उसी तरह साहित्य को भी संगीत ने अपनाया है और अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति का साधन बनाया है। कबीरदास की अमर पंक्ति "घूँघट के पट खोल तोहे राम मिलेंगे" को गायकों की बहुत पीढ़ियाँ राग दरबारी में गाती चली आई हैं। राग दरबारी की यह विशेष रचना अपने ढंग की निराली रचना है। परम्परा और घरानेदार संगीत ने इस ख्याल की रचना पर अपनी अमिट छाप लगाई है। हिन्दुस्तानी संगीत बृजभाषा साहित्य और संगीत के सामंजस्य का प्रतीक माना गया है। जिस मथुरा, वृन्दावन और बरसाने के क्षेत्र में कृष्ण काव्य और कृष्ण संगीत तथा कृष्ण-नृत्य का जन्म

हुआ था, उसी के आस-पास हिन्दुस्तानी संगीत की मौलिक विचारधारा का भी जन्म हुआ था।

उत्तर प्रदेश के और बहुत से बड़े और छोटे शहर भी घरानेदार संगीत और संगीतज्ञों से सम्बन्धित रहे हैं हम जानते हैं कि लखनऊ, बनारस, और रामपुर संगीत के केन्द्र माने गये हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त और भी बहुत से छोटे-छोटे नगर और कस्बे काफी मशहूर हुए हैं। बहुत से संगीत के श्रोता कदाचित इस बात को नहीं जानते कि इटावा में सितार-वादकों का एक मशहूर घराना था जिसमें इमदाद खाँ और इनायत खाँ ऐसे और सितारिये हुए हैं। शाहजहाँपुर के सरोदिये अलगोजा बजाने वाले भी बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। लखनऊ के प्रसिद्ध सरोद-वादक सखावत खाँ यहीं के घराने के थे। स्वर्गीय नवाब छम्मन साहब के सुरसिंगार-वादन ने भी बिलसी ऐसी जगह को मशहूर कर दिया था। सहसवान के ख्याल गायकों का भी काफी नाम हुआ है। इनायत हुसैन खाँ, इमदाद खाँ और मुश्ताक हुसैन खाँ के अतिरिक्त सहसवान और बदाऊँ के फिदा हुसैन खाँ और निसार हुसैन खाँ भी अच्छे ख्याल गायक माने गए हैं। कालपी, खजूर गाँव और बांदा के संगीतज्ञों के अलावा मेरठ और मुरादाबाद के तबला-वादक और गायक भी मशहूर हुए हैं।

इनमें बहुत से शहर संगीतज्ञों के घरानों से सम्बन्धित रहे हैं। जब हम ऐसे शहरों को याद करते हैं तो खुर्जा ऐसा शहर जबान पर सबसे पहले आता है। खुर्जा के गायकों का घराना भी अपने ढंग से प्रसिद्ध माना गया है। सुना जाता है कि अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में यहाँ नत्थे खाँ नाम के एक गायक थे जिनके पुत्र का नाम जोधे खाँ था और जिनका जन्म दिल्ली के आस-पास किसी कस्बे में हुआ था। यह भी सुना जाता है कि जोधे खाँ बड़े अच्छे गायक थे और इन्हें अपने बड़े-बूढ़ों से संगीत की शिक्षा मिली थी। यह इतने कुशल और प्रवीण गायक थे कि शिमरोनागढ़ के नवाब ने इन्हें एक जागीर दे दी थी और अपने दरबार में नियुक्त कर दिया था। अपने जीवन के अन्तिम काल में यह खुर्जा आकर बस गये थे। इन्हीं को हम खुर्जा घराने का जन्मदाता मानेंगे। हम इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में यह देखते चले आये हैं कि कभी-कभी कुछ मामूली गायक भी प्रसिद्ध घरानों के आरम्भकर्ता बन जाते हैं और उन्हें अपने जीवन-काल में इस बात का संकेत भी नहीं मिलता। इसलिए मामूली और छोटे कस्बों अथवा शहरों में भी कभी-कभी गायकों के घरानों का जन्म हुआ है। उदाहरणार्थ हम अपनी

पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में बता चुके हैं कि लखनऊ के प्रसिद्ध सितार-वादक यूसुफ अली खाँ को खूजर गाँव के उस्ताद अब्दुल गनी खाँ से सितार-वादन की शिक्षा मिली थी। परन्तु अपने जीवन-काल में अब्दुल गनी खाँ को स्वयं कोई विशेष ख्याति नहीं मिली थी। अपनी शैली के विशेषज्ञ होते हुए भी संगीत संसार इनसे भली-भाँति परिचित नहीं था। यह सच है कि कभी-कभी कुछ अज्ञात गायक अथवा वादक भी अपने घरानों को विलक्षण प्रेरणा देते हैं और उनके प्रथम अन्वेषक बन जाते हैं।

जोधे खाँ के पुत्र का नाम इमाम खाँ था और इनका जन्म भी खुर्जा ही में हुआ था। यहीं पर इनको अपने घराने ही में संगीत की शिक्षा मिली थी। जब यह एक होनहार गायक बन गये तो यह रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में पहुँचे और वहाँ पर नियुक्त हो गये। रामपुर के नवाब संगीत के रसिक पारखी थे और उनके दरबार में और भी अच्छे-अच्छे नामी संगीतज्ञ नियुक्त थे।

गुलाम हुसैन खाँ इन्हीं इमाम खाँ के बेटे का नाम था और यह भी एक प्रवीण गायक थे। यह पहले दनकौर नाम के कस्बे में जाकर बस गये थे और वहीं रहने लगे थे। सुनते हैं कि नवाब आजम अली खाँ नाम के एक रईस जो संगीत के समझदार प्रेमी थे, इन्हें जाकर खुर्जा ले आये थे और यह वहीं रहने लगे थे। यह भी सुना है कि नवाब साहब ने इन्हें एक जागीर भी दी थी और यह बड़े सुख से जीवन भर खुर्जे ही में रहे।

गुलाम हुसैन के बड़े सुपुत्र का नाम जहूर खाँ था जो खुर्जा घराने के सबसे प्रसिद्ध गायक माने गये हैं। आधुनिक युग में जहूर खाँ ही अपने घराने के अद्वितीय गायक माने जाते थे और इनका बड़ा नाम था। सच पूछा जाये तो आधुनिक काल में इन्हीं के नाम से खुर्जा घराने का इतना बड़ा नाम हुआ है और संगीतज्ञों में उसको मान्यता मिली है। जहूर खाँ दिल्ली के मशहूर गायक तानरस खाँ के घराने से भी सम्बन्धित थे और उनकी शिष्य-परम्परा से भी सम्बन्धित थे। जब कभी व्यावहारिक संगीत के ज्ञान पर तथा घरानेदार शैली पर कोई बात छिड़ जाती थी अथवा संगीतज्ञों में आपस में वाद-विवाद होने लगता था तो जहूर खाँ ही किसी सारगर्भित तत्व का फैसला करते थे और उनकी बात मानी जाती थी। ऐसे कई अवसर आये जब उनके निर्णयों को मान्यता मिली और उनके विचारों को स्वीकार किया गया।

जहूर खाँ अस्वाभाविक प्रतिभा के संगीतज्ञ थे और गायकों के सामान्य वर्ग से बहुत कुछ अलग थे। उन्हें ज्ञान और विद्वत्ता दोनों से सच्चा प्रेम था और वह स्वयं एक संवेदन शील और सूक्ष्मग्राही व्यक्ति थे जो संगीत और साहित्य दोनों का मनन किया करते थे। आमतौर से सब कुशल गायक ऐसे नहीं होते। जहूर खाँ की गणना संगीतज्ञों के उस अल्पसंख्यक वर्ग में होती थी जो सब वास्तव में प्रतिभासंपन्न गायक थे। जब आधुनिक शिक्षित समाज गायकों और वादकों पर अज्ञान का और अशिक्षित होने का आरोप लगाता है तो जहूर खाँ ऐसे कुशल और विद्वान गायक ही ऐसे दोषारोपण का खंडन करते हैं। ऐसे गायकों को हम अपवाद मान कर भी इस बात का प्रमाण मानते हैं कि सब गायक और वादक अशिक्षित अथवा अनपढ़ नहीं होते। जहूर खाँ को हम इस तथ्य की जिन्दा मिसाल मानते हैं और यह सच है कि इनकी प्रतिभा ने खुर्जा घराने की प्रतिभा में चार चाँद लगा दिये थे।

इन्हें हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी इन सब का अच्छा ज्ञान था। यह हिन्दी और उर्दू में कविता भी करते थे। हिन्दी में इनका उपनाम "रामदास" था और उर्दू में इनका तखल्लुस "मुमकिन" था। "रामदास" के नाम से संगीत में इनकी रचनायें काफी मशहूर हुई हैं और अभी भी कुछ गायकों को याद है। इन्हें संगीत की शिक्षा भी बहुत अच्छी मिली थी और ध्रुपद, होरी और ख्याल ऐसी शैलियों पर इन्हें पूरा अधिकार था। संगीत की छानबीन और उसकी व्याख्या की ओर भी इनका पूरा ध्यान गया था। किशोर अवस्था से ही इनको अनुसंधान में रुचि थी और संगीत के सारगर्भित सिद्धान्तों को जानने और समझने की जिज्ञासा थी। एक तरह से गायकों के समाज में यह एक विज्ञान अनुसंधानी के समान थे और खोजबीन का इन्हें बहुत शौक था। परन्तु यह सैद्धान्तिक तर्कबुद्धि ही से काम नहीं लेते थे परन्तु एक कुशल गायक भी थे और संगीत के बौद्धिक सद्‌गुण ही को सब कुछ नहीं मानते थे। यह संगीत के उन विद्वानों से अलग थे जो प्राचीन संगीत के सिद्धान्तों और मतों की व्याख्या करने ही में अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं और न कण्ठ से गाते हैं और न हाथ से कोई साज बजाते हैं। ऐसे विद्वान यही समझते हैं कि प्राचीन शास्त्रों के सिद्धान्त ही व्यावहारिक संगीत की क्रियाशीलता को निर्धारित करते हैं और संगीत में परिवर्तनशीलता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। ऐसे विद्वान संगीत की दिमागी तिजारत करते हैं और उन्हें व्यावहारिक संगीत का कोई विशेष ज्ञान नहीं होता।

जहूर खाँ का अन्वेषण उनके व्यक्तिगत अनुभव से संबन्धित था और

वह संगीत के कल्पना-संबन्धी विचार ही को अपना आधार नहीं मानते थे। वह पहले गायक थे और बाद में एक विद्वान। वह संगीत के कोरे ज्ञान पर गर्व नहीं करते थे और उनकी गणना ख्याल के प्रमुख गायकों में होती थी। वह इस बात को जानते थे कि कोरा सैद्धान्तिक ज्ञान व्यावहारिक संगीत की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। जब तक कोई गायक संगीत के किसी कला-संबन्धी सिद्धान्त को अपनी कला के साँचे में नहीं ढालेगा तब तक वह उसको प्रामाणिकता प्रदान नहीं कर सकता एक सच्चा कलाकार ही अपनी कला के माध्यम से "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" का अनुवाद करता है। एक संगीत-शास्त्री तो केवल अपनी कलम चलाता है और वाक्य-चातुर्य का विशेषज्ञ होकर अपनी जबान ही को खूबी से चलाता है।

जहूर खाँ अपने ढंग के निराले गायक और नायक दोनों थे। प्रथम श्रेणी के ख्याल गायक होने के अलावा यह कवि भी थे। इन्होंने बहुत-सी बंदिशों की, चतुरंग, त्रिवट और सरगम आदि की भी रचना की जो अभी भी इस घराने के शिष्य गाते हैं। यह संगीत-अध्ययन और संगीत-व्याख्या ही में संलग्न रहते थे और यश और ख्याति से दूर भागते थे। यही कारण था कि यह प्रतियोगिता के क्षेत्र से भी दूर रहते थे और संगीत के गम्भीर अध्ययन ही में अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। खुर्जे के आस-पास के शहरों में इनके बहुत से सुयोग्य शिष्य थे। गायकों के बीच में भी इनका बहुत मान-सम्मान होता था। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में बरेली के एक रईस संगीत प्रेमी जो पेशवा खानदान के महाराष्ट्रीय सज्जन थे, इन्हें अपने साथ बरेली ले गये थे और वहीं पर इनका देहान्त हुआ। यह वही संगीत की अनोखी परख वाले रईस थे जिनका वर्णन हमारी पहली पुस्तक "हमारा हिन्दुस्तानी संगीत" के पहले अध्याय में किया गया है। जहूर खाँ के जमाने से इनके पास अच्छे-अच्छे प्रतिभा संपन्न गायक अथवा वादक आया करते थे और यह उनकी धन से सेवा भी करते थे।

जहूर खाँ के एक दूसरे भाई का नाम मुंशी गफूर बख्श था जो सितार सुन्दर बजाते थे। यह उर्दू के भी अच्छे शायर थे और इनका उपनाम 'कमिल' था। यह भी सुना है कि इन्हें संगीत का भी गहरा ज्ञान था और यह संगीत के सच्चे पारखी थे। जिस घराने में जहूर खाँ ऐसे विद्वान गायक रहे हों उसमें ज्ञान की ऐसी प्रेरणा हो यह एक तरह से स्वाभाविक ही था।

जहूर खाँ के छोटे भाई का नाम गुलाम हैदर खाँ था। इनका जन्म

भी खुर्जा में हुआ था और इन्होंने अपने पिता से और भाई जहूर खाँ से संगीत की शिक्षा पाई थी इनकी गणना भी सुयोग्य और अनुभवशील गायकों में होती थी । इन्हें भी संगीत के ज्ञान में विशेष रुचि् थी और यह भी बहुत-सी बातों को जानना और समझना चाहते थे और उनपर अभ्यास भी करना चाहते थे। यह कुछ दिनों तक लखनऊ में भी रहे और बाद में जब यह नैपाल गये तो यह नैपाल दरबार में नियुक्त हो गये थे। यह नैपाल में बीस वर्ष तक रहे और उसके बाद खुर्जा लौट आये और वहाँ संगीत-शिक्षा के काम में लग गये। आस-पास के शहरों में इनके बहुत-से शिष्य थे और इनका नाम भी काफी मशहूर हुआ। इनका देहान्त 1920 में हुआ।

पिछले जमाने में खुर्जा घराने के सबसे बड़े गायक अलताफ हुसैन खाँ ही माने जाते थे। अपने पिता जहूर खाँ के बाद अलताफ हुसैन खाँ ही ने इस घराने की बागडोर अपने हाथ में ली और उसकी प्रतिष्ठा को जीवित रखने का पूरा-पूरा-प्रयत्न किया। इस काल के समकालीन गायकों में अलताफ हुसैन खाँ के साथ सहसवान के मुश्ताक हुसैन खाँ जो बदायूं के निवासी भी थे बदायूं के फिदा हुसैन खाँ और आगरा घराने के तसद्दुक हुसैन खाँ जो बड़ौदा दरबार में नियुक्त थे, करीब-करीब एक ही अवस्था के थे। परन्तु शिक्षा, ज्ञान और अनुभव को देखते हुए यह गायक एक दूसरे से बिलकुल अलग थे मुश्ताक हुसैन खाँ के पिता का नाम कल्लन खाँ था और यह बहुत मामूली गायक थे, जिनका कोई विशेष नाम नहीं हुआ। इसलिए इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने मामा पुत्तन खाँ और महबूब खाँ से पाई थी। जब इनके संगीत के ज्ञान की मजबूत नींव डाल दी गई थी और जब यह गाने लगे थे तो यह सहसवान के प्रसिद्ध गायक इनायत हुसैन खाँ के शिष्य और दामाद दोनों बन गये थे। इनायत हुसैन खाँ ग्वालियर के प्रसिद्ध ख्याल गायक हद्दू खाँ की शिष्य-परम्परा में थे और बहुत नामी ख्याल ग।यक थे। उन्होंने मुश्ताक हुसैन खाँ को अपना दामाद भी बनाया और अपना शिष्य भी बनाया। मुश्ताक हुसैन खाँ ने उनसे क्या-क्या सीखा और ग्वालियर की गायकी का कैसे अभ्यास किया इसके बारे में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं है। यह भी नहीं बताया जा सकता कि मुश्ताक हुसैन खाँ कहाँ तक ग्वालियर गायकी की प्रामाणिक व्याख्या करने में सफल थे। यदि इनायत हुसैन खाँ के दामाद बन कर मुश्ताक हुसैन खाँ उनसे संगीत का ज्ञान प्राप्त न करते तो लोगों को आश्चर्य होता। उनकी असली प्रारम्भिक शिक्षा तो पहले ही हो चुकी थी। उसी की बुनियाद पर उन्होंने अपने संगीत का निर्माण किया था। एक

नामी ख्याल गायक का शिष्य बन कर उनकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा ही और अधिक बढ़ गई। स्वभाव ही से वह प्रसिद्ध और प्रतिभासंपन्न संगीतज्ञों के आगे अपना सिर झुकाते थे और उनके शिष्य भी बन जाते थे। तो जिस तरह उनके दूसरे गुरु इनायत हुसैन खाँ सेनिया घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य बन गये थे और उनसे ध्रुपद-संगीत के अलावा संगीत के भेदों का ज्ञान प्राप्त किया था, उसी तरह मुश्ताक हुसैन खाँ भी नवाब रामपुर की अनुमति से सेनिया घराने के प्रसिद्ध बीनकार वजीर खाँ के भी शिष्य बन गये थे जबकि उन्हें ध्रुपद में स्वयं कोई विशेष रुचि नहीं थी। उनके मत के अनुसार श्रद्धा की भावना से किसी गुणी का शिष्य बन जाना असंगत नहीं था। वह भक्ति की भावना को संगीत के ज्ञान से ऊँचा समझते थे और किसी नामी गायक अथवा वादक का शिष्य बन जाना अपना धर्म समझते थे। इसलिए उनकी गायन-शैली में बहुत-से और प्रभावों का समावेश था। संगीत में जो कुछ ज्ञान उन्हें मिला था वह अपने घराने के बाहर ही मिला था। यही कारण था कि वह रागों और बंदिशों के संग्रहकर्ता थे। बदाऊँ के फिदा हुसैन खाँ को अपने पिता ही से संगीत की शिक्षा मिली थी और वह अपने घराने की शैली के नियमों का ही पालन करते थे। परन्तु उनके सुयोग्य सुपुत्र निसार हुसैन खाँ ने इसके बिलकुल विपरीत किया और अपनी गायकी को दूसरे घरानों के आभूषणों से सजाया सँवारा। कदाचित उनके लिए यह आवश्यक था कि वह ऐसा करें और अपनी शैली को और रोचक बनायें। आगरा घराने के तसद्दुक हुसैन खाँ भी अपने पिता कल्लन खाँ की गायकी गाते थे। वह सैदव दूसरे प्रभावों का विरोध करते थे।

अलताफ हुसैन खाँ ने भी अपने पिता जहूर खाँ से शिक्षा पाई थी और वह हर तरह से भरपूर थे। वह दूसरों घरानों के शिष्य कभी नहीं बने और न उन्होंने अपनी गायकी को और आभूषणों से ही सुशोभित किया। वह अपने घराने की गायकी की शुद्धता अथवा निर्दोषिता पर अधिक बल देते थे। परन्तु वह अपनी शिक्षा ही का गाना नहीं गाते थे परन्तु जो कुछ गाते थे समझ-बूझ कर गाते थे और एक बुद्धिमान गायक थे। उनके पिता जहूर खाँ ने उन्हें उर्दू और फारसी की शिक्षा भी दिलवाई और उन्हें शिक्षित बनाया था। इनका जन्म 1873 में हुआ था और ग्यारह वर्ष की अवस्था से इन्होंने जलसों में गाना शुरू कर दिया था। जो होनहार गायक छोटी अवस्था में महफिलों में गाना शुरू कर देते हैं वह आगे चलकर निडर

गवैये बन जाते हैं। किसी भी तरुण गायक के लिये महफिलों में गाना शिक्षा से अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। ऐसा गाना शिक्षा और रियाज की कसौटी बन जाता है और ऐसे गायक का उत्साह उसके हियाब को खोल देता है और उसे निर्भीक बना देता है। पुरानी तालीम इसी व्यावहारिक सिद्धान्त पर अवलम्बित थी। संगीत की आधुनिक शिक्षा-पद्धति से ऐसे गाने-बजाने का कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसमें रियाज अथवा अभ्यास शिक्षा से अलग कर दिया गया है और उसको क्रियाशील और सार्थक बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। और न इस सम्बन्ध में ऐसी कोई सुविधा भी उपलब्ध होती है। घरानेदार तालीम महफिल के गाने-बजाने से विभाजित नहीं की जा सकती थी और होनहार, तरुण गायकों को महफिलों में गाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

अलताफ हुसैन खाँ छुटपन से महफिलों के आदी हो गये थे और निर्भीकता उनकी रग-रग में समा गई थी। इस बात में वह बहुत से सम-कालीन गायकों से अलग थे। यही कारण था कि वह इस युग में खुर्जा घराने के अद्वितीय गायक माने जाते थे और बहुत से घरानेदार गायक भी उनका उचित आदर करते थे। परन्तु कुछ गायक और वादक स्वभाव से ही मेल-जोल के आदी नहीं होते और तटस्थ रहते हैं। वह केवल विशेष अवसरों पर ही अपना गायन अथवा वादन प्रसारित करते हैं और हर महफिल में जाना पसन्द नहीं करते। यदि वह किसी संगीत सम्मेलन में निमंत्रित किये जाते हैं तो वह वहाँ बैठकर दूसरों को नहीं सुनते परन्तु वहाँ उसी समय जाते हैं जब उन्हें स्वयं अपना संगीत सुनाना पड़ता है। वह अपना गाना अथवा बजाना सुनाकर फिर उसी स्थान पर चले जाते हैं जहाँ उनको ठहराया जाता है। किसी संगीत सम्मेलन के मेल-जोल और विचार-विनिमय की भावना उन्हें प्रोत्साहित नहीं करती और न वह किसी गुण चर्चा की गोष्ठी ही में भाग लेते हैं। या तो वह ऐसा करने में असमर्थ रहते हैं अथवा उनमें इस बात की प्रवृत्ति ही नहीं होती। यदि किसी संगीत सम्मेलन में उन्हें दो ही बार गाना अथवा बजाना पड़ता है तो वह वहाँ केवल दो ही बार जाते हैं और इस तरह अपने दायित्व को चुका देते हैं। वह इस बात को नहीं समझते कि संगीत-सम्मेलन संगीत की उस सभा को कहते हैं जहाँ भिन्न-भिन्न संगीतज्ञ सम्मिलित होते हैं और एक दूसरे के साथ मिलकर अपना-अपना संगीत सुनाते हैं जिसमें संगीत कला की विविधता होती है। शायद वह उतना ही संगीत सुनाते हैं जितने की फीस उन्हें मिलती है। आत्म-गौरव

आत्म-निष्ठता की भावना उनमें इतनी अधिक मात्रा में होती है कि उन्हें दूसरे कलाकारों को सुनने की भी कोई विशेष इच्छा नहीं होती। वह एक संगीत-सम्मेलन को सम्मेलन नहीं समझते परन्तु रेडियो संगीत का कार्यक्रम समझते हैं जिसमें एक कलाकार दूसरे के बाद स्टूडियो में घुस पाता है। बम्बई के स्व० उस्ताद अब्दुल करीम खाँ में भी इस तरह की उदासीनता थी।

ऐसे ही गायक अथवा वादक आपस की महफिलों से दूर भागते हैं और तलाऊपर गाने-बजाने के आनन्द को नहीं जानते। शायद इनमें कुछ ऐसे भी संगीतज्ञ होते हैं जो अपने व्यक्तिगत मान अथवा अपनी निजी प्रतिष्ठा को जन-समारोह के सम्पर्क से जान-बूझ कर बचाते हैं। ऐसे गायक अथवा वादक लोकप्रिय कलाकार नहीं बन पाते और आम जनता को उनकी कोई जानकारी नहीं होती। अपने जीवन के आरम्भ-काल से अलताफ हुसैन खाँ ने महफिलों में जाना शुरू कर दिया था और गायकों और वादकों की संगीत-सभाओं में वह हिस्सा लेने लगे थे। महफिलों के गाने-बजाने को "दंगली" गाना-बजाना भी कहा गया है। इन्हीं महफिलों में पुराने जमाने में गायकों और वादकों की कला का फैसला कर दिया जाता था और हार-जीत का निर्णय भी कर दिया जाता था। ऐसी एक महफिल में जयपुर में पटियाले के तरुण गायक फतह अली और अली बख्श तानरस खाँ के शागिर्द बन गये थे। ऐसी एक महफिल में बनारस के प्रसिद्ध तबला-वादक बीरु मिश्र लखनऊ के अद्वितीय तबला वादक खलीफा आबिद हुसैन के शिष्य बन गये थे। और ऐसी एक बम्बई की जोरदार महफिल में तरुण गायक फैयाज खाँ पंजाब के नामी और प्रौढ़ गायक मियाँ जान खाँ के ऊपर गाये थे और इस बात का सुबूत दिया था कि आगे चलकर वह इस देश के सर्वश्रेष्ठ ख्याल गायक माने जायेंगे। अलताफ हुसैन खाँ ने भी वह जमाना देखा था।

हमें खेद है कि घरानेदार गायकों और वादकों को छोड़कर आजकल के संगीतज्ञों के बीच में महफिल ऐसी सांस्कृतिक संस्था का लोप-सा हो गया है। महफिलों में गाने वाले गायकों का गाना एक तरह से बहुपक्षी होता था और उसमें कई शैलियों के रंग होते थे। अलताफ हुसैन खाँ ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराना, त्रिवट, चतुरंग और सरगम इन सब शैलियों को गाते थे। इनकी गायकी को हम बलदार और पेंचदार गायकी भी कह सकते थे। गायकों में भी इनका बड़ा मान था और अच्छी-अच्छी रियासतों में भी यह नियुक्त रहे। सन् 1922 में यह नेपाल गये थे और राणा चन्द्र शमशेर बहादुर ने इनका बहुत आदर-सत्कार किया था। इसी तरह दस-बारह और

रियासतों में भी इन्हें बहुत मान सम्मान मिला। अपने जीवन-काल के अन्तिम चौदह वर्ष इन्होंने बिहार के बनैली राज्य के कुमार श्यामानन्द सिंह के पास काटे थे। बंगाल और बिहार के बहुत से रईस इनके शिष्य बन गये थे। स्वभाव ही से यह बड़े मिलनसार आदमी थे और संगीत के सूक्ष्मदर्शी विद्वान भी थे।

अपने सुपुत्र मुहम्मद वाहिद खाँ के अलावा इन्होंने अपने भांजे स्व० अजमत हुसैन खाँ को भी शिक्षा दी जो बाद में आगरा घराने के भी शिष्य बन गये थे। यदि अजमत हुसैन अपना गाना न छोड़ देते तो वह प्रथम श्रेणी के ख्याल गायक होते और अपने साथ के और अपनी उम्र के गायकों में उनका पहला नाम होता। अलताफ हुसैन खाँ जितने अच्छे गायक थे उतने अच्छे शिक्षक भी थे।

अलताफ हुसैन खाँ की गणना उन घरानेदार गायकों में होती थी जिनको अपने घराने ही में शिक्षा मिली थी। परन्तु वह देहली के घराने से भी सम्बन्धित थे। यदि ऐसा न होता तो संगीत की एक विराट सभा में स्व० बड़े गुलाम अली खाँ उन्हें देहली घराने का प्रतिनिधि मान कर उन्हें अपनी श्रद्धा की भेंट अर्पित न करते। बड़े गुलाम अली खाँ के पूज्य पिता अलीबख्श पटियाले के गायक फतह अली खाँ के शागिर्द थे जो देहली के सुप्रसिद्ध गायक तानरस खाँ के शिष्य थे। घरानेदार गायकों में ऐसे आदर अथवा सम्मान की प्रथा सदैव प्रचलित रही है। यह सच था कि अलताफ हुसैन खाँ घरानेदार संगीत के प्रतिनिधि और अनुवादक दोनों थे।

9

# सहसवान का घराना

जब हम सहसवान के घराने का वर्णन करने बैठते हैं तो हम जानते हैं कि उसके गायक और वादक अधिकतर सहसवान ही के निवासी थे। इसी नाते सामूहिक रूप से हम इन सबको इस नाम के घराने में सम्मिलित करते हैं। इस घराने के दो प्रमुख गायक ग्वालियर घराने के शिष्य थे और यही एक विशेष कारण था कि उनको बड़ी ख्याति मिली थी। सहसवान के रहने वाले इन सारे संगीतज्ञों को हम सुविधा के लिए सहसवान घराने में सम्मिलित करते हैं। यही कारण है कि सहसवान इस घराने का केन्द्र माना गया है। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से तीन चौथाई गायक और वादक रामपुर के सेनिया घराने के संगीतज्ञों के शिष्य बन गये थे और रामपुर रियासत से सम्बन्धित हो गये थे। ग्वालियर, आगरा, देहली इत्यादि की तरह संगीत के क्षेत्र में सहसवान ऐसे छोटे शहर की अपनी कोई निजी विशेषता नहीं थी। एक गायक को छोड़ कर यहाँ के सब प्रमुख गायक दूसरे घरानों के शिष्य थे और सहसवान घराने की अपनी कोई विशेष शैली नहीं थी। प्रस्तुत वर्णन से यह बात साफ हो जायेगी।

खुर्जा के घराने और सहसवान के घराने में शैली को देखते हुए तो कोई गुण साम्य नहीं था परन्तु सामान्य रूप से इन दोनों में एक तरह का तात्विक साम्य अवश्य था जो एक तरह की समरूपता अथवा समानता की ओर संकेत करता था जो गायक इन दोनों घरानों के प्रारम्भकर्ता अथवा जन्मदाता माने गये हैं उन दोनों में मौलिक प्रतिभा थी। इस बात के होते हुए भी कि यह दोनों प्रसिद्ध गायक दो अलग-अलग घरानों से प्रेरित हुए थे और अपने-अपने ढंग से उनकी शैलियों के अनुवादक बन गये थे। परन्तु इनके

व्यावहारिक संगीत में इनकी व्यक्तिगत प्रतिभा का भी बड़ा हाथ था। जहूर खाँ और इनायत हुसैन खाँ दोनों नामी ख्याल गायक थे।

सहसवान के घराने का वर्णन आरम्भ करते समय हमें यह बता देना चाहिए कि आम तौर से इनायत हुसैन खाँ को ही इस घराने का जन्मदाता माना जाता है। यह सहसवान के निवासी थे और इन्हें दो नामी और घरानेदार गायकों से शिक्षा मिली थी। यह ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक हद्दू खाँ के दामाद थे और इन्होंने उनसे थोड़ा-बहुत सीखा भी था। परन्तु बाद में यह रामपुर जाकर सेनिया घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और सुरसिंगार-वादक बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य बन गये थे और उनसे बहुत सी बंदिशें और तराने इत्यादि भी सीखे थे। बहादुर हुसैन खाँ का एक मशहूर तराना राग देश में है जो इनायत हुसैन खाँ के बहुत से शिष्यों को याद हो गया था। संगीत का कोई भी मननशील और प्रखर बुद्धि वाला बुद्धिमान विद्यार्थी यह प्रश्न पूछ सकता है कि इनायत हुसैन खाँ ने हद्दू खाँ ऐसे बेजोड़ गायक से गाना सीखकर किस कमी को पूरा किया और किस बात को जानने और सीखने के लिए वह बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य बने? यह तो हम जानते ही हैं कि बहादुर हुसैन खाँ मशहूर सेनिया संगीतज्ञ प्यार खाँ, जाफर खाँ और बासत खाँ के घराने के थे। यह घराना सेनियों का घराना कहलाता था और यह तीनों भाई ध्रुपद संगीत के और वाद्य संगीत के विशेषज्ञ थे। इनका वाद्य संगीत भी ध्रुपद और वीणा की शैलियों पर आधारित था और इसीलिए इनका घराना सेनिया घराना कहलाता था। प्राचीन ध्रुपद शैली ही इनके घरानेदार संगीत का मूल स्रोत और आधार थी।

बिल्कुल इसके विपरीत ग्वालियर के हद्दू खाँ ख्याल शैली ही की अनुपम व्याख्या करते थे और ध्रुपद शैली के विशेषज्ञ नहीं थे। हद्दू खाँ ख्याल की शुद्ध गायकी के निर्माता माने गये हैं। वह रंग का गाना भी नहीं गाते थे और न उनके गाने में लोकप्रिय रोचकता का कोई विशेष आभास था। परन्तु बहादुर हुसैन खाँ ध्रुपद संगीत के विशेषज्ञ होते हुए भी और एक अद्वितीय सुरसिंगारवादक होने के अलावा ख्याल, तराना ऐसी शैलियों के भी मर्मज्ञ थे। उनके व्यावहारिक संगीत में ऐसा प्रभावोत्पादक आकर्षण था कि संगीतज्ञ और मामूली श्रोता उनकी ओर खिंचते चले आते थे। उनके पास संगीत की अनेक शैलियों का अथाह ज्ञान था और उनकी अपनी प्रतिभा भी विलक्षण थी। यह स्वाभाविक था और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि इनायत हुसैन खाँ उनके शागिर्द बन गये थे। रामपुर को छोड़ कर आस-पास ऐसे

संगीतज्ञ और नहीं थे जिनके प्रति वह ऐसी श्रद्धा रखते। अपनी कमी को पुरा करने के लिए ही वह बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य बन गये थे और इस तरह उन्होंने अपने जीवन को सराहा था। परन्तु यह कहने के बाद यहाँ पर यह बताना भी आवश्यक है कि जब इनायत हुसैन खाँ के शिष्य मुश्ताक हुसैन खाँ रामपुर के बीनकार वजीर खाँ के शिष्य बने थे तो उन्होंने अपनी किसी कमी को पूरा नहीं किया था। यदि उन्होंने उनसे ध्रुपद और होरी की शिक्षा पाई थी तो श्रोताओं ने उन्हें ध्रुपद और होरी गाते कभी नहीं सुना।

हमारा अपना विचार है कि इनायत हुसैन खाँ के बहादुर हुसैन खाँ का शिष्य बन जाने से बहुत अधिक लाभ पहुँचा। पहली बात तो यह थी कि बहादुर हुसैन खाँ से संगीत की शिक्षा पाकर और उनके संपर्क में आकर उनकी अपनी प्रतिभा का भी विकास हुआ और वह अच्छी बंदिशों की रचना भी करने लगे। इस तरह उनकी सृजनात्मक प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त वह गायन-शैली की रोचकता पर भी अधिक ध्यान देने लगे। वह ध्रुपद शैली के विशेषज्ञ न तो बन सकते थे और न बनना चाहते थे। परन्तु बहादुर हुसैन खाँ से शिक्षा पाकर और उनके सत्संग का लाभ उठाकर उन्होंने अपनी ख्याल गायकी को और भी अधिक रोचक बनाया और उसे निर्जीव शुद्धता अथवा नीरस शुद्धाचारवाद के दोष से बचाया। बहादुर हुसैन खाँ से ऐसी अनोखी प्रेरणा पाकर ही इनायत हुसैन खाँ ने अपनी ख्याल शैली को भी भरपूर बनाया और तराना ऐसी लोकप्रिय शैली का भी अभ्यास करके अपने संगीत को विविधता के गुण से सुशोभित किया।

इस तरह उन्होंने अपनी कमी को पूरा किया। हद्दू खाँ के बहुत से शिष्य थे और उनकी शिष्य-परम्परा का विस्तार भी अधिक था। जब इनायत हुसैन खाँ हद्दू खाँ के दामाद बन गये तो उन्हें यह अवसर और सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि वह उनसे कुछ चीजें भी सीख लें। परन्तु हम उनको हद्दू खाँ के खास, चुने हुए प्रथम श्रेणी के शागिर्दों में नहीं मानते। यह तो मानना पड़ेगा कि हद्दू खाँ से उन्हें प्रेरणा मिली थी और उनसे उन्होंने कुछ बंदिशें भी याद की। परन्तु सच पूछा जाये तो यह श्रेय बहादुर हुसैन को था कि उन्होंने इनायत हुसैन खाँ को नई आँखें दी और इस नई प्रेरणा से उनकी प्रतिभा का भी उचित विकास हुआ। बिल्कुल इसके विपरीत उनके शिष्य मुश्ताक हुसैन खाँ के साथ हुआ। मुश्ताक हुसैन खाँ को पहले ही अपने मामा पुत्तन खाँ से संगीत की पूरी शिक्षा मिल चुकी थी। जब वह इनायत हुसैन का दामाद बन कर उनसे सम्बन्धित हो गये तो यह स्वाभाविक था कि वह इनसे

कुछ सीखते भी। और जब इनायत हुसैन खाँ को इतनी ख्याति मिली थी और इतना मान मिला था तो यह कैसे सम्भव था कि वह इतने नामी गायक के शिष्य न बनते ? यही कारण था कि वह रामपुर के बीनकार वजीर खाँ के भी शागिर्द बन गये थे। जब किसी विद्वान गायक अथवा वादक के शिष्यों में किसी होनहार संगीतज्ञ की गणना होने लगती है तो उसका अपना मान भी बढ़ जाता है।

परन्तु जहाँ तक इनायत हुसैन खाँ का सम्बन्ध था उनमें प्रतिभा भी ऊँचे दर्जे की थी और उन्हें देश में अधिक मान-सम्मान भी मिला था। अपने जमाने के मशहूर ख्याल गायकों में उनकी गणना होती थी। यह तो हम नहीं कह सकते कि इनायत हुसैन खाँ अपने जमाने के चोटी के ख्याल गायक थे। इसका कारण यह था कि इनके युग के समकालीन ख्याल गायकों में और भी बहुत से धुरन्धर गायक थे जो अपने ढंग के अद्वितीय गायक माने जाते थे। हद्दू-हस्सू खाँ की शिष्य परम्परा में भी मुहम्मद खाँ, रहमत खाँ, निसार हुसैन खाँ, जोशी बुआ और बाल कृष्ण बुआ, इचतकरंजींकर ऐसे नामी गायक थे जिनसे और बहुत से अच्छे-अच्छे गायकों ने भी शिक्षा पाई थी। इसलिए यह कहना ठीक न होगा कि इनायत हुसैन खाँ अकेले हद्दू खाँ के प्रथम श्रेणी के शिष्य थे। यह कहना अवश्य न्यायसंगत होगा कि वह हद्दू खाँ के अच्छे शिष्यों में थे और ख्याल शैली के विशेषज्ञ थे। यही कारण था कि उनको इतनी ख्याति मिली थी और उनको इतना मान-सम्मान मिला था। जहाँ-जहाँ वह गये उनको समझदार श्रोताओं से और गुणीजन-समाज से मान्यता मिली। उस जमाने में नेपाल ऐसी रियासत में संगीत का बहुत बोल-बाला था और अच्छे संगीतज्ञों को वहाँ मान के अलावा धन भी बहुत मिलता था। उत्तरी भारत के बहुत से सुयोग्य गायक और वादक नेपाल जाया करते थे। यह प्रथा बहुत काल तक प्रचलित रही और इस देश के बहुत से संगीतज्ञ अक्सर नेपाल जाया करते थे। अब किसी कारणवश इस प्रथा का लोप सा हो गया है। शायद राणा सम्प्रदाय के प्रभुत्व में कमी आ जाने से नेपाल में संगीत का पहला सा हार्दिक संरक्षण क्षीण पड़ गया है और वहाँ के संगीत-प्रेम में भी कुछ कमी आ गयी है। वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है कि नेपाल में शायद अब संगीत की पहली सी चहल-पहल नहीं रही।

परन्तु जिस जमाने में इनायत हुसैन खाँ नेपाल गये थे वहाँ उस समय और भी गायक और वादक जाया करते थे। पहली बार इन्हें बीर

शमशेर राणा ने बुलाया था और वहाँ और भी अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ जमा हुए थे। इनका वहाँ बहुत अतिथि-सत्कार हुआ था और यह कुछ दिनों के लिए नेपाल दरबार में भी नियुक्त हो गये थे और वहाँ इनको उचित सम्मान भी मिला था। और गायकों की तरह इनको भी पुरस्कार के अतिरिक्त मान-सम्मान भी मिला था। यह वह जमाना था जब भारतवर्ष का कोई भी कुशल और प्रवीण गायक नेपाल से खाली हाथ नहीं लौटता था। इस घराने में नेपाल अच्छे संगीतज्ञों का गुण-ग्राहक माना जाता था।

परन्तु नेपाल से कहीं अधिक मान्यता इनको ग्वालियर, रामपुर और हैदराबाद ऐसी रियासतों में मिली। ग्वालियर तो ग्वालियर घराने का केन्द्र माना जाता था और एक तरह से वह ख्याल गायकी का जन्म-स्थान भी था। हद्दू-हस्सू खाँ की शिष्य-परम्परा का उद्गम-स्थान भी ग्वालियर था। ग्वालियर ने इनायत हुसैन खाँ को अपना समझकर अपनाया और सम्मानित किया। रामपुर ऐसी रियासत ने भी इनकी गायक-कला की प्रशंसा की और इसलिए भी इनको अपनी हार्दिक मान्यता दी कि वह बहादुर हुसैन खाँ सेनिया के शिस्य बन गये थे। सेनिया सम्प्रदाय के अनुयायी इस बात को देखकर हर्षित हुए कि हद्दू खाँ ऐसे अद्वितीय ख्याल गायक के एक सुयोग्य शिष्य ने बहादुर हुसैन खाँ सेनिये के सामने अपना सिर झुकाया और उनका शिष्य बन गया। रही हैदराबाद की बात, हम यह जानते हैं कि तानरस खाँ ऐसे नामी गायक हैदराबाद के दरबार में रह चुके थे और उनकी शिष्य-परम्परा का भी वहाँ बहुत मान था हैदराबाद की रगों में संगीत की आत्मा समा गयी थी। वहाँ के श्रोताओं को भी ख्याल गायकी से प्रेम था और वह अच्छे गायकों के गानों को प्रेम से सुनते थे। जब इनायत हुसैन खाँ वहाँ पहुँचे और वहाँ के लोगों को अपना गाना सुनाया तो श्रोताओं को बहुत आनन्द आया और उन्होंने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह तीन रियासतें ऐसी थीं जहाँ इनायत हुसैन खाँ का गाना मानो कसौटी पर कसा गया और हर तरह से सच्चा उतरा।

इनायत हुसैन खाँ की ख्याति के दो विशेष कारण थे। दो तरह के संगीतज्ञों ने इन्हें बहुत मशहूर गायक बनाया। पहले तो वह संगीतज्ञ थे जो इनके शिष्य बन गये थे। इनमें इनके दो भाई भी थे जो कुशल बीनकार थे और जिनसे इनके घराने का मान बढ़ा था। पहले हम इनके शिष्यों के बारे में दो-चार शब्द कहेंगे। इनके प्रमुख शिष्यों में ऐसे नामी गायक थे जैसे रामकृष्ण

वझे बुआ, नजीर खाँ, छज्जू खाँ, खादिम हुसैन और मुश्ताक हुसैन खाँ। इन्हीं नामी शागिर्दों ने इनकी ख्याति में चार चाँद लगाये। शिष्य भी अपने गुरु का मान बढ़ाते हैं। इनायत हुसैन खाँ के यह सब शिष्य नामी गायक माने जाते थे। रामकृष्ण वझे बुआ महाराष्ट्र के मशहूर गायकों में थे। इन्होंने औरों से भी सीखा था परन्तु इनायत हुसैन खाँ को यह अपना खास गुरु मानते थे। उस जमाने में महाराष्ट्र में ग्वालियर घराने की शिष्य-परम्परा का बहुत आदर होता था और कभी-कभी वहाँ के गायक ग्वालियर घराने के गायकों की ओर स्वाभाविक ढंग से आर्कषित होते थे और उनसे थोड़ा-बहुत सीखते भी थे। रामकृष्ण वझे बुआ इसी तरह की श्रद्धा से प्रेरित हुए थे। छज्जू खाँ और नजीर खाँ मुरादाबाद और रामपुर के निवासी थे और मशहूर गायक थे। नजीर खाँ ने औरों से भी शिक्षा पाई थी। यह पहले आगरा घराना के सुप्रसिद्ध गायक कल्लन खाँ के शिष्य बने थे। बाद में यह ध्रुपद गायक अलाबंदे खाँ के भी शिष्य बन गये थे। यह सादरा ऐसी शैली के विशेषज्ञ माने जाते थे और शायद यही कारण था कि इनका ध्यान ध्रुपद शैली की ओर भी गया था। परन्तु बाद में जब यह भातखण्डे जी के संपर्क में आये तो उनके पांडित्य, उनकी संगीतपद्धति और उनकी सरल स्वर-लिपि को देखकर यह उनसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि यह उनके भी शिष्य बन गये थे। नजीर खाँ ने शायद अपने मन में सोचा कि जब राजा नवाब अली खाँ ऐसे संगीत के विद्वान भातखण्डे जी के शिष्य बन सकते थे तब वह भी ऐसा कर सकते थे और इस तरह अपने संगीत के ज्ञान को बहुत कुछ बढ़ा सकते थे। कहा नहीं जा सकता कि छज्जू खाँ और नजीर खाँ ने इनायत हुसैन खाँ से कितने काल तक सीखा और क्या सीखा। मगर थे दोनों नामी गायक।

खादिम हुसैन भी इनायत हुसैन खाँ के शिष्यों में माने जाते थे। परन्तु यह कहना ठीक होगा कि इनायत हुसैन खाँ के सबसे नामी शागिर्द मुश्ताक हुसैन खाँ ही थे। इनके बारे में हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में खुलासा लिख चुके हैं। मुश्ताक हुसैन खाँ ऐसे नामी गायक के संगीत और व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते समय हम अपने से यह प्रश्न पूछते हैं : क्या मुश्ताक हुसैन खाँ ग्वालियर की प्रामाणिक गायकी के अनुवादक थे ? इसका उत्तर "हाँ" और "नहीं" में नहीं दिया जा सकता। हम इतना अवश्य मानते हैं कि वह इनायत हुसैन खाँ के सुयोग्य शिष्य थे और जीवन भर उनकी श्रद्धा करते रहे। जब उनका नाम इनायत

हुसैन खाँ ऐसे सुप्रसिद्ध गायक के साथ जोड़ा जाता था तो जनता के मानस-पटल पर इनकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा अंकित हो जाती थी।

इनायत हुसैन खाँ के छोटे भाई का नाम अली हुसैन खाँ था जो एक प्रसिद्ध बीनकार थे। इनको अपने बड़े भाई इनायत हुसैन खाँ से संगीत की शिक्षा मिली थी। परन्तु वीणा-वादन में शिक्षा पाने के लिये यह बहादुर हुसैन खाँ के शिष्य बन गये थे। इस तरह दोनों भाई बहादुर हुसैन खाँ ही के शिष्य थे। हमको यह बात जान कर बहादुर हुसैन खाँ की विलक्षण बहुमुखी प्रतिभा का ज्ञान होता है और उसकी एक झलक मिलती है। यथार्थ में बहादुर हुसैन खाँ एक बेजोड़ सेनिया वादक थे और प्यार खाँ के भांजे थे। इन्हें रबाब और सुरसिंगार दोनों पर अधिकार था परन्तु सुरसिंगार में इन्होंने विशेष प्रवीणता प्राप्त की थी। परन्तु जैसा पहले बताया गया है, यह संगीत की और शैलियों के भी मर्मज्ञ थे और रचनायें भी लिखते थे। यह तरानों के भी विशेषज्ञ थे। इसीलिये इनायत हुसैन खाँ ने एक गायक की हैसियत से इनसे कुछ सीखा। वीणा तो सेनियों का पहला साज था और उसी की शैली के आधार पर उनके वाद्य संगीत का निर्माण हुआ था। यही कारण था कि अली हुसैन खाँ ने बहादुर हुसैन खाँ से ही वीणा की शिक्षा ली और अमीर खाँ ऐसे बीनकार के पास नहीं गये। अमीर खाँ भी बहादुर हुसैन खाँ की श्रद्धा करते थे और उनको अपना बड़ा मानते थे। अली हुसैन खाँ की गणना चोटी के बीनकारों में होती थी। यह महाराजा गायकवाड़ के दरबार में भी नियुक्त हो गये थे और वहाँ इन्हें बहुत सम्मान मिला था। अपने जमाने के मशहूर बीनकारों में इनका बहुत नाम था। बहादुर हुसैन खाँ से शिक्षा पाकर नामी बीनकार बन गये थे और देश के वीणा-वादकों में भी इनका बहुत आदर होता था।

अली हुसैन खाँ के एक और भाई भी थे जिनका नाम मुहम्द हुसैन खाँ था और यह भी सुयोग्य वीणा-वादक थे। यह रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ के दरबार में नियुक्त हो गये थे। यह वह जमाना था जब रामपुर में वजीर खाँ बीनकार का बहुत मान था और वह नवाब रामपुर के गुरु भी थे। यह कहना भी उपयुक्त होगा कि इनायत हुसैन खाँ को और उनके दोनों भाइयों को बहादुर हुसैन खाँ ही से प्रेरणा मिली थी और यही कारण था कि यह सब इतने प्रवीण संगीतज्ञ बने। इस बात की कल्पना करना कठिन है कि बिना बहादुर हुसैन खाँ का शिष्य बने इनायत हुसैन खाँ संगीतज्ञों की किस विशेष श्रेणी में रखे जा सकते थे। इनायत हुसैन खाँ ने जिस

कमी को पूरा किया था उसे वह स्वयं जानते थे। हम तो केवल उसका अनुमान लगा सकते हैं।

यदि हम सहसवान के और गायकों का वर्णन न करें तो सहसवान के घराने की यह चर्चा अधूरी मानी जायेगी। इमदाद खाँ नाम के एक गायक भी सहसवान के निवासी थे। इन्होंने भी हद्दू खाँ से शिक्षा पाई थी और इनकी गणना भी उनकी शिष्य-परम्परा में होती थी। शायद इनको इनायत हुसैन खाँ की तरह इतनी अधिक ख्याति नहीं मिली और न इतना मान मिला। परन्तु फिर भी यह सहसवान के एक नामी गायक थे। इन्होंने इस देश की उत्तर-पूर्वी रियासतों की बहुत सैर की और वहाँ इनको उपयुक्त ढंग से सम्मानित किया गया और अनेक पुरस्कार भी दिये गये। हद्दू खाँ के शिष्य होने के नाते श्रोताओं ने इनको हाथों हाथ लिया और इनके संगीत का बहुत आनन्द उठाया। यह अपने जमाने के एक सुयोग्य और नामी गायक थे और इन्हें समझदार श्रोताओं से हार्दिक अनुमोदन मिला था। इनको यह सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ था कि यह किसी दूसरे महान संगीतज्ञ के संपर्क में भी आते और अपनी गायन-शैली को कला के अनेक आभूषणों से अलंकृत करते। यह अपनी शैली ही पर निर्भर थे और उसी पर इन्होंने अभ्यास किया था। यह शिक्षक भी बहुत अच्छे थे और अपने बड़े लड़के अमजद हुसैन को और अपने छोटे लड़के वाजिद हुसैन को इन्होंने बड़ी अच्छी शिक्षा दी थी। इन दोनों भाइयों में वाजिद हुसैन खाँ का नाम अधिक चमका और वह संगीत के मैदान में आये। एक संगीत-शिक्षक होने के नाते वह दस-बारह साल से अधिक बम्बई में रहे और महाराष्ट्र के बहुत से गायकों ने उनसे शिक्षा पाई। इस सम्बन्ध में यह बताना भी आवश्यक है कि उस्ताद वाजिद हुसैन के शिष्यों में श्री बी० आर० देवधर और कुमार गन्धर्व भी थे। इन दोनों में आपस में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध था। श्री देवधर ही ने कुमार गन्धर्व को संगीत की शिक्षा दी थी। परन्तु आवश्यकता के अनुसार अवसर पाकर इन दोनों ने वाजिद हुसैन खाँ से भी बहुत सी चीजें याद कीं। शायद आज कल लोग किसी गायक से चीजें लेना और उसका शिष्य बनना इन दोनों बातों को दिमाग के अलग-अलग खानों में रखते हैं और एक ही चीज नहीं मानते। जो कुछ भी हो, किसी सुयोग्य और अनुभवशील गायक को अपना गुरु मानकर कुछ सीखना गायकों के कुतूहल से सम्बन्धित होता है और कोई आपत्तिजनक बात नहीं होती। ऐसी बात को स्वीकार करना किसी भी गायक की सद्भावना का और उसके

नैतिक साहस का प्रमाण माना जाता है। देवधर जी तो संगीत-ज्ञान-उपार्जन के कार्य में कई वर्षों से लगे हुए हैं और उनके कुतूहल की पूर्ति अभी नहीं हुई है। उन्होंने तो संगीत के ज्ञान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है। कुमार गन्धर्व को भी घरानेदार बन्दिशों की खोज रही है। परंतु वह किसी विशेष घरानेदार शैली के भक्त नहीं बने और न उसमें प्रवीणता प्राप्त की।

वाजिद हुसैन खाँ 1944 अथवा 1945 में इलाहाबाद चले आये थे और वहाँ पर भी संगीत-शिक्षा में संलग्न हो गये थे। इलाहाबाद में बहुत से गायकों और कलाकारों ने उनसे काफी लाभ उठाया।

## हैदर खाँ

हैदर खाँ भी सहसवान के एक बहुत नामी गायक थे जिन्होंने बहुत नाम कमाया था और बाद में नवाब हामिद अली खाँ के दरबार में रामपुर में नियुक्त हो गये थे।

मुश्ताक हुसैन खाँ के अलावा बदायूँ के दो गायक फिदा हुसैन खाँ और उनके सुपुत्र निसार हुसैन खाँ भी सहसवान के गायक माने जाते हैं। यह कहना तो ठीक न होगा कि सहसवान के घराने के सारे गायकों की एक-सी शैली है। हम इस बात को उदाहरण देकर समझा सकते हैं। कहाँ तक मुश्ताक हुसैन अपने दूसरे गुरु इनायत हुसैन खाँ की गायकी गाते थे, इस बात को खुलासा बताना कठिन है। क्या जो कुछ उन्होंने अपने मामा पुत्तन खाँ से और महबूब खाँ "दरस" से सीखा था उनके संगीत की असली सम्पत्ति नहीं थी? क्या इस पूँजी से उन्होंने कोई लाभ बाद में नहीं उठाया? अवश्य उठाया। उनके संगीत की मजबूत नींव डालने वाले उनके मामा पुत्तन खाँ ही थे। संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा का बहुत बड़ा प्रभाव प्रत्येक गायक की शैली पर पड़ता है। शैली को हम बाह्य आडम्बर अथवा एक तरह का औपचारिक शिष्टाचार नहीं मान सकते। उसका बड़ा गहरा सम्बन्ध किसी गायक के स्वभाव से और उसकी शिक्षा से भी होता है। हम यह नहीं मान सकते कि मुश्ताक हुसैन खाँ ग्वालियर की गायकी की व्याख्या करते थे अथवा उसका प्रामाणिक रूप श्रोताओं के सामने रखते थे। उनकी गायकी अपने ढंग की अच्छी गायकी थी परन्तु उसमें ग्वालियर की गायकी का कोई विशेष सादृश्य नहीं था।

फिदाहुसैन खाँ सहसवान के असली निवासी होंगे परन्तु वह बदाऊँ में आकर बस गये थे और आम जनता उन्हें बदाऊँ ही का गायक समझती थी। उनकी सीधी-सादी ख्याल गायकी अपने ढंग की रोचक गायकी थी। यह गायकी स्थाई और अंतरा और बढ़त और सीधी-सीधी तानों पर आधारित थी। राग की बढ़त और चीज की बढ़त इस गायकी के प्रधान गुण थे। जिस तरह उनके चरित्र में भी एक तरह की सादगी और शिष्टता थी उसी तरह उनकी गायकी में भी एक तरह की निर्दोषता थी। कला-चत्मकार की न्यूनता होते हुए भी फिदाहुसैन खाँ की गायकी में एक तरह का स्वाभाविक आकर्षण था जो सरलता के सिद्धान्त का समर्थन करता था। इस गायकी में भावुकता का अभाव था परन्तु शुद्धता का प्राचुर्य था। यद्यपि फिदा हुसैन खाँ ने अपने होनहार और प्रतिभाशाली सुपुत्र निसार हुसैन खाँ को इसी गायकी की शिक्षा दी थी परन्तु वह स्वयं ख्याल गायकी के और भी चमत्कारों की ओर प्रेरित हुए थे और उन्होंने कई उपवनों से पुष्प चुने और उनका गुलदस्ता बनाने में व्यस्त रहे। फलस्वरूप उनकी गायकी में और तरह की सुगंध भी है।

निसार हुसैन खाँ भी सहसवान के घराने के माने जाते हैं। परन्तु यह भी बदाऊँ में रहते हैं और सहसवान से अब इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। मुश्ताक हुसैन खाँ की तरह यह भी इनायत हुसैन खाँ के दामाद हैं। परन्तु जहाँ तक इनकी अपनी शिक्षा का सम्बन्ध है यह उन्हें अपने पूज्य पिता ही से मिली थी। मुश्ताक हुसैन खाँ से भी इन्होंने थोड़ी-बहुत शिक्षा पाई थी परन्तु यह शिक्षा उसी ढंग की थी। यह जन्म से सहसवान के गायक माने जा सकते हैं। परन्तु इनके कण्ठ में सहसवान की गायकी के कोई विशेष लक्षण नहीं हैं। यदि इनायत हुसैन खाँ सहसवान की गायकी के प्रामाणिक टीकाकार माने जाते हैं तो निसार हुसैन खाँ उस गायकी के विशेषज्ञ नहीं हैं।

हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी सगीत के रत्न" में इनके बारे में खुलासा लिख चुके हैं और यह बता चुके हैं कि आगरा घराने की गायकी का कितना बड़ा प्रभाव इनकी गायकी पर पड़ा। फिर भी हमें यह मानना पड़ेगा कि अभी भी सहसवान और बदाऊँ के प्रमुख गायकों में इनकी गणना होती है और यह एक प्रसिद्ध ख्याल गायक हैं जिनकी गायकी पर आगरा गायकी का बहुत जबरदस्त असर पड़ा। सहसवान से यह इसलिये संबंधित हैं कि यह इनायत हुसैन खाँ के दामाद हैं परन्तु उनकी गायकी नहीं गाते।

●

# 10

# अतरौली का घराना

आधुनिक युग के दो प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ गायक अतरौली ऐसी मामूली और अनजानी जगह से बहुत अधिक सम्बन्धित थे। पहले गायक तो बम्बई के उस्ताद अल्लादिया खाँ थे और दूसरे थे बड़ौदा के उस्ताद फैयाज खाँ। उस्ताद अल्लादिया खाँ अपनी पेचीदा और बलदार गायकी के विशेषज्ञ थे और एक विद्वान गायक माने जाते थे। यदि यह गायकी ख्याल की गायन शैली का एक विशेष पक्ष अथावा अंग था जिसमें स्वरों की अनोखी उलट-पुलट होती थी और किसी राग की बौद्धिक व्यख्या भी होती थी, तो उस्ताद फैयाज की गायकी ख्याल की गायन-शैली का दूसरा विशेष अथवा अनिवार्य पक्ष था इस गायकी में किसी भी राग में उच्च कोटि की सृजनात्मक तथा भावनापूर्ण व्याख्या होती थी और इसमें बौद्धिक कुतूहल एक तरह से अप्रधान बन जाता था। परन्तु ख्याल गायकी के यह दोनों पक्ष ख्याल-गायन के दो अनिवार्य अंग थे जिनसे दो अलग-अलग शैलियों का जन्म हुआ था। पहली शैली में एक तरह का बौद्धिक बल था और दूसरी में अन्तः प्रज्ञा और हृदय की भावुकता का समावेश था। पहली अधिकतर बौद्धिक थी और दूसरी हृदयस्पर्शी थी।

उस्ताद अल्लादिया खाँ के पूर्वज अतरौली के रहने वाले थे और उनका घराना अतरौली का घराना ही कहलाता था। जहाँ तक उस्ताद फैयाज के घराने का सम्बन्ध था वह आगरा घराना कहलाता था। परन्तु इसलिए कि उनका विवाह अतरौली में हुआ था और वह महबूब खाँ "दरस" के दामाद

थे, वह अतरौली से भी एक तरह से सम्बन्धित थे और वहाँ अक्सर आया जाया करते थे। सच तो यह है कि उन्हें अतरौली से विशेष प्रेम था।

खुर्जा और सहसवान की तरह अतरौली भी एक छोटी सी जगह है और अलीगढ़ से कुछ ही दूर है। कदाचित यह कहना गलत न होगा कि पिछले जमाने में महबूब खाँ "दरस" ऐसे संगीतज्ञ ही ने अतरौली को सारे देश में मशहूर बनाया था। उनकी बहुत-सी सुन्दर रचनायें इतनी प्रसिद्ध हैं कि गायक अभी भी उन्हें गाते हैं। कुछ रागों में तो उनकी बंदिशें बेजोड़ मानी जाती हैं और उन रागों में उस ढंग की और कोई रचनायें नहीं मिलती हैं। राग आनन्दी में उनकी मशहूर रचना "हे बारे सैंया" उस्ताद अल्लादिया खाँ भी बड़े प्रेम से गाया करते थे। इस राग में दूसरी कोई बन्दिश इस ढंग की नहीं है। इसी तरह राग जोग में भी उनकी रचना "पिहरवा को बिरमाये" बेजोड़ बन्दिश है। इसके साथ की मध्य लय की रचना महबूब खाँ के सुपुत्र अताहुसैन खाँ की बनाई हुई है और उसे भी बहुत से गायक सुन-सुन कर गाते हैं—"अजहुँ न आये श्याम।" एक महफिल में एक मशहूर ख्याल गायक बदाऊँ में एक बार गाते-गाते इस रचना का अन्तरा भूल गये थे और बड़े संकट में फँस गये थे। संयोगवश उस महफिल में एक विद्वान श्रोता भी बैठे हुए थे जिन्हें यह रचना पूरी याद थी। जब उन्होंने धीरे से अन्तरे के शब्दों को उस गायक के सामने दुहराया तब वह आगे बढ़ सका। इस बात से उस प्रसिद्ध गायक की मान-हानि तो अवश्य हुई परन्तु उन्होंने अपनी स्मरण-शक्ति को कोसते हुए अपना गाना जारी रखा और सभा-चातुर्य से अपने इस दोष को छिपाया।

परन्तु "दरस" पिया की और भी बहुत-सी बेजोड़ रचनायें हैं जिन सब का वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। उनकी राग सोहनी की रचना "द्रुम-द्रुम लता-लता" और राग तिलक कामोद की रचना "गुन की चरचा कर ले माँ" भी बहुत ख्याति पा चुकी हैं। हमें इस बात का खेद है कि "दरस" पिया ऐसे बेजोड़ कवि और संगीतकार की बहुत सी रचनाओं की स्वरलिपि नहीं हो सकी। भातखण्डे जी भी उनके सम्पर्क में अधिक नहीं आ सके और यह काम अधूरा ही रह गया। इसी तरह मथुरा के काले खाँ "सरस" की भी बहुत सी रचनायें लाजवाब हैं जिनमें से कुछ की स्वर-लिपि शायद अब की जा रही है। हमें आशा है कि उनके सुयोग्य पुत्र गुलाम रसूल खाँ जनता के सामने इन रचनाओं को लायेंगे।

परन्तु महबूब खाँ "दरस" एक सुयोग्य और अनुभव शील गायक भी

थे। जहाँ तक याद पड़ता है आगरे के उस्ताद अहमद खाँ जो मशहूर गायिका जोहरा बाई के गुरु थे, महबूब खाँ "दरस" के ही शिष्य थे। रामपुर दरबार के गायक मुश्ताक हुसैन खाँ ने भी इनसे बहुत-कुछ सीखा था और इनका एक अनूठा ग्रन्थ भी उनके हाथ लग गया था। महबूब खाँ के दो प्रतिभाशाली सुपुत्र थे जिनके नाम अताहुसैन और बन्दे हसन थे। इन दोनों को उस्ताद फैयाज खाँ ही से शिक्षा मिली थी और यह दोनों उनके साथ गाया भी करते थे। अता हुसैन खाँ बड़े मजे हुए गायक हैं और शिक्षक भी बहुत अच्छे हैं। बड़ौदे और बम्बई के स्व० स्वामी बल्लभदास को और अपने भांजे शराफत हुसैन को इन्होंने ही शिक्षा देकर तैयार किया था। आँखों की बीमारी होने के कारण अब यह अतरौली ही में रहते हैं। कलकत्ते में भी इन्होंने बहुत से बंगाली गायकों को शिक्षा दी थी। और आगरा घराने की गायकी का उत्तम प्रचार किया था। उस्ताद फैयाज के निधन के पश्चात् 1950 के बाद यह संगीत-शिक्षा के काम में जुट गये थे और बहुत-से गायकों और कलाकारों ने इनसे बहुत फायदा उठाया था। हम इनको आगरा घराने का सम्मानित प्रतिनिधि और एक सुयोग्य गायक मानते हैं। अभी भी संगीत के मननशील विद्यार्थी इनसे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

यह देखते हुए कि अतरौली एक छोटी सी जगह है, हमें आश्चर्य होता है कि यहाँ इतने धुरन्धर और नामी संगीतज्ञ हुए जो संगीत कला के अनोखे मर्मज्ञ थे। ध्रुपद, होरी और ख्याल इन तीनों शैलियों में यहाँ के बहुत-से संगीतज्ञों ने निपुणता प्रात की थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में गायकों और वादकों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी और नये-नये घरानों का भी विकास हुआ था। उच्च कोटि के प्राचीन घरानों के संगीतज्ञों को ऐसी अद्भुत प्रेरणा मिली थी कि बहुत-से और घरानों का भी जन्म हो गया था। परन्तु घरानेदार संगीतज्ञों के अतिरिक्त कुछ ऐसे महान् संगीतज्ञ भी थे जिनकी प्रतिभा विलक्षण थी और जिसका प्रभाव कुछ घरानों पर भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ढंग से बहुत पड़ा। बहुत से घरानों की शैलियों का विश्लेषण करके हम इस बात का पता लगा सकते हैं। अलग-अलग ढंग के उच्चकोटि के संगीतज्ञों की प्रतिभा में एक ऐसी अनोखी शक्ति होती थी कि वह दूसरे संगीतज्ञों को भी अपनी कला से प्रभावित करते थे। अतरौली में इस तरह के बहुत-से संगीतज्ञ थे।

जब हम "अतरौली का घराना" ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो हम उन सब संगीतज्ञों की ओर संकेत करते हैं जो अतरौली के निवासी थे

अथवा उससे किसी विशेष ढंग से सम्बन्धित थे। इन सब संगीतज्ञों के सामूहिक रूप ही को हम "अतरौली का घरना" कहते हैं। पिछले दो घरानों की तुलना में जिनका वर्णन हम कर चुके हैं, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि अतरौली के घराने का क्षेत्र उनसे कहीं अधिक बड़ा था और उसमें कई शैलियों का समावेश था। खुर्जा घराना और सहसवान घराने की तरह यह घराना ख्याल का घराना ही नहीं माना जाता था। यहाँ के अधिकांश संगीतज्ञ ध्रुपद और धमार ऐसी शैलियों के विशेषज्ञ थे और इस बात को सिद्ध करते थे कि ध्रुपद और ख्याल की संगीत-परम्परा एक है और यह दो मुख्य शैलियाँ एक दूसरे से विभाजित नहीं की जा सकतीं। यह बात संगीत के एकता सिद्धान्त की ओर भी संकेत करती है।

वास्तव में अतरौली का घराना संगीत की विविध शैलियों का घराना माना जाता है और वहाँ के सब संगीतज्ञ इसी एक घराने के अन्तर्गत माने जाते हैं। इसीलिए सामूहिक रूप से हम इन सबको अतरौली के घराने के अन्तर्गत ही मानते हैं।

परन्तु एक और बात हमें ध्यान में रखना चाहिए। उच्च कोटि के संगीतज्ञों की संगीत-कला का अप्रत्यक्ष प्रभावी भी कभी-कभी बहुत प्रभावी अथवा सार्थक सिद्ध होता है। कुछ भावुक और सूक्ष्मग्राही संगीतज्ञों में सुग्राहिता अथवा संवेदनशीलता का गुण होता है और वह सुग्राही अथवा संवेदी जीव होते हैं उनकी वैयक्तिक अनुक्रिया में भी एक तरह का बल होता है। ऐसे ही संगीतज्ञ अपनी संवेद्यता से पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं और संगीत के उत्तम प्रभावों से प्रोत्सासित होते हैं। संगीत के क्षेत्र में जो लोग व्यष्टि-पूर्णतावाद के सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते वह भी इस बात को तो अवश्य मानते हैं कि एक महान संगीतज्ञ के व्यक्तित्व का प्रभाव दूसरे संगीतज्ञों पर भी पड़ता है। शैलियों का प्रभाव भी एक दूसरे पर पड़ता है। संगीत की परिवर्तनशीलता को देखते हुए ऐसा कहना असंगत नहीं है। परन्तु यह कहना भी अनुचित नहीं है कि किसी एक घराने को अपनी विशेष शैली पर पूर्ण अधिकार होता है और उच्च कोटि के घरानेदार गायक अथवा वादक एक व्यक्ति स्वामित्व के सिद्धान्त को तर्कसंगत बनाते हैं। परन्तु संगीत को देखते हुए और आधुनिक युग के क्रान्तिकारी परिवर्तनों को ध्यान में रखकर हम कभी-कभी ऐसे अधिकारों को अखण्डनीय मानने को तैयार नहीं होते। फिर भी हमको यह मानना पड़ेगा कि घरानेदार गायक और वादक ही अपनी शैलियों के

विशेषज्ञ और अनुवादक होते हैं और उनको ही यह अधिकार होता है कि वह उनकी प्रामाणिक व्याख्या करें। और संगीतज्ञों को यह अधिकार नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त शैलियों के विशेषज्ञ ही शैलियों में सुधार अथवा उचित परिवर्तन कर सकते हैं। परन्तु कला-कौशल के तकनीकी पक्ष पर ही बल देकर किसी शैली का कलात्मक सुधार अथवा शोधन कभी नहीं किया जा सकता।

अतरौली घराना भिन्न-भिन्न संगीतज्ञों का समूह था और जिसमें अनेक घरानों का जन्म हुआ था। तो इन घरानों के सामूहिक रूप को ही हम अतरौली घराना कह कर पुकारते हैं। इनमें से कुछ व्यक्तिगत रूप से संगीत के क्षेत्र में अपना महत्व रखते थे। पहले हम ऐसे संगीतज्ञों का वर्णन करेंगे जो बहुत काल अतरौली को संगीत का केन्द्र बनाने में संलग्न थे और जिन्होंने अतरौली के परम्परागत संगीत की मजबूत नींव डाली। अतरौली में काले खाँ और चाँद खाँ नाम के दो महशहूर गायक हुए हैं जिनके पूर्वज ब्राह्मण थे। यह भी सुना है कि जूनागढ़ के नवाब बहादुर खाँ इनका इतना अधिक आदर करते थे कि इन्हें अपने निकट संबंधी की तरह मानते थे। ऐसे और भी गायक अतरौली में हुए हैं। अतरौली के घरानेदार गायक बताते हैं कि दुल्लू खाँ और छज्जू खाँ नाम के दो गायकों का जन्म भी अतरौली में हुआ था। यह दोनों गायक ध्रुपद और धमार ऐसी शैलियों के विशेषज्ञ थे और गोबरहारी बानी की गायकी के अनुशासन का पालन करते थे। यह दोनों उनियारे के ठाकुर साहब के पास रहा करते थे जिनको लोगों ने "राजा" की उपाधि भी दे रखी थी। ठाकुर बिशन सिंह के जमाने से लेकर पंगा फतहसिंह के काल तक यह दोनों वहीं रहते थे और इनको वहाँ बहुत सम्मान भी मिला था। सुना है कि इनके वंशज अभी भी वहाँ मौजूद हैं परन्तु वह अब संगीत का व्यवसाय नहीं करते और खेती किसानी ही करते हैं। व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में हमें ऐसे और बहुत-से उदाहरण मिलते हैं जहाँ प्रसिद्ध गायकों और वादकों की संतान ने संगीत-कला का परित्याग करके शिल्प अथवा किसी और व्यवसाय में प्रवीणता प्राप्त की थी और उसे अपने जीविका-निर्वाह का साधन बनाया था। आगरे के एक प्रसिद्ध गायक के बड़े लड़के दर्जी का काम करने लगे थे और गायक नहीं बन पाये थे। फिर भी जिस वातावरण में उनका पालन-पोषण हुआ था उसका प्रभाव उन पर ऐसे अनोखे ढंग से पड़ा था कि गायक न होते हुए भी वह रागों और रागिनियों का पूरा आनन्द लेते थे। परन्तु जब कभी संगीत के सुनने-सुनाने की प्रथा का भी लोप हो जाता है

तो किसी घराने के वंशज संगीत के आनन्द से भी वंचित हो जाते हैं। दुल्लू खाँ और छज्जू खाँ के वंशज का यही हाल हुआ।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में अतरौली में एक और गायक थे जिनका जन्म ब्राह्मण के कुल में हुआ था। इनका नाम हुसैन खाँ था और यह भी ध्रुपद और धमार के निपुण गायक थे। इनका निधन 1836 के लगभग हुआ। मशहूर गायक स्व० अजमत हुसैन खाँ इन्हीं के वंशज माने जाते हैं। हम आगे चलकर इनके घराने पर और कुछ लिखेंगे।

पुराने गायकों का वर्णन करते समय हम एक और गायक को भी नहीं भूल सकते। इनका नाम शाहब खाँ था और इनका जन्म भी ब्राह्मण के कुल में हुआ था। इनका जन्म-स्थान औरंगाबाद था जो बुलन्दशहर जिले में है। यह भी ध्रुपद और धमार के विशेषज्ञ थे और इन्हें संगीत का ज्ञान अपने पिता से मिला था। इनके बारे में हमें और कोई विशेष जानकारी नहीं है।

परन्तु जब हम शाहब खाँ के सुपुत्र मानतौल खाँ का वर्णन करने बैठते हैं तो हमें पता चलता है कि वह बड़ी बिलक्षण प्रतिभा वाले नामी गायक थे जिनको लोग इसी नाम से जानते थे। परन्तु यह इनका असली नाम नहीं था। यह उपाधि इनको रामपुर के नवाब कासिम अली खाँ से मिली थी और इसी नाम से सारा संगीत संसार इन्हें जानता था। दिल्ली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक कुतुब-बख्श का नाम भी तानरस खाँ था। यह नाम दिल्ली के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह "जफर" का दिया हुआ था। उनका असली नाम तो कुतुब बख्श था और वह डासना के रहने वाले थे। मानतौल खाँ भी ऐसे ही प्रतिभाशाली गायक थे और लोग इन्हें इसी नाम से जानते थे। इनसे कुछ और गायक भी सम्बन्धित थे जिनके बारे में हम आगे चल कर थोड़ा-बहुत बतायेंगे।

अतरौली के यह अलग-अलग घराने अपनी-अपनी विशेषता रखते थे। परन्तु सामूहिक रूप से यह सब अतरौली घराने को ही सुशोभित करते थे। इनमें से कुछ संगीतज्ञ तो अपने ही घरानों से सम्बन्धित थे और कुछ की अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा थी। परन्तु यह सब अतरौली के परम्परागत संगीत से संबन्धित थे और उसे गौरवशाली बनाते थे। यही कारण है कि संगीत के इतिहास-लेखक अतरौली घराने को इतना महत्व देते हैं। यह सारे संगीतज्ञ जिनके बारे में हमें कोई विशेष ऐतिहासिक तथा कला-संबन्धी जानकारी नहीं है, अतरौली की मर्यादा का पोषण करते थे और यह उनकी कर्तव्य-

निष्ठा और क्रियाशीलता ही का फल था कि आज भी हमें उनकी याद आती है। यह वह बूँदें थीं जिनसे अतरौली के संगीत का गागर भरा गया था। यह वह विभूतियाँ थीं जिन्होंने अतरौली के संगीत को सुशोभित किया था। इन सबके सहयोग ही से अतरौली के परम्परागत संगीत का निर्माण हुआ था। इनमें से प्रत्येक संगीतज्ञ ने संगीतज्ञ की अमूल्य निधि का संचय करने में अपना योगदान दिया था। यह सब अपने-अपने ढंग से अतरौली संगीत-परम्परा के पोषक थे और उसके उज्ज्वल स्तम्भ थे।

अतरौली में एक और गायक हुए हैं जिनका नाम गुलाम गौस खाँ था। यह नौहार बानी गाते थे। सुना जाता है कि यह सुलतान सिंह राजपूत के वंशज थे। यह बूंदी के दरबारी गायक नियुक्त हो गये थे। बूंदी के महाराज रामसिंह इनसे बहुत प्रसन्न थे और इन्हें वहाँ बहुत आदर-सम्मान मिलता था। एक वयोवृद्ध गायक होने के कारण बूंदी-नरेश भी इन्हें "काका" कह कर पुकारते थे और इनका बहुत आदर करते थे। यह नौहार बानी के विशेषज्ञ थे परन्तु इन्हें डागुर बानी में भी स्वाभाविक अभिरुचि थी। इसलिए यह उसे भी गाने लगे थे और उसमें भी निपुण हो गये थे। यह ध्रुपद ही गाते थे और ख्याल नहीं गाते थे।

## खैराती खाँ

स्व० अजमत हुसैन खाँ के पूज्य पिता थे और इनका जन्म अतरौली ही में हुआ था। यह खंडार बानी का ध्रुपद गाते थे और इनको संगीत की शिक्षा अपने घराने ही में मिली थी। अपने चाचा इमाम बख्श से इन्होंने संगीत का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया था। इनका सौभाग्य था कि दुल्लू खाँ और छज्जू से भी इन्हें थोड़ी बहुत शिक्षा मिली थी। यह उनियारे के ठाकुर बिशन सिंह के यहाँ नियुक्त हो गये थे और बहुत अच्छे गायक थे। इनको हम उन अनुभव शील गायकों में मानेंगे जिनकी गायकी दमदार थी और जो शिक्षक भी बेजोड़ थे।

## करीम बख्श

नाम के गायक खैराती खाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म उनियारे में हुआ था। इनको अपने पिता ही से शिक्षा मिली थी और यह खण्डार बानी गाते थे। यह उनियारे के ठाकुर फतह सिंह के यहाँ नौकर थे। कुछ दिनों के लिए यह झालरापाटन रियासत में भी नियुक्त हो गये थे। परन्तु जब इन्हें

उनियारे की याद ने बहुत सताया तो यह वहाँ लौट कर आ गये और ठाकुर साहब ने इन्हें हाथों हाथ लिया और यह वहाँ अपने जीवन के अन्त तक रहे।

अतरौली के और सुयोग्य गायकों में एक सआदत खाँ नाम के गायक भी थे जो नौहार बानी गाते थे।

और बहुत से गायकों का संक्षिप्त वर्णन ही यहाँ काफी होगा। जैसे चिम्मन खाँ नाम के एक गायक थे जो कादिर खाँ के लड़के थे और ब्राह्मण कुल के थे। यह ध्रुपद और धमार के नामी गायक थे और अतरौली में रहते हुए भी बाहर की रियासतों से भी इनके पास निमंत्रण आया करते थे। जोधपुर ऐसी रियासत में यह साल में एक बार अवश्य जाया करते थे और वहाँ इनका बहुत मान-सम्मान होता था। महाराजा जोधपुर इनके गाने से बहुत प्रसन्न थे और इन्हें बहुत मानते थे। इनका स्वर्गवास भी जोधपुर ही में हुआ।

जिन मानतोल खाँ नाम के गायक का वर्णन हम कर चुके हैं, उन्हीं के सुपुत्र का नाम करीम बख्श खाँ था। इनको अपने पिता ही से शिक्षा मिली थी। यह ध्रुपद और होरी के माने हुए गायक थे। परन्तु इनके साथ-साथ यह ख्याल भी उतना ही अच्छा गाते थे। सुना है कि इनका ख्याल गायन इतना प्रभावोत्पादक होता था कि उसे सुनकर श्रोता बेचैन हो जाते थे और कुछ लोगों के नेत्रों से अश्रु-प्रवाह भी होने लगता था। यह परमात्मा की देन थी कि इनके कण्ठ में जादू का सा प्रभाव था। जोधपुर के महाराजा मान सिंह इन्हें बहुत मानते थे और इन्हें बड़ी इज्जत देते थे। यह उन गायकों में थे जिनके कण्ठ में सरस्वती का वास था। सुना है कि इनकी पालकी महाराजा के महल के दरवाजे तक जा सकती थी और जोधपुर-नरेश ने इन्हें बहुत सम्मानित किया था। अपने पिता की तरह इन्हें भी बहुत आदर-सम्मान मिला था।

जहूर खाँ का जन्म भी अतरौली में हुआ था और इनका परिवार शाण्डिल्य गोत्र का था। यह भी ध्रुपद और होरी के विशेषज्ञ थे और जोधपुर नरेश महाराजा मान सिंह के दरबार में नियुक्त थे।

### हक्कानी बख्श

भी अतरौली के रहने वाले और ध्रुपद-होरी के बेजोड़ गायक थे। यह भी जोधपुर दरबार में नियुक्त थे और इनका देहान्त जोधपुर ही में हुआ।

## भूपत खाँ

नाम के एक मशहूर ध्रुपद-गायक भी जोधपुर के दरबार में नियुक्त थे। इन्हें एक जागीर भी मिली थी और इनका बहुत मान-सम्मान होता था। किशनगढ़ और ग्वालियर ऐसी रियासतों में भी इनका बहुत आदर-सत्कार होता था। यह अतरौली के रहने वाले थे परन्तु इनका स्वर्गवास जोधपुर में हुआ।

## गुलाब खाँ

भूपत खाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म जोधपुर में हुआ था। यह भी जोधपुर के दरबार में नियुक्त हो गये थे और अपने पिता की तरह इन्हें भी बहुत आदर मिला था और इन्हें एक जागीर भी मिली थी। सुनते हैं कि यह ध्रुपद और धमार बेजोड़ गाते थे। इनके दो लड़कों के नाम अहमद खाँ और नसीर खाँ था। यह दोनों भी कुशल गायक थे। इनके तीसरे लड़के का नाम मुहम्मद खाँ था जो ध्रुपद और होरी बहुत अच्छा गाते थे। इनका स्वर्गवास जोधपुर में 1934 में हुआ जब इनकी अवस्था अस्सी वर्ष की थी। परन्तु इस अवस्था में भी इनके कण्ठ में एक तरह का सुरीलापन था।

अतरौली के गायक हस्सू खाँ भी ध्रुपद-होरी गाते थे। यह भी बड़े प्रसिद्ध गायक थे और उनियारे के राव राजा संग्राम सिंह के यहाँ नियुक्त हो गये थे। इनके सुपुत्र मुहम्मद खाँ भी इनके साथ वहीं नौकर थे। यह होरी, ध्रुपद और ख्याल सब शैलियों को गाते थे। बम्बई के मशहूर गायक अल्लादिया खाँ हस्सू खाँ के दामाद थे।

अतरौली के मशहूर गायक दौलत खाँ नत्थू खाँ खण्डारे के सुपुत्र थे। इन्हें अपने पिता से संगीत की शिक्षा मिली थी और यह ध्रुपद और होरी बहुत अच्छा गाते थे। यह पहले महाराजा जोधपुर के दरबार में थे और बाद में बम्बई और कलकत्ते में भी जाकर रहे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में यह नेपाल पहुँचे थे और वहाँ महाराजा वीर शमशेर जंगबहादुर के दरबार में नियुक्त हो गये थे। यह सात वर्ष तक वहाँ रहे और इसके बाद इनका देहान्त वहीं हो गया। यह बहुत असरदार गाना गाते थे और श्रोतागण इनके गाने को सुनकर बहुत आनन्दित होते थे।

दौलत खाँ के छोटे भाई का नाम अली अहमद खाँ था। यह बड़े अच्छे ख्याल गायक थे और बहुत जम कर गाते थे। यह पहले बंगाल की रियासत अगरतल्ला में कुछ काल तक रहे। बाद में यह कुछ दिनों तक नेपाल में भी

रहे। परन्तु अपने भाई दौलत खाँ के स्वर्गवास के पश्चात् यह जोधपुर चले गये। यह कलकत्ते में भी बहुत साल तक रहे और वहाँ इन्होंने बहुत से लोगों को संगीत की शिक्षा दी। यह कभी-कभी आसाम भी जाया करते थे। बंगाल और आसाम के लोक संगीत का भी इन्होंने अध्ययन किया था। इनका स्वर्गवास जोधपुर में 1912 में हुआ था।

अतरौली के एक प्रसिद्ध गायक का नाम गुलाम हुसैन था और यह नौहार बानी का ध्रुपद बहुत अच्छा गाते थे। यह मानतौल खाँ के शिष्य कुतुबबख्श के लड़के थे। इनका जन्म जोधपुर में हुआ था और इनको अपने पिता से शिक्षा मिली थी। यह भी जोधपुर दरबार में नियुक्त हो गये थे।

अतरौली में एक मुन्नू खाँ नाम के गायक भी थे जो ध्रुपद और धमार बहुत अच्छा गाते थे। बहुत-सी रियासतों में इन्हें बहुत ख्याति मिली। उदयपुर के राणा तो इनके शिष्य हो गये थे। यह जीवन भर उदयपुर में रहे और बहुत नाम कमाया।

अब हम अतरौली के एक ऐसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ की चर्चा करते हैं जिनकी संतान ने आधुनिक युग में एक नये घराने का निर्माण किया था और जिसकी गायकी को बहुत ख्याति मिली है। यह थे अतरौली के ख्वाजा अहमद खाँ। यह ध्रुपद की डागुर बानी के विशेषज्ञ थे और इनके गाने में बहुत असर था। इन्होंने संगीत अपने घराने के बड़े-बूढ़ों से सीखा था। इनके पूर्वज ब्राह्मण थे परन्तु औरंगजेब के राज्य-काल में उनका धर्म-परिवर्तन हुआ था और वह मुसलमान बन गये थे।

यहाँ पर हम कुछ क्षणों के लिए प्रस्तुत वर्णन में विषयान्तर करेंगे और दो-एक बातों की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे। पहली बात तो यह है कि अतरौली के अधिकांश मुसलमान गायकों का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। दूसरी बात यह है कि अधिकांश गायक ध्रुपद और होरी-धमार की परम्परा के अनुयायी थे और इन्हीं शैलियों को अधिकतर व्यवहार में लाते थे। इन गायकों में ध्रुपद शैली प्रधान थी और ख्याल का केवल द्वितीय स्थान था। जिस विशेष घराने की चर्चा अब हमने छेड़ी है उस पर भी यह बात विशेष ढंग से लागू है। यह दोनों बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं और इन पर दो-चार शब्द कहना आवश्यक है।

हम अपनी पहली पुस्तक "आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत" में इस बात की ओर संकेत कर चुके हैं कि संगीत में संस्कारों का बड़ा मूल्य होता है।

आज संगीत के कुछ किताबी कीड़े और जोशीले विद्वान बड़े उत्साह से प्रचीन भारतीय संगीत की व्याख्या करते हैं और कभी-कभी अपने रोष के वश में होकर यह भी कहते हैं कि मुसलमान गायकों और वादकों ने हिन्दुस्तानी संगीत को अशुद्ध बनाया है। भारतीय इतिहास ही ऐसी जहरीली भ्रान्ति का प्रतीकारक बन सकता है। यह कहना कि सारे भारतीय मुसलमान देश-द्रोही के समान थे और वह भारतीय संस्कृति का विरोध अथवा खण्डन करते थे, न्यायसंगत नहीं है। साहित्य और संगीत के क्षेत्र में अब्दुर्रहीम खानखाना, तानसेन, हरिदास स्वामी डागुर, जायसी, शेख, आलम, नेवाज, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, अष्टछाप के कवि, अतरौली के महबूब खाँ "दरस", मथुरा के कल्ले खाँ "सरस", आगरे के फैयाज खाँ, "प्रेमप्रिया" और खुर्जा के जहूर खाँ "रामदास" भारतीय संस्कृति में हिन्दु-मुसलिम एकता के अमर प्रतीक माने जायेंगे। आज जब हम भारतीय संस्कृति की संकलनात्मक प्रवृत्तियों और शक्तियों का संघटन कह रहे हैं और भारत की जनता के संकलित व्यक्तित्व का निर्माण कर रहे हैं तो इस देश के संगीतज्ञों को भारतीय और अभारतीय वर्गों में विभाजित करना और साम्प्रदायिक मतभेद अथवा द्वेष का सहारा लेना भारतीत संस्कृति के साथ अन्याय करना होगा और उसके शाश्वत मूल्यों की उपेक्षा करने के बराबर होगा। हमें सावधान रहना चाहिए कि हम ऐसे मिथ्यानिरूपण के शिकार न बनें और ऐसे कट्टर विचारकों से दूर भागें जो संगीत के विद्वान बन कर साम्प्रदायिकता का बीज बोते हैं।

हम इस बात को कहने में संकोच नहीं करते कि तानसेन और हरिदास स्वामी के युग से लेकर आधुनिक युग तक संगीत के पुनरुत्थान में मुसलमान कलाकारों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। हम इसको कहने में भी नहीं हिचकिचाते कि जिस ख्याल शैली पर हमारा आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत आधारित है उसके निर्माता अधिकतर मुसलमान संगीतज्ञ ही रहे हैं। हम यह बताना भी आवश्यक समझते हैं कि प्रमुख मुसलमान घरानेदार संगीतज्ञों की आत्मा भारतीय है और वह भारतीय संस्कारों के रंग में डूबी हुई है। उनकी रगों में भारतीय खून दौड़ता है और उनके संस्कार भारतीय हैं। राम और सीता, कृष्ण और राधा, शिव और पार्वती ही उनकी रचनाओं के विषय थे और हैं। भक्ति और शृंगार की मधुर भाषा वृजभाषा उनकी रचनाओं की भाषा थी और अब तक है। जिन रागों की वह भावुक व्याख्या करते थे वह हमारे प्राचीन संगीत की रागें थीं और हैं जिन शैलियों

को लेकर वह चले हैं उन पर भी प्राचीन संगीत की अमिट छाप पड़ी हुई है। उनके व्यावहारिक संगीत की रगों में भारतीय संस्कृति का रक्त दौड़ता है। उनमें नाम अथवा उपनाम भी भारतीय हैं—बिलास खाँ, ज्ञान-समुद्र खाँ, तान-तरंग खाँ, तानरस खाँ, रामदास "प्रेम पिया" प्राण पिया", प्रेमदास इत्यादि। तो फिर यह कहना कि उनकी भारतीय आत्मा में कोई दोष है एक द्वेष-सूचक विचार ही माना जायेगा।

अतरौली के संगीतज्ञों के साथ आगरा और मथुरा के बृजभाषा क्षेत्र के मुसलमान संगीतज्ञ भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि मुसलमान कलाकारों की आत्मा भारतीय थी और है और उनके संस्कार भी भारतीय थे। ऐसे कह कर हम भारतीय संस्कृति के हिन्दू-मुसलिम एकता के सिद्धान्त का साहसपूर्ण समर्थन ही करते हैं। जो विचारक अथवा विद्वान इस तथ्य का विरोध करते हैं वह एक तरह से भारतीय इतिहास का मिथ्या निरूपण करते हैं। क्या यह बात प्रत्यक्ष नहीं है कि मुसलमान संगीतज्ञों ने लगातार ध्रुपद की परम्परा का समर्थन किया और ध्रुपद और होरी को प्रथम स्थान दिया? क्या बहुत से नामी मुसलमानों के पूर्वज पहले हिन्दू नहीं थे? क्या उनकी भारतीय आत्मा कभी भी अभारतीय बनी थी? क्या उनके संस्कार अशुद्ध थे? हम ऐसे विचारकों से इन प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। यदि हम सत्य पर परदा न डालें और उसका दर्शन साहस से करें तो यह बात साफ हो जायेगी। इस बात पर बल देना कि मुसलमान संगीतज्ञ अभारतीय थे, राष्ट्र की आत्मा में सांस्कृतिक मतभेद का बीज बोने के समान होगा। परन्तु सच तो यह है कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत हिन्दू-मुसलिम एकता का सबसे सुन्दर प्रतीक है और हमारा कर्तव्य है कि हम इस एकता के सिद्धान्त को सदैव अमर बनाकर रखें। संगीत की इस पुनीत परम्परा को अविभाज्य रखना हमारा आपका धर्म है।

जिस विशेष घराने का वर्णन हम कर रहे हैं वह इस बात को साबित करता है कि बहुत से संगीतज्ञ ध्रुपद शैली के माध्यम ही से ख्याल शैली तक पहुँचे थे और बहुत से नामी गायक पहले ध्रुपद ही गाते थे। ख्वाजा अहमद खाँ इसी तरह के एक नामी गायक थे और इनके वंशज भी आधुनिक युग के प्रमुख ख्याल गायक माने गये हैं। यह डागुर बानी का ध्रुपद गाते थे। इनके घराने में ध्रुपद गायन ही की प्रथा थी और इन्हें अपने बुजुर्गों से ध्रुपद की ही शिक्षा मिली थी। बहुत काल तक यह जयपुर में रहे और उसके बाद यह टोंक के नवाबजादा इबादुल्ला खाँ के पास चले गये थे। इन्होंने अपना पूरा जीवन टोंक में व्यतीत किया और नवाब इब्राहिम खाँ के जमाने में इनका

देहान्त हुआ। सुना है कि यह बहुत असरदार गाना गाते थे और संगीत विद्या के सूक्ष्मग्राही विद्वान और पारखी भी थे।

ख्वाजा अहमद खाँ के भाई का नाम जहाँगीर खाँ था और इनका जन्म उनियारे में हुआ था। इनके पूर्वज भी अतरौली के रहने वाले थे और इन्हें भी अपने भाई की तरह अपने घराने ही में संगीत की शिक्षा मिली थी। परन्तु होरी और ध्रुपद के अतिरिक्त यह ख्याल भी बहुत अच्छा गाते थे। अपने जमाने के विद्वान गायकों में इनकी गणना होती थी और इन्हें विभिन्न शैलियों पर अस्वाभाविक अधिकार था। यह उनियारे के ठाकुर फतहसिंह के पास कुछ काल तक रहे और वह इन्हें बहुत मानते थे और इनका बड़ा आदर करते थे। इसके बाद यह बहुत दिनों तक टोंक और जयपुर के भी दरबार-गायक रहे। इनका स्वर्गवास उनियारे में हुआ।

अब हम बम्बई के प्रसिद्ध गायक उस्ताद अल्लादिया खाँ के बारे में दो चार शब्द कहेंगे। आधुनिक युग में संगीत के क्षेत्र में इनका विशेष स्थान था और गायकों, वादकों और श्रोताओं के समाज में इनका बहुत आदर होता था। यह अपने जमाने के धुरन्धर गायक थे और एक विद्वान संगीतज्ञ थे। इनके पास रागों और बंदिशों का अनूठा संग्रह था और इनको बहुत-सी अप्रचलित रागों का भी ज्ञान था। सबसे बड़ी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इनको इस देश के संगीतज्ञों और संगीत के विद्वानों से जीवन भर हार्दिक मान्यता मिली। जहाँ तक इनकी गायकी का सम्बन्ध था उसको भी प्रथम श्रेणी के गायकों और वादकों का पूरा अनुमोदन मिला।

परन्तु यह बताना भी आवश्यक है कि पहले यह ध्रुपद ही गाते थे और बाद में ही इन्होंने ख्याल का अभ्यास किया और एक सुयोग्य ख्याल गायक बने। इनको अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता ख्वाजा अहमद खाँ से मिली थीं। परन्तु अपने पिता के स्वर्गवास के पश्चात् यह अपने चाचा जहाँगीर खाँ से शिक्षा प्राप्त करने लगे। जहाँगीर खाँ ध्रुपद और होरी के अलावा ख्याल शैली के भी मर्मज्ञ थे। अपने चाचा के संपर्क में आकर यह स्वाभाविक था कि तरुण गायक अल्लादिया खाँ का ध्यान ख्याल शैली की ओर भी जाये। जहाँगीर खाँ ख्याल भी इतना अच्छा गाते थे और उसे इतना रोचक बनाते थे कि उनके भतीजे और शिष्य अल्लादिया खाँ को उनसे बहुत अधिक प्रेरणा मिली। अल्लादिया खाँ स्वभाव से ही अपनी अभिरुचि की प्रेरणा से ख्याल शैली की ओर आकर्षित हुए थे। कदाचित् अपने स्वभाव ही से वह ध्रुपद को छोड़कर ख्याल शैली के भक्त बन गये थे। यह कहना भी

असंगत न होगा कि एक प्रतिभाशील कलाकार होने के नाते अल्लादिया खाँ ने ध्रुपद शैली के कठोर अनुशासन का परित्याग किया और ख्याल की रोचक शैली को अपने मन से अपनाया। जब उनके सामने यह प्रश्न उठा कि वह किस गायकी का अभ्यास करें तो शायद मुबारक अली खाँ की पेचदार गायकी ने ही उन्हें सबसे अधिक आकर्षित किया और वह अपने ढंग से उसकी नकल भी करने लगे। कव्वाल बच्चों की प्रामाणिक गायकी का अनुवाद करने में यदि वह बहुत हद तक असफल भी रहे तो फलस्वरूप उन्होंने अपनी एक अलग गायकी का अवश्य निर्माण किया जो पेचदार फिरत पर आधारित थी और अपने ढंग की निराली गायकी थी। अल्लादिया खाँ मुबारक अली खाँ की बलदार फिरत के इतने बड़े भक्त थे कि वह स्वयं यह कहा करते थे कि जो कुछ वह गाते थे वह उस गायकी की धुँधली छाया भी नहीं थी और वह उसका ठीक अनुवाद करने में असमर्थ थे। परन्तु उसके सहारे ही उन्होंने अपनी एक अलग गायकी का आविष्कार किया।

आगरा घराने के नत्थन खाँ और अतरौली घराने के अल्लादिया खाँ दोनों अलग-अलग ढंग से इस गायकी से प्रभावित हुए थे परन्तु अल्लादिया खाँ ने अपने ढंग से अपनी गायकी में इस घरानेदार गायकी का अनुवाद करने का भरसक प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक नई गायकी का जन्म हुआ जिसे अल्लादिया खाँ की शिष्य-परम्परा ने बाद में अपनाया और उस पर जी लगा कर अभ्यास किया।

अल्लादिया खाँ का जीवन भी आरम्भ काल से परिवर्तनशील रहा था और उन्होंने संगीत के क्षेत्र में बहुत अनुभव प्राप्त किया। अपनी संगीत-शिक्षा के अलावा उन्होंने बहुत-से प्रतिभासंपन्न गायकों को भी सुना था और गायन-शैली अथवा गायकी के भेदों और चमत्कारों का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। यदि यह गुण उसमें न होता तो वह एक नई गायकी का आविष्कार करने में असमर्थ रहते और इतने बड़े गायक न बनते। व्यावहारिक संगीत के वर्षों के अनुभव ने और उसके अध्ययन ने उनके ज्ञान को अथाह बना दिया था। यदि ऐसा न होता तो वह एक नई गायकी का आविष्कार कभी न कर पाते। यही कारण था कि उनके जीवन की घटनायें भी इतनी रोचक बन गई थीं।

अपनी संगीत-शिक्षा के अन्त होने पर अल्लादिया खाँ जयपुर के रईस नवाब कल्लन खाँ के यहाँ नौकर हो गये थे। सुना है कि नवाब कल्लन खाँ को संगीत का बड़ा अच्छा ज्ञान था और वह बड़े भावुक गुण-ग्राहक थे।

इनके पास अल्लादिया खाँ कुछ वर्षों तक रहे और बाद में बड़ौदा चले गये। वहाँ के समझदार रईसों ने इन्हें हाथों-हाथ लिया और बड़ौदा-नरेश भी इनके गाने से बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद बड़ौदा से बम्बई पहुँचे। बम्बई में यह कुछ ही समय रह पाये थे कि कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति ने इन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया और एक महीने लगातार इनका गाना सुना। वह इनके गाने से इतने खुश हुए कि उन्होंने अल्लादिया खाँ को अपने यहाँ नियुक्त कर दिया। महाराजा छत्रपति को अल्लादिया खाँ से बड़ा प्रेम हो गया था और वह इन्हें अपने साथ ही रखते थे। जब कभी वह चार छै महीने के लिये बम्बई आते थे तो अल्लादिया खाँ भी इनके साथ रहते थे। कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति के निधन के पश्चात् अल्लादिया खाँ स्थाई रूप से बम्बई में रहने लगे। धीरे-धीरे बम्बई के लोगों को इनका पता चला और वह इनके भक्त बनने लगे। परन्तु इनका जीवन इतना परिवर्तनशील था कि यह चार वर्ष तक कलकत्ते के सेठ दुलीचन्द के पास भी पहले रह चुके थे। यह मानना पड़ेगा कि जो मान-सम्मान इन्हें महाराष्ट्र में और विशेषकर बम्बई में मिला वह कहीं और नहीं मिला। धीरे-धीरे इनकी ख्याति देश भर में फैल गई। यह महाराज होल्कर के यहाँ भी आठ महीने तक नियुक्त रहे थे परन्तु बम्बई फिर लौट कर आ गये थे। इन्हें लोग बम्बई ही से संबन्धित करते थे और यह भारतवर्ष भर में "बम्बई के अल्लादिया खाँ" कहलाते थे। यथार्थ में बम्बई इनके जीवन का केन्द्र माना जाता था। इनके सम्पर्क से बम्बई ऐसे शहर को भी बहुत ख्याति मिली।

बम्बई के लोगों ने ही इनकी गायकी का सबसे अधिक लाभ उठाया। अपने जीवन काल ही में इनकी गायकी को बहुत सम्मान मिला था। इनके शिष्यों ने भी इस गायकी का काफी प्रचार किया। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि अल्लादिया खाँ ही अपनी गायकी की प्रामाणिक व्याख्या करते थे और वही उसके अद्वितीय अनुवादक भी थे। ऐसा लगता है कि अल्लादिया खाँ के नाम का एक घराना भी बन गया है। इस बात का फैसला हम और आप नहीं कर सकते। समय और काल अथवा भविष्य ही इस बात का निर्णय कर सकेगा कि इस घराने का क्या स्थाई रूप है और परम्परागत संगीत से इसका क्या सम्बन्ध है। अभी हम कुछ नहीं कह सकते।

जहाँ तक उस्ताद अल्लादिया खाँ की गायकी का सम्बन्ध था, हमें यह बात माननी पड़ेगी कि उनके प्रमुख शिष्यों ने उसका ठीक-ठीक अनुवाद और प्रचार किया था। किसी भी घराने का अगुआ अथवा मार्गदर्शक ही अपने

घराने की शैली का सबसे बड़ा टीकाकार अथवा अनुवादक माना जाता है। उसके शिष्य भी उसी की प्रामाणिक गायकी का अनुकरण करते हैं और उसके पदचिन्हों पर चलते हैं। शिष्य अपने गुरु को अपना आदर्श मानते हैं और उसके भक्त और अनुयायी बनकर उसकी शैली की पूरी नकल करने लगते हैं। जिन शिष्यों में अपूर्व बुद्धि होती है और जो परिश्रम और क्रियाशीलता को अपना साधन बनाते हैं, उन्हें अपनी साधना में अधिक सफलता भी प्राप्त होती है और वह अपने को होनहार और बुद्धिमान गायक साबित करते हैं। अल्लादिया खाँ ऐसे अद्वितीय गायक ने अपने प्रमुख शिष्यों को बड़े परिश्रम से और बड़े स्नेह के भाव से संगीत-शिक्षा दी और उन्हें सुयोग्य बनाया।

उनके तीन प्रधान शिष्यों को हम इनका सर्वश्रेष्ठ शिष्य मानते हैं। वैसे तो बहुत-से और सज्जन भी अब अपने को अल्लादिया खाँ का शिष्य बताते हैं परन्तु इसको हम उनकी श्रद्धा का प्रदर्शन ही मानेंगे अथवा इनकी भक्ति तथा सद्भावना का ही रूप मानेंगे। उस्ताद अल्लादिया खाँ के तीन प्रमुख शिष्य थे। अपने दोनों सुपुत्रों मंजी खाँ और भूरजी खाँ को अल्लादिया खाँ ने बहुत अच्छी शिक्षा दी थी और यह दोनों नामी गायक बन गये थे। दुर्भाग्यवश मंजी खाँ की अकाल मृत्यु 1937 में हो गई और भूरजी खाँ का स्वर्गवास 1950 में हुआ। अल्लादिया खाँ का निधन 1946 में हुआ था। इनके तीसरे शिष्य का नाम केसर बाई केरकर है जो इनकी भारत-विख्यात अद्वितीय शिष्या मानी जाती है। यह प्रौढ़ा गायिका अपने ढंग की निराली गायिका है। यह कहना कदाचित ठीक होगा कि अल्लादिया खाँ ने जितने काल तक केसर बाई को शिक्षा दी उतने समय तक शायद और किसी शिष्य को शिक्षा नहीं दी। यह केसर बाई का सौभाग्य था कि इन्हें ऐसा सुअवसर मिला कि वह अपने पूज्य गुरु से इतनी विद्या प्राप्त कर सकीं। मंजी खाँ भी बहुत अच्छा गाते थे और लखनऊ के 1936 के अखिल-भारत-संगीत-सम्मेलन में उनका गाना बहुत जमा था। अल्लादिया खाँ के यह तीनों शिष्य अपनी-अपनी जगह निराले थे। इन तीनों के अतिक्ति मोगूबाई कुरडीकर, गुल्लू-भाई जसदान, लीलूबाई शेरगाँवकर और अजमत हुसैन खाँ के नाम भी उल्लखनीय हैं।

अब इस वर्णन को हम और खुलासा बनायेंगे। सबसे पहले हम मंजी खाँ के बारे में यह बताना चाहते हैं कि इनका असली नाम वदरुद्दीन खाँ था और यह अल्लादिया खाँ के मँझले बेटे थे। इनको अपने पिता से अपने घराने की गायकी की पूरी शिक्षा मिली थी और यह बड़े सुलझे हुए कुशल गायक

थे। अल्लादिया खाँ के शागिर्दों में जैसी अपूर्व बुद्धि मंजी खाँ में थी वैसी शायद और किसी शागिर्द में नहीं थी। परन्तु इसके साथ-साथ यह कहना भी ठीक होगा कि एक विद्वान गायक होने के नाते अल्लादिया खाँ भी अपने शिष्यों को उनकी बुद्धि और योग्यता के अनुसार ही शिक्षा देते थे। जो शिष्य उनकी शिक्षा का अधिक-से-अधिक लाभ उठाते थे और अपनी प्रतिभा के सहारे उन्नति करते जाते थे उनको वह हर तरह से कला का सुपात्र मानते थे और उनकी ओर अधिक ध्यान देते थे। नामी गायकों में ऐसा होना स्वाभाविक होता है। इसी तरह शिष्य भी अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ केवल मेहनती होते हैं और बुद्धिमान नहीं होते। ऐसे शिष्य अपनी संगीत शिक्षा ही को सब कुछ मानते हैं और उसी पर निर्भर रहते हैं। उनकी अपनी प्रतिभा में यह गुण नहीं होता कि वह उस शिक्षा को अनोखे ढंग से सफल और सार्थक बनायें। परन्तु मंजी खाँ को उत्तम शिक्षा भी मिली थी और इसके साथ-साथ उनमें अपूर्व बुद्धि भी थी। वह सचमुच में एक प्रतिभा सम्पन्न गायक थे। यही कारण था कि उनकी ख्याति बम्बई और महाराष्ट्र के अलावा सारे देश में भी फैल गई थी। सांगली, जमखंडी, मिरज, मुधौल और बड़ौदा ऐसी रियासतों से उन्हें सदैव निमंत्रण आते थे। वह इतने सभ्य और शिष्ट थे कि कुछ विशेष राजा-महाराजा भी इनके साथ उठते बैठते थे और उनके साथ बराबरी का व्यवहार करते थे। आधुनिक युग में ऐसे संगीतज्ञों की संख्या बहुत कम रही है। मंजी खाँ के चरित्र में आत्म-सम्मान का भाव था और इसलिये वह रईसों से, राजाओं से और पढ़े-लिखे लोगों से आजादी से मिलते-जुलते थे और इन्हें कोई संकोच नहीं होता था। वह स्वयं एक पढ़े-लिखे आदमी थे और सामाजिक समता के मूल्य को जानते थे। शायद यह कहना गलत न होगा कि यदि मंजी खाँ को और उम्र मिलती तो इस देश के सर्वश्रेष्ठ गायकों में उनकी गणना होती। इनके बहुत-से शिष्य हैं परन्तु उनमें मल्लिकार्जुन मंसूर का नाम सबसे पहले आता है।

अल्लादिया खाँ के दूसरे बेटे का नाम शमसुद्दीन खाँ था परन्तु सारा देश इन्हें भूरजी खाँ के नाम से जानता था। इन्होंने भी अपने पिता से ख्याल की शिक्षा प्राप्त की थी और यह एक कुशल गायक थे। यह कोल्हापुर रियासत में नियुक्त हो गये थे। इनके प्रधान शिष्य गजानन बुआ जोशी और कानेटकर माने जाते हैं। कुछ काल तक मोगूबाई ने भी इनसे गाना सीखा था।

केसरबाई केरकर को भी हम अल्लादिया खाँ का प्रधान शिष्या मानते हैं और इनकी विद्वत्ता को देखते हुए किसी और गायिका की तुलना शायद इनसे नहीं की जा सकती। भारतवर्ष की प्रसिद्ध गायिकाओं में यह एक विद्वान कलाकार मानी जाती हैं और इनको अपने पूज्य गुरु से बहुत तालीम पहुँची थी। देवास के प्रसिद्ध गायक स्व० रजबअली खाँ ने एक अवसर पर इन पंक्तियों के लेखक को बताया था कि अल्लादिया खाँ ने केसर बाई को शिक्षा देने में कुछ कसर नहीं छोड़ी और इनको जी भर कर बताया था।

इनका जन्म गोआ के केर नाम के स्थान पर हुआ था और इनको छुटपन से संगीत में स्वाभाविक रुचि थी। जैसे-जैसे इनको जैसा अवसर मिलता गया यह संगीत सीखने का पूरा प्रयत्न करती रहीं। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में इन्होंने वझे बुआ, भास्कर राव बखले और बरक्तुल्ला खाँ से भी कुछ-कुछ समय तक संगीत सीखा था। कुछ समय के पश्चात् ही यह अल्लादिया खाँ की शिष्या बन गईं और इन्होंने बीस वर्ष तक उनसे गाना सीखा। केसर बाई को इसका श्रेय है कि इन्होंने अपने गुरु की पेचीदा गायकी का अभ्यास करके उसमें अपने ढंग से कुशलता प्राप्त की है। इस गायकी की विशेषज्ञ बन जाने से इनका देश भर में नाम भी हुआ। यह कहना असंगत न होगा कि इनके जोड़ की दूसरी गायिका अब इस देश में नहीं है। सन् 1953 में इन्हें राष्ट्रपति के हाथों 'पद्मश्री' उपाधि प्राप्त हुई और गुणीजनों से भी मान्यता प्राप्त हुई थी।

उस्ताद अल्लादिया खाँ के परिवार के और संगीतज्ञों के बारे में भी हमें थोड़ी-बहुत जानकारी होना चाहिए।

हैदर खाँ अल्लादिया खाँ के छोटे भाई थे और ख्वाजा अहमद खाँ के छोटे लड़के थे। अपने बड़े भाई की तरह इन्हें भी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली थी और बाद में इन्होंने भी अपने चाचा जहाँगीर खाँ से सीखा था। इनकी आवाज पतली थी मगर दमदार और सुरीली थी। यह बहुत तैयार नहीं गाते थे परन्तु एक असरदार गवैये थे। अपने भाई अल्लादिया खाँ की तरह इनकी रागें भी सच्ची तथा प्रामाणिक होती थीं। रागों की सच्चाई को यह प्रथम स्थान देते थे। यह कई रियासतों में नौकर रहे। कोल्हापुर में तो इन्होंने तीस वर्ष काटे। पेंशन मिलने के पश्चात् यह बम्बई में रहने लगे। बड़ौदा दरबार की प्रसिद्ध गायिका लक्ष्मीबाई इन्हीं की शिष्या थीं। महाराष्ट्र में इनके मानने वाले बहुत थे। इनका स्वर्गवास उनियारा रियासत में 1935 में हुआ।

अल्लादिया खाँ के एक और भाई थे जिनका नाम नत्थन खाँ था। गायक की हैसियत से तो इनका बहुत नाम नहीं हुआ परन्तु यह बड़े अच्छे शिक्षक थे और बहुत-से लोगों को इन्होंने शिक्षा दी। जिनमें मोगूबाई करडीकर की भी गणना होती है। इनका देहान्त 1946 में हुआ।

बशीर खाँ ख्वाजा अहमद खाँ के बड़े सुपुत्र थे और अल्लादिया खाँ के भाई थे। इनका जन्म जोधपुर में हुआ था और इनको भी संगीत की शिक्षा अपने घराने से मिली थी। परन्तु आवाज खराब होने के कारण इनका मन गाने में नहीं लगा। यह घर से बाहर निकल गये और कलकत्ते पहुँच कर भैया साहब गनपत राव के हारमोनियम में शागिर्द हो गये। भैया जी अथवा भैया साहब हारमोनियम के बेजोड़ बजाने वाले थे और अच्छे-अच्छे वाद्य संगीत के कुशल कलाकार भी उनकी संगीत-कला की हार्दिक प्रशंसा करते थे। हारमोनियम ऐसे विदेशी बाजे को भैया गनपत राव ने बहुत ऊँचे आसन पर बिठा कर उसका मान बहुत अधिक बढ़ाया। बशीर खाँ ने भी हारमोनियम-वादन में सारे देश में बड़ी ख्याति पाई थी। अपने गुरु भैया जी के साव सेठ दुलीचन्द के यहाँ भी यह बरसों कलकत्ते में रहे। एक बार जब यह होली के जलसे में इंदौर गये तो महाराजा इंदौर इनके बाजे से इतने खुश हुए कि इन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया। इनका स्वर्गवास जोधपुर में 1938 में हुआ। लोग कहते हैं कि जब भैया जी को यह पता चला कि बशीर खाँ अतरौली के एक प्रतिष्ठित घराने से सम्बन्धित थे तो उन्होंने और भी स्नेह के भाव से इन्हें अपनी वादन-कला सिखाई। बशीर खाँ भी बाजे पर बड़े सुन्दर बोल निकालने लगे थे और सारे देश में इनका नाम था।

ध्रुपद और ख्याल गायकों के घराने के होकर भी बशीर खाँ ने बाजे का शौक किया और वह बोल-बनाव की ओर ही झुक गये। यह एक अनहोनी-सी बात थी। आश्चर्य तो इस बात का था कि जिस घराने में लोकप्रिय शैलियों का बहिष्कार किया जाता था उसी घराने का एक कलाकार बोल-बनाव ही की जीवन भर साधना करता रहा। आधुनिक शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में इससे बड़ा विरोधाभास नहीं हो सकता और न इस तरह का प्रतिवाद अथवा व्याघात ही हो सकता है। परन्तु यह बात एक और तथ्य की ओर संकेत करती है : हिन्दुस्तानी संगीत की सर्वव्यापी परम्परा में कई शैलियों का समावेश है और उसकी सांस्कृतिक आत्मा अविभाज्य है। अल्लादिया खाँ भी इस बात को मानते थे।

# 11

# मथुरा का घराना

जो लोग लखनऊ में बहुत काल से रह रहे हैं और जिन्हें संगीत से विशेष प्रेम है अथवा जिनका थोड़ा-बहुत सम्पर्क भी संगीतज्ञों से रहा है उन्हें शायद कभी-कभी लखनऊ के 1924 और 1925 वाले विराट संगीत-सम्मेलन कुछ क्षणों के लिये याद आ जाते होंगे। इन दो संगीत-सम्मेलनों को पंडित भातखण्डे और राजा नवाब अली ऐसी महान विभूतियों ने आयोजित किया था। ऐसे बहुत-से संगीत के श्रोताओं को अथवा संगीत के भावुक रसिकों को याद होगा कि इन संगीत-सम्मेलनों में दो-चार संगीतज्ञों का बहुत नाम हुआ था। बड़ौदा के गायक उस्ताद फैयाज खाँ, रामपुर के सरोद-वादक फिदा हुसैन, लखनऊ के तबला-वादक आबिद हुसैन, बनारस के तबला-वादक बीरू मिश्र, मैसूर बैंड के निर्माता और वाइलिन-वादक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ और मथुरा के चन्दन चौबे यह सब लोकप्रिय कलाकार साबित हुए थे। फैयाज खाँ की जौनपुरी, मुलतानी और उनकी राग भैरवी में गाई गई लखनऊ की मशहूर ठुमरी "बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय" लोगों के कानों में अब तक गूँज उठती है और पचास वर्ष पुरानी याद फिर से ताजा हो जाती है। सहसा हमारे कानों को वह आह फिर से सुनाई पड़ती है—"दैया कहाँ गये वह लोग?" फिदा हुसैन के सरोद के सुर में भींगे हुए तार मानों छिड़ जाते हैं और बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ ऐसे सेनिया-वादकों की याद फिर से जाग उठती है। अलाउद्दीन खाँ के वाइलिन-वादक के साथ बनारस के बीरू मिश्र की तबले पर संगत अभी भी कुछ क्षणों के लिए कभी-कभी कानों को सुनाई देती है। एक प्रातः काल की संगीत गोष्ठी की याद फिर से

ताजा हो जाती है और हमारे कान फिर से चंदन चौबे के मधुर गान को सुनने लगते हैं। वह दृश्य हमारी आँखों के सामने फिर से आ जाता है और हमारी कल्पना भी उस महफिल के संगीतमय वातावरण में प्रवेश कर जाती हैं। तब मथुरा के चंदन चौबे की उभरती जवानी थी और उनके गले में सरस्वती वास करती थी। उस दिन वह तन्मय होकर और बड़े आनन्द से झूम-झूम कर उस राग को गा रहे थे और अपने सुनने वालों को बेचैन कर रहे थे। लखनऊ के भावुक श्रोता भी इस संगीत का बहुत आनन्द ले रहे थे। यह वही श्रोता थे जो दूसरे दिन प्रातः काल की महफिल में फैयाज खाँ की भैरवी की मशहूर ठुमरी सुनकर बेहाल हो गये थे। कैसरबाग की बारादरी में गाई गई लखनऊ की यह पुरानी ठुमरी लोगों के दिलों में उतर गई थी और कुछ सुनने वालों के तो आँसू भी निकल आये थे। उसी संगीत-सम्मेलन में मथुरा के चन्दन चौबे का गाना भी जमा था।

इसके पहले शायद लखनऊ वालों ने संगीत के सम्बन्ध में मथुरा ऐसी जगह का नाम कभी नहीं सुना था। चन्दन चौबे ही ने एक तरह से आधुनिक काल में जनता के आगे मथुरा का नाम मशहूर किया। इसके पहले लोग इस बात को भी जानते थे कि मथुरा में भी अच्छे-अच्छे गायक और वादक गायक हुए हैं। जिन लोगों को चंदन चौबे की याद नहीं है अथवा जो उनसे कभी नहीं मिले थे वह इस बात की भी कल्पना नहीं कर सकते कि वह इतने नामी गायक थे और उनके गाने में इतना असर था। वह आगरा घराने के मशहूर गायक गुलाम अब्बास खाँ के शिष्य थे और शास्त्रीय संगीत के अनुयायी होते हुए भी लोकप्रिय संगीत के भी भावुक अनुवादक थे। इस घटना के बीस-पच्चीस वर्षों के बाद जब कुछ लोग चन्दन चौबे से मथुरा मिलने गये थे तो अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े उन्होंने अपने एक तरुण शिष्य का गाना उन लोगों को सुनवाया था। 1924-25 की उस संगीत-गोष्ठी को याद करके उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। उसी पलंग पर लेटे-लेटे उन्होंने मथुरा के पुराने संगीतज्ञों के बारे में भी थोड़ा-बहुत बताया था। इस घटना को हुए भी तीस-चालीस वर्ष हो गये हैं। परन्तु जब कभी चन्दन चौबे ऐसे नामी गायक को याद करते हैं तो हमें मथुरा के परम्परागत और घरानेदार संगीत की याद फिर से ताजा हो जाती है। हम अपनी पहली पुस्तक "हमारा आधुनिक संगीत" में यह बात बता चुके हैं कि वृन्दावन के हरिदास स्वामी डागुर तानसेन के पूज्य गुरु की शिष्य-परम्परा ने मथुरा को भी संगीत का केन्द्र बनाया था। उनके शिष्यों ने उनकी ध्रुपद शैली का बहुत जबरदस्त प्रचार

बृज भाषा के समस्त व्यापक क्षेत्र में किया था। इस संगीत-परम्परा का मुख्य केन्द्र मथुरा था। बहुत-से लोग चन्दन चौबे का गाना सुन कर बड़े आनन्द से भर जाते थे। परन्तु उनकी कल्पना शायद इस प्रसिद्ध लोकप्रिय गायक को मथुरा की संगीत-परम्परा से सम्बन्धित नहीं कर पाती थी। चन्दन चौबे आगरा घराने के सुप्रसिद्ध गायक और मार्गदर्शक गुलाम अब्बास खाँ के शिष्य थे ही, इस बात का सुबूत था कि आगरा और मथुरा की संगीत-परम्परा बहुत-कुछ एक थी और उनके संगीतज्ञों का आपस में पारस्परिक सम्बन्ध था। दोनों बृजभाषा क्षेत्र के अन्तर्गत थे और दोनों की कला-सम्बन्धी विचारधारा भी एक-सी थी।

संगीत परम्परा के इस ऐतिहासिक पक्ष पर विचार करते समय यह अनिवार्य हो जाता है कि हम मथुरा घराने की भी चर्चा करें और संगीत–परम्परा के अदृश्य सूत्रों की एक बार फिर से कल्पना करें। घरानों से सम्बन्धित इस छोटी भी पुस्तक में यह बताना आवश्यक है कि और प्रमुख घरानों की तरह मथुरा का घराना भी संगीत के क्षेत्र में अपना महत्व रखता था। परन्तु इस प्रसंग में हम एक विशेष तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। कुछ घराने प्राचीन ध्रुपद संगीत से सम्बन्धित रहे हैं और उन पर प्राचीन संगीत की अमिट छाप अंकित है। अतरौली और मथुरा के घरानों की गणना ऐसे घरानों में होती है। परन्तु कुछ घराने ऐसे भी हैं जिन्हें हम आधुनिक युग के घराने मानेंगे। खूर्जा और सहसवान के घरानों की गणना ऐसे घरानों में होगी।

मथुरा के सबसे प्राचीन घरानों का ज्ञान हमको अधूरा-सा है। यदि हम हरिदास स्वामी की शिष्य-परम्परा से मथुरा के प्राचीन संगीत को सम्बन्धित करना चाहें तो घटनाओं की अविच्छिन्न शृंखला एक अविरत धारा के समान नहीं दिखाई देती और न परम्परा के ऐतिहासिक क्रम में कोई निरन्तरता ही दिखाई देती है। संगीत के इतिहास की ऐसी खाली जगहों को हम आसानी से नहीं भर पाते। यही कारण है कि हरिदास स्वामी की ध्रुपद-परम्परा का मथुरा से क्या विशेष संबन्ध था इसके बारे में हमारी जानकारी अब तक अधूरी ही है। हम इतना अवश्य जानते हैं कि संगीत का मुख्य केन्द्र होने के नाते मथुरा में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक क़ाल तक बहुत से घरानों का उत्थान और पतन हुआ। जो कुछ भी परिवर्तन मथुरा के संगीत में होते रहे, हमें यह बात मानना पड़ेगी कि मथुरा में परम्परागत संगीत का लोप कभी नहीं हुआ। जब मुसलमान संगीतज्ञों ने हिन्दू संगीतज्ञों की जगह

ली तब भी संगीत की परम्परागत विचारधारा में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। परम्परागत संगीत का चेहरा कभी नहीं बिगड़ा और उसकी आत्मा में भी कोई दोष नहीं आया। इसीलिए जिस मथुरा के घराने की चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं उसके अधिकांश संगीतज्ञ मुसलमान थे परन्तु उन सबकी आत्मा भारतीय थी। बृजभाषा साहित्य की पुरानी विचारधारा के वातावरण में ही उनके संगीत का पोषण हुआ था और वह सब उसी पुनीत परम्परा के अन्तर्गत थे। इसलिए उनके संस्कार भी निर्दोष थे।

हम मथुरा का वर्णन अठारहवीं शताब्दी से आरम्भ करते हैं। सुना जाता है कि मथुरा के सूबेदार नवाब अली खाँ के जमाने में वहाँ दो बड़े नामी गायक थे जो कौड़ीरंग और पैसारंग के नाम से प्रसिद्ध थे। यह आपस में भाई थे। यह दोनों ध्रुपद धमार और ख्याल ऐसी शैलियों में पारंगत थे और इन सबकी एक तरह से कलात्मक व्याख्या करते थे। इनको इस बात का श्रेय था कि इन्हें सब शैलियों पर अस्वाभाविक अधिकार प्राप्त था। इनके नाम केवल इनकी विनीत भावना के सूचक थे। इनके गुण की तुलना तो मुहरों और अशरफियों से ही की जा सकती थी। गायन-कला के अतिरिक्त इनके घराने में सितार-वादन की भी प्रथा थी। यही कारण था इनके घराने में बहुत से गायकों और वादकों का जन्म हुआ।

हम एक और प्रसिद्ध गायक का नाम सुनते हैं जिनका जन्म 1800 के बहुत पहले हुआ था। इनका नाम पान खाँ था। यह सूबेदार नवाब अली खाँ के दरबार में नौकर थे। इन्हें भी ध्रुपद और धमार से लेकर ख्याल ऐसी शैली पर भी पूर्ण अधिकार था। यह बड़े नामी और मजे हुए गायक थे। परन्तु यह केवल गायक ही नहीं थे, यह सितार-वादन के भी उस्ताद थे। इस तरह यह गायन-कला और वादन-कला दोनों के मर्मज्ञ थे। इसका परिणाम यह भी हुआ कि इनके घराने में बाद में दोनों शैलियों का रिवाज रहा। इस घराने के वंशज अभी भी कण्ठ संगीत और वाद्य संगीत दोनों में अभिरुचि रखते हैं और दोनों के विशेषज्ञ हैं। नवाब नबी खाँ ने पान खाँ को एक जागीर भी दे रखी थी और उनको हर तरह से सम्मानित किया था।

पान खाँ के सुपुत्र का नाम बुलाकी खाँ था। इनको लोग संगीत का पण्डित मानते थे। इनको संगीत के शास्त्रों का गहरा ज्ञान था और इनकी आत्मा बृज की भूमि से घुल-मिल गई थी। लोगों के बीच में यह एक सर्वप्रिय कलाकार बन गये थे और वह सब इनके प्रति स्नेह की भावना रखते थे। मानों इन्होंने सबका मन मोह लिया था। जोधपुर और अलवर ऐसी रिया-

सतों में भी यह जाते रहते थे और वहाँ इनका बहुत आदर-सत्कार होता था। परन्तु बृज के निवासी इन्हें इतना चाहते थे कि इन्हें बाहर बहुत नहीं जाने देते थे। मंदिरों के महंत इनके गाने से इतने खुश थे कि यह स्वयं बाहर जाने के बहुत इच्छुक नहीं होते थे। इनको भी हम अठारहवीं शताब्दी का संगीतज्ञ मानते हैं।

बुलाकी खाँ के सुपुत्र का नाम मेहताब खाँ था। यह भी बड़े कुशल गायक थे और इनका गायन भी मंदिरों के महंत बड़े चाव से सुनते थे। यह उन्नीसवीं शताब्दी के संगीतज्ञ थे।

यहाँ पर हम अपने पाठकों को एक बात बताना आवश्यक समझते हैं। पहले जमाने में बृज भाषा क्षेत्र के प्रतिभासंपन्न, सुरीले मुसलमान गायक आम जनता के लोकप्रिय गायक बन जाते थे। मंदिरों के महंत भी उनका गाना बार-बार बड़े चाव से सुनते थे और उन्हें निमंत्रित करते थे। यह प्रतिभा-शाली कलाकार भी राग-रागिनियों में वृजभाषा काव्य का अमृत बरसाते थे और सदियों पुरानी कृष्ण और राधा के प्रेम और मिलन की स्मृतियों को एक बार फिर से जगा देते थे। इन रागों को बृजभाषा की मधुर पंक्तियों में सुन-कर ऐसे श्रोतागण भक्ति और आनन्द के रस में डूब जाते थे। उनके प्राचीन संस्कार भी जाग्रत हो उठते थे और संगीत की पुनीत परम्परा की प्रतिध्वनि उनके कानों में गूंज उठती थी। इस संगीत से बृज की पवित्र भूमि भी रोमांचित हो जाती थी और मधुर स्वरों की कलायुक्त व्याख्या गायकों की भारतीय आत्मा को प्रतिविम्बित करती थी। यह मुसलमान कलाकार परम्परागत संगीत के अनुवादक और टीकाकार थे और मंदिरों के महन्तों के और भावुक भक्तों के सर्वप्रिय गायक थे। भक्ति और आनन्द के ऐसे वाता-वरण में जात-पांत का प्रश्न कभी नहीं उठता था। गायक और श्रोता एक ही आनन्द के प्रवाह में बहते चले जाते थे और संगीत और साहित्य की अमर विचारधारा के प्रवाह में अपने को खो बैठते थे। आगरा घराने के प्रसिद्ध गायक उस्ताद फैयाज खाँ ने इन पंक्तियों के लेखक को कई बार बताया था कि मन्दिरों के महन्त उनकी बाल्यावस्था में उनसे हर दूसरे तीसरे दिन गाना सुना करते थे और वह ऐसी प्रत्येक संगीत गोष्ठी में बड़े हर्ष से सम्मिलित होते थे। उनकी वहाँ बड़ी आवभगत होती थी और एक तरुण गायक होते हुए भी उनका आदर-सत्कार होता था। जिस तरह बहुत-से भावुक श्रोता उनका गाना बड़े चाव से सुनते थे, उसी तरह वह भी बड़े प्रेम से अपना गाना सुनाते थे। ऐसी भावनापूर्ण संगीत गोष्ठी का आयोजन करना जिसमें

भावुक जनता प्रेम से एक तरुण मुसलमान गायक का गाना बड़ी तन्मयता से सुने एक अनोखी बात थी। यही कारण था कि उस्ताद फैयाज खाँ केवल बृज का हवेली संगीत ही नहीं जानते थे परन्तु उन्हें बृजभाषा काव्य की सैकड़ों पंक्तियाँ भी याद थीं। बृजभाषा का जैसा मधुर उच्चारण वह करते थे वैसा कोई दूसरा मुसलमान गायक आज भी नहीं करता।

जिस घराने का वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं उसमें और भी अच्छे अच्छे गायक और वादक हुए थे। मेहताब खाँ के बेटे का नाम मीरबख्श खाँ था। यह बहुत सुलझे हुए गायक थे परन्तु यह सितार बजाने में भी बड़े प्रवीण थे। मथुरा के वयोवृद्ध संगीतज्ञ इनकी बड़ी प्रशंसा करते थे और कहा करते थे कि मीरबख्श खाँ सितार बजाने में बेजोड़ थे और इनका दूर-दूर तक नाम था। इनके जीवन का अधिक हिस्सा मथुरा ही में कटा। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में यह बूँदी-नरेश के अनुरोध पर बूँदी चले गये थे और वहाँ के दरबारी गायक़ बन गये थे। बूँदी के महाराज बख्त सिंह इन्हें अपना गुरु मानते थे और इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे। इनके जीवन का बाकी हिस्सा बूँदी ही में कटा। हम इनका जीवन-काल 1870 के आस-पास मानेंगे।

मीरबख्श के पुत्र का नाम अहमद खाँ था परन्तु यह गुलदीन खाँ के नाम से ही मशहूर हुए थे। इनके बारे में यह सुना जाता है कि इन्होंने सितार पर भी ऐसा जबरदस्त रियाज़ किया था कि यह एक बेजोड़ सितारिये बन गये थे। परन्तु यह वास्तव में एक बड़े सुरीले गायक ही थे और अपने गाने से लोगों को रिझा लेते थे। इन्हें देशाटन का बहुत शौक था और यह अपनी जवानी ही में मथुरा के बाहर निकल गये थे और बहुत-सी रियासतों की सैर करने लगे थे। घूमते-घामते जब यह गुजरात की रियासत लूनाबाड़ा पहुँचे तो महाराज लूनाबाड़ा इनका गाना सुनकर बहुत खुश हुए और इन्हें अपने दरबार में नौकर रख लिया और इनके शिष्य भी बन गये। वह इन्हें दूसरे-तीसरे सुना करते थे और इनकी प्रशंसा करते समय इन्हें फौरन कुछ इनाम दिया करते थे। महाराज लूनाबाड़ा बड़े भावुक और मनमौजी जीव थे और उनकी प्रशंसा भी बड़े अनोखे ढंग की होती थी। यह घटना सच्ची है और एक रोचक कहानी के समान लगती है। इसीलिए हम इसका वर्णन यहाँ कर रहे हैं। जिन सहृदय पाठकों ने हमारी पहली पुस्तक "हमारा आधुनिक संगीत" पढ़ी है, उन्हें याद होगा कि महाराष्ट्र के एक भावुक रईस भी जब किसी अच्छे गायक का गाना सुनते थे तो उसे फौरन

उसी समय इनाम देते थे और बढ़िया संगीत के बदले में घटिया संगीत कभी नहीं सुनते थे। महाराज लूनाबाड़ा के लिये भी यह बात मशहूर थी कि जब कभी वह गुलदीन खाँ का गाना सुनते थे तो उनकी प्रशंसा खाली नहीं जाती थी। गुलदीन खाँ का गायन सुनकर जब महाराज कहा करते थे : "खाँ साहब, वाह-वाह क्या निषाद लगाई है। इसके लिए तो आपको इनाम मिलना चाहिए।" तो वह अपने खजांची को हुक्म देते थे कि खाँ साहब को एक वेतन निषाद के लिये भी दिया जाये। दूसरे दिन महाराज की आज्ञा का पालन किया जाता था। दो-तीन दिन बाद जब खाँ साहब अपना सितार बजाने बैठते थे तो महाराज फिर बोल बैठते थे "वाह खाँ साहब, क्या गंधार लगाई है। हीरा लाल मेहता इनकी गंधार की तनख्वाह लगाओ।" हीरा लाल मेहता "अन्नदाता की जो आज्ञा" कह कर उठते थे और खाँ साहब को तनख्वाह की रकम दे देते थे। एक दिन खजांची हीरालाल मेहता ने खाँ साहब से हँसी-हँसी में पूछा, "खाँ साहब बता दीजिए अभी कितने स्वर और बाकी हैं जिससे मैं पहले से 'रुपयों का प्रबन्ध कर लूँ।" इस पर खाँ साहब विनीत भाव से बोले "भाई मेहता, संगीत तो समुद्र के समान अथाह है और उसमें बहुत-से बहुमूल्य रत्न छिपे पड़े हैं।"

गुलदीन खाँ अपने जीवन के अन्त तक लूनाबाड़ा ही में रहे और वहीं उनका देहान्त हुआ।

गुलदीन खाँ के एक भाई थे जिनका नाम नजीर खाँ था। मथुरा के लोग इन्हें "संगीताचार्य" के नाम से पुकारते थे क्योंकि इन्हें संगीत का अथाह ज्ञान था। इन्होंने अमीर बख्श खाँ गोंदपुरी से जयपुर में सितार की शिक्षा ली थी और परिश्रम करके यह एक अद्वितीय सितार-वादक बन गये थे। दूर-दूर तक इनकी ख्याति फैल गई थी परन्तु यह स्वभाव से आजाद और मन-मौजी जीव थे और कहीं टिक कर नौकरी नहीं करते थे। इन्हें दूर-दूर भ्रमण करने की आदत-सी पड़ गई थी और यह बहुत-सी रियासतों की सैर किया करते थे। हैदराबाद में इनका स्वर्गवास 1890 में हुआ।

गुलदीन खाँ के सुपुत्र का नाम काले खाँ था और इनका जन्म मथुरा में 1860 में हुआ था। इस देश में बहुत-से लोग इन्हें "सरस पिया" के नाम से जानते हैं और इसी उपनाम से इन्होंने बहुत-सी बेजोड़ बंदिशों की रचना की थी। अतरौली के महबूब खाँ "दरस" और मथुरा के काले खाँ "सरस" अपनी रचनाओं के लिए भारतवर्ष भर में मशहूर थे। श्रोतागण "सरस पिया" से इसलिए भी परिचित हैं कि इनकी राग परज की रचना "मन-

मोहन बृज को रसिया" को उस्ताद फैयाज खाँ ने ग्रामोफोन रेकार्ड में गाकर अमर बना दिया है। संगीतकार जो कुछ अपनी मधुर पंक्तियों में कहना चाहता था उसको इस बेजोड़ गायक के भावुक स्वरों ने साढ़े तीन मिनिट में कह दिया। यह बृजभाषा की एक बड़ी सुन्दर रचना है और इसमें उस्ताद फैयाज खाँ के संगीत का व्यक्तित्व अंकित है। क्या यह सच नहीं है कि कवि के काव्य की सही व्याख्या गायक ही करता है? और फिर जब एक गायक ही अपने स्वरों में किसी बन्दिश की रचना करता है तो वह काव्य को संगीत का अनुवादक बनाता है। यह सोने में सुहागा हो गया था कि उस्ताद फैयाज खाँ ने "सरस पिया" की इस रचना को अपने कण्ठ से गाया और उसके शब्दों की मधुर व्याख्या करके उन्हें हर तरह से भावुक और सार्थक बनाया।

काले खाँ एक सुशिक्षित गायक थे और इन्हें छुटपन से हिन्दी और फारसी की शिक्षा मिली थी। यह कवि भी थे और हिन्दी में कविता भी करते थे। परन्तु जिस भाषा में यह कविता करते थे वह मथुरा की बृजभाषा थी। इसके साथ-साथ इनके विचारों और भावों की अनोखी सूझें और इनकी सूक्ष्म कल्पनायें भी वहाँ की परम्परा और वहाँ के संस्कारों से घुल-मिल गई थीं। इन रचनाओं का सांस्कृतिक स्तर भी बहुत ऊँचा था और इनकी आत्मा में बृज की मिट्टी की बू-बास थी। इनका नाम तो काले खाँ था परन्तु यथार्थ में यह "सरस पिया" के नाम से मशहूर थे। वास्तव में यह रस में डूबे हुए सहृदय जीव थे जिनकी रचनाओं में बृजभूमि की अमर वाणी सुनाई पड़ती थी। जिस गायक ने इनकी राग परज की रचना को गाया था वह भी स्वयं "बृज का रसिया" था जिसके संगीत ने भारत के मन को मोह लिया था। हमें यह जान कर हर्ष है कि आजकल इनके सुयोग्य और सुप्रसिद्ध सुपुत्र बड़ौदे के उस्ताद गुलाम रसूल खाँ अपने पूज्य पिता की बन्दिशों की स्वरलिपि कर रहे हैं।

काले खाँ को अपने पिता ही से संगीत की शिक्षा मिली थी। इनको अपने पिता से सितार की भी शिक्षा मिली थी और यह सितार-वादन में भी निपुण थे। इन्होंने ख्याल, ठुमरी और सरगमों की भी रचना की थी। विद्या और ज्ञान का इन्हें बहुत शौक था। पचास वर्ष की अवस्था में यह एक पंडित से व्याकरण सीखने लगे थे और उसे वह सितार सिखाते थे। लूनावाड़ा के राजा भी इनके शिष्य बन गये थे और इन्हें आराम की सब सुविधायें उपलब्ध हो गई थीं। परन्तु इनको वैराग्य-सा हो गया था और यह विरक्त हो गये थे। एक दिन 1926 में भरतपुर रियासत से यह अचानक कहीं

गायब हो गये और फिर इनका पता नहीं चला। "सरस पिया" के नाम से लोग इन्हें अभी भी याद करते हैं।

काले खाँ के सुयोग्य सुपुत्र गुलाम रसूल खाँ (मास्टर गुलाम रसूल) को सारा संगीत-संसार जानता है। यह वयोवृद्ध, अनुभवशील संगीतज्ञ हैं और आजकल बड़ौदा विश्वविद्यालय के ललित कला विभाग में संगीत-शिक्षक हैं। यह आरम्भ काल से एक सुशिक्षित कलाकार थे और अंग्रेजी का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। संगीत-संसार इनसे भली-भाँति परिचित है। यह हारमोनियम ऐसे साज पर उस्ताद फैयाज खाँ की बेजोड़ संगत करते थे। परन्तु इन्हें गायन-कला का भी अच्छा ज्ञान है और इनके पास घरानेदार बन्दिशों का एक अनोखा संग्रह है। आजकल यह संगीत-शिक्षा के कार्य में संलग्न हैं। इनके सुपुत्र श्री शमीम भी बड़े होनहार और निपुण सितार-वादक हैं। यह इनको इस घराने का उत्तराधिकारी ही नहीं मानते हैं परन्तु मथुरा घराने का एक छिपा हुआ रत्न भी मानते हैं।

मथुरा के प्रसिद्ध वादकों में एक फैयाज खाँ नाम के भी वादक थे। यह गुलाम हसन के बेटे थे और इनका जन्म मथुरा में हुआ था। यह एक बहुत प्रवीण सितार-वादक थे और कछुआ सितार (बड़ा सितार) विशेषकर बहुत अच्छा बजाते थे। यह रियासत अलीपुर में नियुक्त हो गये थे। इनका समय 1870 के लगभग था।

मथुरा के घरानेदार संगीतज्ञों में मुन्नन खाँ का भी बहुत नाम था। इनको सितार की शिक्षा जयपुर के कुशल वादकों से मिली थी और यह भी एक बेजोड़ सितार वादक थे। मुन्नन खाँ को बहुत-कुछ ज्ञान अपने मामा रजब अली खाँ से भी प्राप्त हुआ था। यह बाद में बंगाल चले गये थे और नवाब मुर्शिदाबाद के दरबार में नियुक्त हो गये थे। इन्होंने अपना स.रा जीवन मुर्शिदाबाद ही में बिताया। सितार के अलावा इन्हें बीन की भी थोड़ी-बहुत तालीम पहुँची थी।

अठारहवीं शताब्दी में मथुरा में एक और प्रसिद्ध गायक हुए थे जिनका नाम जहूर खाँ था। यह बड़े प्रसिद्ध ख्याल गायक थे और दुजाना रियासत में नौकर हो गये थे। परन्तु इनके अलावा जोधपुर ऐसी रियासत में भी इन्हें बहुत मान-सम्मान मिला था और इनकी गणना उस जमाने के चोटी के गायकों में होती थी।

हमने इस अध्याय को मथुरा के प्रसिद्ध गायक चंदन चौबे से आरम्भ किया था। अंत में हम फिर से दो प्रतिभासम्पन्न संगीतज्ञों का वर्णन करेंगे

जो चौबे चुक्खा और गणेशी के नाम से मशहूर हुए हैं। यह दोनों आपस में भाई थे और संगीत के प्रकाण्ड पण्डित थे। यह दोनों वास्तव में विद्वान संगीतज्ञ थे। यह केवल कुशल गायक ही नहीं थे परन्तु इन्हें अपने बुजुर्गों से संगीत की गूढ़ विद्या भी पहुँची थी। इनके संगीत के ज्ञान का क्षेत्र बहुपक्षी था और संगीत के बहुत-से पक्ष उसके अन्तर्गत थे। जो भी ऐसी विद्या को प्राप्त कर लेता था वह संगीत के विविध पक्षों का अवलोकन कर सकता था। गायन और वादन, संगीत-कला के दो अनिवार्य अंग थे जिन दोनों का ज्ञान ऐसे संगीतज्ञों को ही होता था। सैद्धान्तिक रूप से अथवा मूल सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर वह समूचे संगीत का मनन करते थे। चौबे चुक्खा और चौबे गणेशी इसी दर्जे के संगीतज्ञ थे और इनका संगीत-अध्ययन हर तरह से गंभीर था। यह विद्वान गायक थे और इन्हें अपने पूर्वजों से प्राचीन, परम्परागत संगीत का ज्ञान पहुँचा था। शायद यह कहना असंगत न होगा कि मथुरा की असली संगीत-परम्परा से इनकी आत्मा घुल-मिल गई थी।

इन दोनों की आवाजें भी दमदार थीं और उनमें बहुत असर था। यह दोनों संस्कृत के विद्वान थे और इन्होंने संगीत पर एक अनूठा ग्रंथ भी लिखा था जिसका अब पता नहीं चलता। नैपाल नरेश ने इन्हें एक लाख रुपये इनाम में दिये थे और कलकत्ते के बंगाली राजा इंद्रपाल ने इन्हें जवाहरात भेंट किये थे सन् 1915 के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ।

स्व० उस्ताद हाफिज अली खाँ जो सरोद के बेजोड़ उस्ताद थे इन पंक्तियों के लेखक से बताया करते थे कि अपनी उभरती जवानी में जब उन्हें रागों की तलाश थी और संगीत-ज्ञान का शौक था, उन्होंने गणेशी चौबे से बहुत ज्ञान प्राप्त किया था। वह बताया करते थे कि गणेशी चौबे ने उन्हें बहुत-सी अनूठी और अप्रचलित रागों का ज्ञान दिया था जो वह नहीं जानते थे। वह उनके अभारी थे और उस ऋण को कभी नहीं चुका सकते थे। हम उनके जीवन् की दो घटनाओं को महत्वपूर्ण मानते हैं। पहली तो वह जब उन्होंने रामपुर के उस्ताद फिदाहुसैन का सरोद सुना था। दूसरी जब वह गणेशी चौबे के संपर्क में आये थे। एक तरुण और होनहार कलाकार के जीवन की इन घटनाओं को हम "क्रान्तिकारी" कह कर ही जानेंगे। संसार के मनोवैज्ञानिक भी इन्हें अभिजात कह कर पुकारेंगे।

# 12

# फतहपुर सीकरी का घराना

हम आगरा घराने का वर्णन कर चुके हैं। हम उसकी गणना इस देश के प्रथम श्रेणी के घरानों में करते हैं। परन्तु आगरे के पास फतहपुर सीकरी का घराना भी एक सम्मानित घराना था और उसके संगीतज्ञों को भी संगीत की बहुत-सी शैलियों पर अधिकार था। फतहपुर सीकरी का घराना ग्वालियर, आगरा और देहली के घरानों की तरह प्रथम श्रेणी का घराना न रहा हो, परन्तु इस घराने में एक गायक ऐसा था जिसने अकेले इस घराने को भारतवर्ष भर में मशहूर कर दिया था। इस तरह के और भी उदाहरण हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि कभी-कभी एक अनोखा गायक अथवा वादक किसी घराने को कहीं से कहीं तक पहुँचा देता है। घराने बड़े हों या छोटे, परन्तु उनकी विशेषता इस बात में होती है कि वह परम्परागत संगीत के माध्यम बन जाते हैं। यह वह संगीत होता है जो "घरानेदार" संगीत के नाम से पुकारा जाता है। इस संगीत का बीज पहले कभी बोया जाता है और बाद में उस घराने के गायक अथवा वादक उसका फल पाते हैं। परन्तु प्रत्येक माने हुए घराने में एक-दो संगीतज्ञ ही ऐसे प्रतिभावान होते हैं जो उसके कीर्तिस्तम्भ बन जाते हैं अथवा जो उसे हर तरह से सम्मानित और प्रामाणिक बनाते हैं।

भिन्न-भिन्न घरानों का वर्णन करते समय हमें यह भी याद रखना चाहिए कि अकबर के राज्यकाल में ध्रुपद शैली ही प्रचलित थी। ध्रुपद गायकों को विरासत में मिला था और वह उनका उत्तराधिकार था। ध्रुपद संगीतज्ञों के अंतर्निहित अधिकारों के अन्तर्गत था और होरी-धमार भी उसके साथ थी। अकबर युग के हाजी सुजान खाँ इस शैली के विशेषज्ञ माने जाते थे। परन्तु

ख्याल ऐसी शैली के जन्म के पहले कव्वाली संगीत भी इस देश में प्रचलित था और बहुत-से मुसलमान राजाओं और महाराजाओं ने इस शैली का संरक्षण किया था। शास्त्रीय संगीत के बहुत-से मर्मज्ञ आधुनिक कव्वाली को भी बड़े उत्साह से और बड़े कलात्मक ढंग से गाते थे। घरानों का जन्म तो अकबर युग के आस-पास हो चुका था। परन्तु ध्रुपद की बानियों के घरानों के साथ कव्वाली का रिवाज भी जारी रहा। उसका भी अपना अलग वंशानुक्रम था। आगे चलकर कुछ घरानों में ख्याल और कव्वाली का चोली-दामन का-सा साथ हो गया था। हम देख चुके हैं कि देहली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक तानरस खाँ कव्वाली खुलेआम गाते थे और उनके ख्याल-गायन और उनकी कव्वाली में कोई विरोध नहीं था।

जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में भी संगीत की चहल-पहल थी और अच्छे-रच्छे संगीतज्ञ मौजूद थे। जहाँगीर का राज्यकाल संगीतज्ञों से सुशोभित था। इतिहास से पता चलता है कि जहाँगीर के जमाने में जैनू खाँ और जोरावर खाँ नाम के दो भाई थे जो माने हुए गायक थे। परन्तु शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त यह दोनों कव्वाली में भी पारंगत थे और बड़ी भावुक तन्मयता से उसे प्रसारित करते थे। यह कहना ठीक होगा कि कव्वाली गाने में उन्हें अपने राग-ज्ञान से भी बहुत प्रेरणा मिलती थी और वह उसका सदुपयोग अपनी आवश्यकता के अनुसार करते थे। स्वरों का कलायुक्त उच्चारण कव्वाली के लिए भी आवश्यक होता है। परन्तु यहाँ हम उस कव्वाली की चर्चा नहीं कर रहे हैं जो आम तौर से गाई जाती है, परन्तु उस कव्वाली का जिसे प्रतिभासम्पन्न और सुरीले गायकों ने गाया है। जैनू खाँ और जोरावर खाँ हजरत शेख सलीम चिश्ती की दरगाह में मुख्य कव्वालों की हैसियत से नियुक्त हो गये थे। परन्तु इन्होंने ध्रुपद और होरी का परित्याग नहीं किया और उसका भी निरन्तर अभ्यास करते थे और अपनी संतान को भी उसकी पूरी शिक्षा देते रहे। कव्वाली का सम्बन्ध तो मनुष्य की श्रद्धा अथवा निष्ठा से होता है। धर्म और भक्ति ही कव्वाली-गायन का पोषण करते हैं और धार्मिक विश्वास ही उसकी कविता के विचारों और सूक्ष्म कल्पनाओं की पुष्टि करता है। मनुष्य की तर्कबुद्धि पीछे छूट जाती है! और उसकी श्रद्धा और उसकी भक्ति ही उसके भावुक हृदय का पथ-प्रदर्शन करती हैं। कव्वाली के श्रोता भी "वज्द" अथवा धार्मिक तन्मयता में आकर अपने को खो बैठते हैं। परन्तु कव्वाली में स्वरों का और शब्दों का सुन्दर सहयोग और मिलन होता है। यदि कव्वाली के शब्दों का अनुवाद मधुर स्वर न करें

तो वह नीरस बन जाये। हम जिस कव्वाली का वर्णन कर रहे हैं उसका स्तर बहुत ऊँचा था और उसके स्वरों में संगीत का प्राण छिपा था। उसमें कविता और संगीत का कलात्मक संश्लेषण होता था और उसकी अपनी एक अलग परम्परा थी। यह दोनों गायक प्रवीण कलाकार होने के नाते कव्वाली की व्याख्या भी बड़े अनोखे ढंग से करते थे और उसकी परम्परागत शैली का अनुपम अनुवाद करते थे। उनका रागों का ज्ञान उनके कव्वाली-गायन में चार चाँद लगा देता था। जिस दर्जे के यह गायक थे उसी दर्जे के वह कव्वाल भी थे। यही कारण था कि इस दरगाह से इन्हें एक जागीर भी मिली थी।

शेख सलीम चिस्ती के इस दरबार में एक और बड़ी उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे जिनका नाम दूल्हे खाँ था। इन्हे भी यहाँ एक धुरन्धर कव्वाल की हैसियत से नियुक्त किया गया था। जहाँ तक इनकी भक्ति की भावना का सम्बन्ध था यह इस दरगाह में कव्वाली-गायन करते थे और भक्तों की धार्मिक भूख-प्यास की तृप्ति करते थे और उन्हें श्रद्धा की पुनीत सरिता में बहाते थे। परन्तु इसके साथ-साथ इन्होंने अपने दोनों लड़कों को ध्रुपद, होरी और ख्याल की ही शिक्षा दी। इनके बड़े बेटे का नाम घसीट खाँ था और वह इस घराने के दैदीप्यमान रत्न माने जाते थे। घसीट खाँ का भारतवर्ष भर में बहुत नाम हुआ और यह एक चोटी के गायक माने जाते थे। यह होरी-धमार के अद्वितीय विशेषज्ञ थे। और इनकी जोड़ का दूसरा गायक दूर-दूर तक नहीं था। इनके जीवन की घटनाओं से पता चलता है कि यह कितने ऊँचे दर्जे के गायक थे। शिक्षा तो इन्हें ध्रुपद और ख्याल की भी मिली थी परन्तु होरी-धमार गाने में इनका जवाब नहीं था और अच्छे-अच्छे नामी गायक भी इनसे टक्कर नहीं ले पाते थे। संगीत के आम श्रोताओं से प्रशंसा पाना तो और बात है परन्तु गुणियों और उच्चकोटि के गायकों से मान्यता प्राप्त करना दूसरी बात है। इस तरह की प्रशंसा को हम औपचारिक अनुमोदन के नाम से ही नहीं पुकार सकते। जब कुछ माने हुए गायक किसी दूसरे कुशल गायक का गाना सुनकर आनन्दित हो जाते हैं और उसकी कला के आगे अपना सिर झुका देते हैं तो उसको हम सच्ची और हार्दिक प्रशंसा मानते हैं। घसीट खाँ ऐसे ही एक बेजोड़ गायक थे।

इनका जन्म 1800 में हुआ था। इनके घराने में ध्रुपद और होरी गाने की प्रथा पहले से चली आई थी। इनको भी अपने पिता से इन शैलियों में ऊँचे दर्जे की शिक्षा मिली थी और इन्होंने लगातार अभ्यास करके इनमें अनोखी प्रवीणता प्राप्त की थी। परन्तु विद्या की खोज में और अनुभव प्राप्त

करने के लिए यह अपने घर से निकल पड़े और घूमते-घूमते लखनऊ पहुँचे। यहाँ आकर यह लखनऊ के मशहूर गायक हैदरी खाँ की सेवा में उपस्थित हो गये। शायद इन्होंने हैदरी खाँ का नाम पहले से सुन रखा था। हैदरी खाँ से इन्हें ध्रुपद और होरी का और अधिक विस्तारपूर्वक ज्ञान मिला। निरन्तर अभ्यास करके और अपने गुरु की देख-भाल में रह कर यह होरी-धमार के बेजोड़ गायक बन गये। अपने गुरु के परामर्श से और उनकी आज्ञा पाकर यह देशाटन के लिए निकल पड़े। अपने घर होकर और अपने दो शिष्यों को अपने साथ लेकर यह ग्वालियर के लिए रवाना हो गये। वहाँ जाकर यह एक सराय में टिक गये। इन्हें वहाँ कोई नहीं जानता था और यह लोगों से जान-पहचान पैदा करना चाहते थे। संयोगवश इस सराय में और भी दो-एक गाने-बजाने वाले ठहरे हुए थे। उनसे मिलकर इन्हें पता चला कि दो-तीन दिन के बाद शहर में संगीत का एक बड़ा शानदार जलसा होने वाला था जिसमें ग्वालियर के सब चोटी के गायक और वादक सम्मिलित होंगे। इस सराय में ठहरे हुए गायकों को जब यह पता चला कि यह कोई फकीर की तरह परदेसी हैं जिन्हें संगीत से प्रेम है और शायद उसका गहरा ज्ञान भी है, तो उन्होंने इसकी सूचना कुछ लोगों को कर दी जो उस जलसे में जा रहे थे। जलसा चन्द्रभागा बाई के मकान पर होने वाला था। यह वही गायिका चन्द्रभागाबाई थीं जो महाराजा सिंधिया की प्रेयसी थीं और जिन्होंने भैया गनपत राव ऐसे अद्वितीय संगीतज्ञ को जन्म दिया था जिनके बारे में पाठकों को हम आगे चल कर कुछ परिचय देंगे। चन्द्रभागाबाई की आत्मा संगीत के स्वरों में भींगी हुई थी और उन्हे संगीत का अच्छा ज्ञान भी था। वह गुणियों की सेवा करती थीं और उन्हें संगीत से विशेष प्रेम था। जब उन्होंने सुना कि सराय में कोई संगीत का विद्वान फकीर ठहरा हुआ है तो उन्होंने घसीट खाँ को भी इस जलसे में निमंत्रित किया।

इस संगीत-गोष्ठी की कहानी बड़ी दिलचस्प है और इसीलिए हम इसका खुलासा वर्णन कर रहे हैं। घसीट खाँ जब इस जलसे में पहुँचे तो अपने दो शागिर्दों के साथ चुपके से एक कोने में जाकर बैठ गये। उन्हें वहाँ कोई जानता-पहचानता नहीं था। लोग यही समझते थे कि यह कोई भूला-भटका फकीर है जिसे संगीत से प्रेम है। इसलिए श्रोताओं ने इनकी कोई परवाह नहीं की। जलसा शुरू हो गया और एक के बाद दूसरा कलाकार अपनी संगीत-कला का प्रदर्शन करने लगा। कुछ समय के पश्चात् हद्दू खाँ भी इस जलसे में दो तीन घण्टे बड़े जमकर गाये और अपनी गायकी के सारे

रंग और चमत्कार दिखाये। ग्वालियर घराने के नामी गायक हद्दू खाँ अपने घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक माने जाते थे। ऐसे बेजोड़ गायक का गाना किसी भी जल्से के अन्त में होता है। जब उनका गाना समाप्त हुआ तो यह बात प्रत्यक्ष थी कि जल्से का अन्त हो गया। किसी के मुँह से निकला "साज उठाओ, जल्सा खत्म हो गया है।" इस पर घसीट खाँ के एक शागिर्द ने उठ कर कहा "आप लोग बैठिये, जल्सा अभी खत्म नहीं हुआ है।" हद्दू खाँ और उनके भाइयों ने जब यह सुना तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और वह बोले "हमारे बाद किसका गाना हो सकता है? इस पर चन्द्रभागा बाई ने कहा "यदि एक फकीर भी अपने कण्ठ से कुछ सुनाना चाहता है तो इसमें क्या हर्ज है?" यह सुनकर सब लोग वहाँ फिर बैठ गये। जब घसीट खाँ के शागिर्दों ने अपने तंबूरों की छोटी जोड़ी मिलाई तो कमरा स्वरों से गूँज गया और घसीट खाँ गाने बैठे। वह राग परज में होरी की एक रचना से शुरू हो गये और उसे इस ढंग से गाने लगे कि लोग आश्चर्य में पड़ गये। यह ऐसा असरदार गाना था कि इसके प्रभाव से कोई भी बच न सका। कुछ लोग तो प्रातःकाल में राग परज के सच्चे स्वरों को सुनकर रोने लगे और महफिल में ऐसा समा बँध गया कि घसीट खाँ का गाना महफिल के सारे गाने-बजाने पर छा गया। गाने के अन्त होने पर हद्दू खाँ और हस्सू खाँ घसीट खाँ के गले लिपट गये और अपने मन से उनकी प्रशंसा करने लगे और उन्हें प्रेम से हाथों-हाथ लिया। चन्द्रभागाबाई भी घसीट खाँ का गाना सुनकर अचम्भे में पड़ गईं और वह इतनी प्रभावित हुईं कि उनको सराय से उठाकर अपने घर पर ले आईं और उन्होंने कई दिन तक उनका बहुत अतिथि-सत्कार किया। महाराजा सिंधिया ने भी जब घसीट खाँ का गाना सुना तो बहुत खुश हुए और उन्हें बहुत पुरस्कार दिया। ग्वालियर भर में घसीट ख़ाँ के गाने की धूम मच गई और वह ग्वालियर में दो-तीन सप्ताह तक ठहरे। इसके बाद सारे हिन्दुस्तान में इनकी धूम मच गई। देश भर में होरी-धमार गाने में इनसे कोई टक्कर नहीं ले सकता था। जिन्होंने इनको सुना था वह अपने आनन्द को अकथनीय बताते थे। होरी-धमार में इनकी टक्कर का दूसरा गायक नहीं था। घसीट खाँ को घूमने-फिरने की बहुत आदत थी। और यह जयपुर और अलवर ऐसी रियासतों में भी अपना डंका बजा आये और सारे देश में इनके गाने की धूम मच गयी। इनका गाना मनुष्य के हृदय को कहीं-से-कहीं पहुँचा देता था। इनका स्वर्गवास 1890 में हुआ।

इस बात को मानना पड़ेगा कि घसीट खाँ ही इस घराने के सर्वश्रेष्ठ

गायक थे और इनके व्यक्तित्व की अमिट छाप इस घराने पर पड़ी थी। परन्तु इनके छोटे भाई छोटे खाँ में भी असाधारण प्रतिभा थी और इनका भी बहुत नाम हुआ। इनको भी अपने बड़े भाई के साथ अपने पिता से ध्रुपद और धमार की पूरी शिक्षा मिली थी। और यह भी एक प्रवीण गायक थे। ध्रुपद अथवा होरी-धमार की संगत जब पखावज पर होती है तो गायक को भी गाने में बड़ा आनन्द आता है और वह ताल-विस्तार दिखाते समय बहुत उत्साह से गाता है और जोश से भर जाता है। एक कुशल गायक ताल की बोल-बाँट करता है और पखावजिया भी अपना ताल चमत्कार दिखाता है। छोटे खाँ को ऐसी संगत में इतना आनन्द आता था कि वह पखावज वादन सुनकर जोश से भर जाते थे। अचानक इनको न मालूम क्या सूझी कि यह गाना छोड़कर पखावज बजाने लगे। पखावज को ढंग से सीखने के लिए यह दतिया जाकर भारत-विख्यात पखावज-वादक कुदऊ सिंह के शिष्य बन गये और उनकी सेवा में रहकर अभ्यास करने लगे। कुछ समय के पश्चात् यह एक निपुण पखावजिये बन गये और अपने बड़े भाई के साथ पखावज बजाने लगे। अपने भाई की तरह इन्हें भी घूमने-फिरने का शौक था और बाद में यह बंगाल चले गये। उस जमाने में कलकत्ते में लोगों को ध्रुपद और पखा-वज में विशेष रुचि थी। वह वहाँ संगीत के रसिकों को ध्रुपद, होरी और पखावज सिखाने लगे और बहुत-से लोग इनके भक्त बन गये। दीनाजपुर और दरभंगा में भी इनका बहुत नाम हुआ। साल-दो-साल में यह अपने वतन जरूर आया करते थे और इसी सम्बन्ध में जयपुर भी जाया करते थे। बम्बई के मशहूर गायक स्व० विलायत हुसैन खाँ ने भी छुटपन में जयपुर में इनसे दो-चार बन्दिशें सीखी थीं और इनके आभारी थे। छोटे खाँ के लड़के खादिम हुसैन भी बड़े मजे हुए पखावजिये थे। छोटे खाँ का देहान्त 1912 में आगरे में हुआ परन्तु इनकी इच्छा के अनुसार इनकी अन्त्येष्टि क्रिया फतहपुर सीकरी में ही

फतहपुर सीकरी में एक और मशहूर गायक हुए हैं जिनका नाम गुलाम रसूल खाँ था। इनका जन्म मौला अली सुमरन नाम के मशहूर गायक के वंश में हुआ था। इन्हें अपने घराने में ध्रुपद, होरी और ख्याल इन सारी शैलियों की यथाक्रम अथवा व्यवस्थित शिक्षा मिली थी। परन्तु यह बाहर नहीं जाते थ और एक सीधे-सादे आदमी थे जिन्हें ख्याति और धन का कोई लोभ नहीं था। अपने घर पर रह कर ही यह संगीत की शिक्षा लोगों को देते थे और आगरे के आस-पास बहुत-से शिष्य थे।

फतहपुर सीकरी के पुराने गायकों में एक शाद खाँ नाम के गायक भी थे। यह अपने जीवन के अन्त तक आगरे ही में रहे और यह आगरा निवासी काशी नरेश के यहाँ नौकर भी थे। इसके साथ-साथ यह शेख सलीम चिश्ती की दरगाह के मुख्य कव्वालों में भी नियुक्त थे और प्रतिवर्ष उर्स के अवसर पर वहाँ सेवा में उपस्थित हो जाते थे।

इसी घराने में फिदा हुसैन नाम के भी एक गायक हुए हैं जो ग्वालियर नरेश माधव राव सिंधिया के दरबार में नियुक्त हो गये थे। इन्हें उर्दू शायरी में भी विशेष रुचि थी।

फतहपुर सीकरी के संगीतज्ञों का वर्णन करते समय आगरे के आस-पास के गायकों अथवा वादकों की अपेक्षा नहीं कर सकते। भरतपुर आगरे के पास ही है और यहाँ पर भी एक-दो बड़े कुशल गायक हुए हैं जिनके नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से एक बड़े प्रसिद्ध गायक थे जिनका नाम मदारबख्श था। ख्याल गाते थे और इनके घराने में ख्याल गाने की प्रथा बहुत समय से चली आई थी। यह एक घरानेदार.गवैये थे और भरतपुर दरबार में इनका बहुत सम्मान होता था। यह संगीत के इतने बड़े मर्मज्ञ थे और ऐसे सुरीले और लोकप्रिय गायक थे कि भरतपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह भी इनके शिष्य बन गये थे। कोई राजा अथवा महाराजा जब कभी किसी निपुण गायक अथवा वादक का शिष्य बन जाता है तो उसके दो विशेष कारण होते हैं। पहला तो यह कि ऐसा गायक या वादक चोटी का कलाकार होता है। दूसरा यह कि वह राजा या महाराजा भी स्वयं संगीत का संवेदन-शील भक्त होता है। ऐसा न होता तो लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह कथक नाच के प्रकांड पंडित ठाकुर प्रसाद के शागिर्द न बनते और न जयपुर के महाराज रामसिंह रजब अली खाँ बीनकार के शिष्य बनते। जब महाराजा जसवन्त सिंह मदार बख्श के शिष्य बन गये थे तो यह इस बात का प्रमाण था कि वह कितने प्रतिभासंपन्न गायक थे। महाराजा भरतपुर ने इन्हें एक जागीर भी दी थी और सवारी के लिए एक हाथी भी दिया था। इनका स्वर्गवास महाराजा जसवन्त सिंह के राज्यकाल में ही हुआ।

इसी जमाने में भरत पुर में नदिया वाले घराने के केसर खाँ का नाम भी बहुत हुआ। इनको भी एक जागीर इनाम में मिली थी। इसी घराने में धन्ने खाँ नाम के एक कुशल गायक हुए हैं।

इस तरह फतहपुर सीकरी का घराना आस-पास के घरानों से भी सम्बन्धित रहा है। घरानेदार संगीत के अदृश्य सूत्र इन्हें आपस में एक दूसरे को जोड़ देते थे।

# 13

# सिकन्दराबाद का रंगीला घराना

जब हम सिकन्दराबाद के घराने का वर्णन करने बैठते हैं तो हमें आश्चर्य होता है कि इस घराने में कैसे-कैसे प्रतिभाशाली गायक हुए हैं। सिकन्दराबाद उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में है और यहाँ रमजान खाँ नाम के गायक हुए हैं। बाल्यावस्था में इनको संगीत की शिक्षा अपने कुल ही में मिली थी। परन्तु बाद में यह अतरौली के इमाम अली खाँ के शिष्य बन गये थे और इनमें गायन-कला के और भी गुण आ गये थे। इन्हें गायकी की विशेषताओं पर और उसके कला-सम्बन्धी चमत्कारों पर असाधारण अधिकार प्राप्त हो गया था इनमें एक विशेष गुण यह था कि यह ध्रुपद, होरी और ख्याल ऐसी सारी शैलियों में अपनी सुन्दर रचनायें लिखते थे जिनमें गायकी के आदर्शों के अनुसार स्वरों की अनोखी सजावट होती थी और रागों की कलात्मक व्याख्या भी होती थी। इन बन्दिशों का निर्माण स्वरों और शब्दों के भावुक और कलायुक्त संश्लेषण के द्वारा किया जाता था और यह बन्दिशें अपने ढंग की निराली रचनायें थीं। देश भर के बहुत-से कुशल गायक इन्हें अब तक गाते हैं। अनुभवशील और विद्वान संगीतज्ञों की राय है कि सदारंग, अदारंग और मनरंग के बाद ऐसी बन्दिशें कहीं और सुनने में नहीं आईं। इन रचनाओं का संगीत और इनकी कविता दोनों अपने ढंग के अनूठे थे और इन्हें आज भी गायक बड़े चाव से गाते हैं। यह सब लोकप्रिय रचनायें मानी गई हैं और इनको सुनकर श्रोतागण अभी भी तृप्त हो जाते हैं। यह अपनी रचनाओं में अपना उपनाम "मियाँ रंगीले" रखते थे।

भारत-विख्यात उस्ताद फैयाज खाँ इसी घराने के थे। अपनी ननिहाल से तो यह आगरा घराने के थे और आगरा घराने के सुप्रसिद्ध और वयोवृद्ध गायक गुलाम अब्बास खाँ इनके नाना थे। परन्तु इनके पूज्य पिता सफदर हुसैन खाँ रमजान खाँ रंगीले के घराने के थे। भातखण्डे जी ने अपने ग्रन्थों में उस्ताद फैयाज को "रंगीले" घराने का वंशज कहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सिकन्दरा बाद में एक कुतुब बख्श नाम के गायक भी हुए थे जिन्होंने परिश्रम करके संगीत में बड़ी अनोखी कुशलता प्राप्त की थी और उनको बड़ी ख्याति भी मिली थी जब यह लखनऊ आये तो नवाब वाजिद अली शाह इन्हें सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपने दरवार में नियुक्त कर दिया। इनमें बहुत-से और भी गुण थे। संगीत-विद्या के अतिरिक्त यह उर्दू और फारसी के भी विद्वान थे। साथ-साथ यह गणित विद्या के भी मर्मज्ञ थे और सितार भी बहुत अच्छा बजाते थे। लखनऊ में इनके गाने को बहुत ख्याति मिली। गायक-वादक और विद्वान होने के नाते इनका इतना अधिक मान होता था कि नवाब वाजिद अली शाह भी इनकी प्रतिभा और इनके ज्ञान से ऐसे प्रभावित हुए कि इन्हें अपना मंत्री भी नियुक्त कर दिया। जब गदर के पश्चात् लखनऊ का पतन हुआ तो यह रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में चले गये थे।

रही रमजान खाँ रंगीले के घराने की बात, इनके भतीजे मुहम्मद अली खाँ भी एक बड़े नामी और सम्मानित संगीतज्ञ थे जिनको अपने जीवन में बहुत मान-सम्मान प्राप्त हुआ था। इनको अपने घराने ही में संगीत-शिक्षा मिली थी परन्तु एक विशेष घटना के कारण इनकी गायकी में बहुत परिवर्तन हो गया था। जब यह देशाटन के लिए निकले और बाँदा पहुँचे तो वहाँ के नवाब जुलफिकार अली खाँ ने इनका बहुत आदर-सत्कार किया। संयोगवश वहाँ उस समय भारतवर्ष के प्रसिद्ध गायक हांडे इमाम बख्श भी मौजूद थे जिनकी गायकी बहुत मुश्किल और पैचीदा थी। मुहम्मद अली खाँ ने जब उन्हें सुना तो इन्हें उनकी गायकी बहुत पसन्द आई और यह उसका अनुकरण करने के लिए बहुत इच्छुक हुए। इसीलिए यह उनके शागिर्द हो गये। बाद में जयपुर अलबर और बूंदी ऐसी रियासतों में भी इन्होंने बहुत नाम कमाया और इन्हें बहुत-से पुरस्कार भी मिले। झालरापाटन के महाराजा तो इनको सुनकर इतना खुश हुए थे कि इन्हें अपने दरबार में नियुक्त कर दिया था और सवारी के लिए एक पालकी भी दी थी। यह बहुत काल तक वहीं रहे और इनका स्वर्गवास 1890 में हुआ।

रमजान खाँ रंगीले के एक और भतीजे थे जिनका नाम अमीर खाँ था। इन्हें अपने चाचा से ही संगीत-शिक्षा मिली थी। अपने यौवन-काल में यह बिहार प्रान्त में जाकर बस गये थे और संगीत-शिक्षा और संगीत-प्रचार के काम में जुट गये थे। इन्होंने बहुत-से शिष्यों को संगीत-शिक्षा दी। इनके जीवन की एक घटना बड़ी आश्चर्यजनक है। सुनते हैं कि किसी दुश्मन ने इन्हें सिन्दूर खिला दिया था जिससे इनकी आवाज जाती रही थी। जब किसी सुयोग्य गायक का गला बेकार हो जाता है तो उसके लिए इससे बड़ा श्राप और नहीं हो सकता। वह बेबस और लाचार बन जाता है। वह अपने कंठ से स्वर नहीं निकाल सकता और न लोग उसे गायक ही मानते हैं। ऐसी दशा में वह केवल लम्बी-चौड़ी बात ही कर पाता है। भगवान् ही उसको ऐसे बड़े संकट से निकाल सकता है, जब उसके जीवन-निर्वाह का मुख्य साधन ही नहीं रहता। परन्तु जब ऐसा गायक भगवान से भी मुँह मोड़ लेता है तब वह ऐसे दोष से मुक्त नहीं हो पाता। आगरा घराने के एक सुयोग्य गायक के साथ ऐसा ही हुआ और उन्हें गाना छोड़ना पड़ा और अपनी जीविका-निर्वाह के लिए संगीत-शिक्षा के काम का ही सहारा लेना पड़ा। परन्तु अमीर खाँ एक कर्मठी जीव थे और त्याग और भक्ति की मूर्ति थे। यह हज-रत मखदूम सफरुद्दीन बिहारी की दरगाह पर जाकर दो वर्ष तक रोते रहे और भगवान से प्रार्थना करते रहे। सुनते हैं कि इनकी दुआ ने काम किया और एक दिन इनकी आवाज के सारे दोष दूर हो गये और इनका कण्ठ और भी सुरीला हो गया। इन्होंने अपने जीवन के बचे हुए दिन बिहार ही में काटे और इनका देहान्त 1960 में हुआ।

सिकन्दराबाद में कुतुब अली खाँ नाम के एक और नामी गायक थे। इनको भी संगीत-शिक्षा अपने घराने के बुजुर्गों से मिली थी और मेहनत करके यह बड़ी विलक्षण प्रतिभा वाले गायक बन गये थे। इनके जमाने के प्रसिद्ध गायकों में कुछ ऐसे चोटी के गायक थे जिनका जवाब नहीं था और जो अपने-अपने ढंग के निराले गायक थे—जैसे, दिल्ली घराने के तानरस खाँ, कव्वाल बच्चों के घराने के मुबारक अली खाँ, ग्वालियर घराने के हद्दू खाँ और घसीट खाँ हुलियारे वाले। परन्तु कुतुब अली खाँ का रंग सबसे अलग और निराला था। इनका स्थाई और अन्तरा कहने का ढंग सबसे अलग था और वह उसको इस ढंग से सजाते और सँवारते थे और उसमें ऐसे रंग भरते थे कि सुनने वाले मस्त होकर झूमने लगते थे। यह भी सुना है कि जिस महफिल में यह गाते थे उसमें और किसी गायक का गाना नहीं जमता था। मियाँ

रमजान खाँ रंगीले के बाद ऐसा बेजोड़ गायक सिकन्दराबाद में दूसरा और नहीं था।

रहमतुल्ला खाँ भी हद्दू खाँ और तानरस खाँ ऐसे नामी गायकों के समकालीन थे। इन्होंने भी सिकन्दराबाद घराने की ख्याति में चार चाँद लगाये थे और गायकों के बीच में इन्हें बहुत सम्मान मिला। इनका स्वर्गवास भी सिकन्दराबाद में हुआ।

इनके सबसे बड़े बेटे का नाम अजमतुल्ला खाँ था और इन्हें भी अपने घराने में ही तालीम मिली थी। इन्होंने ऐसा परिश्रम किया था कि बीस वर्ष की अवस्था में ही वह ऐसा गाना गाने लगे थे कि लोग सुनकर आश्चर्य में रह जाते थे। यह इस उम्र में भी अनुभवशील और प्रौढ़ गायकों की तरह गाते थे। इनकी तानें बड़ी सुन्दर और वजनदार होती थीं और उनमें बड़ा असर होता था। इनके जीवन की एक विशेष घटना इनके व्यक्तित्व के गतिशील सिद्धान्त को प्रकाशित करती है और इस बात को भी सिद्ध करती है कि इनका जीवन एक दुखान्त नाटक के समान बन गया था। एक अवसर पर यह कलिन्जर शरीफ के उर्स में गये जहाँ देश के नामी गायक एकत्रित थे और कण्ठ संगीत का अपूर्व आनन्द श्रोताओं को मिल रहा था। यह अपने भाइयों के साथ गाने बैठे और इनका गाना बहुत जमा। जब यह जोर-शोर से अपना धुँआधार गाना गा रहे थे। तो उसी समय संयोगवश दिल्ली के धुरन्धर गायक तानरस खाँ भी वहाँ से गुजर रहे थे। वह इनका गाना सुनकर वहाँ रुक गये और एक सहृदय जीव होने के नाते वह लोगों से इनके गाने की प्रशंसा करने लगे। इस प्रशंसा को सुनकर अजमतुल्ला खाँ गर्व से भर गये और बोले : "बराबर आकर बैठिये तो पता चले।" यह स्वाभाविक था कि तानरस खाँ को यह बात बहुत बुरी लगी और उनके मुँह से निकला : "जीने का गाना नहीं गा रहे हो।" यह उनकी बददुआ थी अथवा श्राप था और यह शब्द उनके दुखे हुए दिल से निकले थे। गाते-गाते जब अजमतुल्ला खाँ ने एक जोरदार तान ली तो अचानक उनका दम निकल गया। संगीत के मननशील और होनहार विद्यार्थियों के लिए यह शोकजनक घटना शिक्षाप्रद है और अपना अलग मूल्य रखती है। हम एक सुयोग्य गायक की अचानक मृत्यु पर कोई नैतिक उपदेश नहीं दे रहे हैं और न किसी अंधविश्वास का समर्थन कर रहे हैं। किसी भी तरुण और प्रतिभासम्पन्न कलाकार को अभिमान नहीं करना चाहिए और न अपनी विनीत भावना का कभी परित्याग करना चाहिए। इसके साथ-साथ प्रत्येक होनहार गायक को अपने से बड़ों का सदैव

आदर करना चाहिए और उनका आशीर्वाद लेना चाहिए। जैसे विनय विद्या की प्रतीक बनती है, उसी तरह अभिमान भी अविद्या का सूचक होता है। सभ्य और शिक्षित कलाकार वही होता है जिसमें विनय होती है और जो किसी को चुनौती नहीं देता।

अजमतुल्ला खाँ के भाई का नाम कुदरतुल्ला खाँ था और इनको भी अपने घराने में संगीत की पूरी शिक्षा मिली थी। सुना जाता है कि इनकी आवाज बहुत दमदार, चौड़ी और सुरीली थी और उसमें रोशनी थी। आवाज में जब रोशनी नहीं होती तो यह एक तरह का दोष माना जाता है। बुझी हुई आवाज थोड़ी-बहुत सुरीली हो सकती है परन्तु वह रौशन नहीं होती। प्राय: जिस आवाज में रोशनी होती है उसमें कन भी होते हैं और उसकी 'री' और 'आ' दोनों खुले-डुले होते हैं और उनमें असर होता है। इनकी आवाज पाटदार और रौशन थी और इसीलिए असरदार भी थी। इनके समकालीन गायकों में ऐसे नामी गवैये थे, जैसे पटियाले के अली बख्श और फतह अली (अलिया फत्तू), जहूर खाँ, महबूब खाँ, पुत्तन खाँ, अतरौली वाले अल्लादिया खाँ, सहसवान के इनायत हुसैन खाँ, ग्वालियर वाले नजीर खाँ और आगरा घराने के नत्थन खाँ। यह सब चोटी के गायक थे। कुदरतुल्ला खाँ ने अपने जमाने की बड़ी महफिलों में हिस्सा लिया था और सच्चे उतरे थे। इनके गाने की यह विशेषता थी कि यह बैठते ही अपना रंग जमा लेते थे और अपने श्रोताओं को खुश कर लेते थे। परन्तु ख्याल के अतिरिक्त इनकी कव्वाली भी बड़े ऊँचे दर्जे की थी और यह उसे बेजोड़ गाते थे। यह मीर महबूब अली खाँ निजाम के दरबार में नियुक्त हो गये थे। अस्सी वर्ष की उम्र में जब यह बम्बई में आये थे और जब एक खास जल्से में गाये थे तो मशहूर गायक भास्कर बुआ बखले ने इन्हें गुरु-दक्षिणा दी थी। इसी से पता चलता है कि यह कैसी चोटी के गायक थे।

सिकन्दराबाद में एक और मशहूर गायक थे जिनका नाम जहूर खाँ था। यह इमाम खाँ के लड़के थे और हिन्दुस्तान भर में यह अपनी तैयारी के लिए मशहूर थे। इनके पिता इमाम खाँ तो सिर्फ ढोलक बजाते थे परन्तु ढोलक बजाने में उनकी टक्कर का दूसरा ढोलक-वादक नहीं था। जहूर खाँ को शिक्षा अपने बड़े-बूढ़ों अथवा घराने के बुजुर्गों से पहुँची थी। परन्तु इनकी संगीत-पिपासा की तृप्ति नहीं हुई थी और इनके कुतूहल की प्यास भी नहीं बुझी थी। इनमें जिज्ञासा भी थी और ज्ञान की भूख प्यास थी। यह मेहनती बहुत ऊँचे दर्जे के थे और इनमें उन्नति करने की भी अभिलाषा थी।

सत्संग से भी यह बहुत लाभ उठाते थे । महबूब खाँ और नत्थन खाँ ऐसे गायकों का सत्संग इन्हें बहुत मिला था और उनको सुन-सुन कर भी इन्होंने बहुत-कुछ सिखा था । बाद में यह महबूब खाँ के शिष्य बन गये थे। अपने से बड़ों का यह बहुत आदर करते थे और गुणियों के आगे अपना सिर झुकाते थे । यह दिल्ली घराने के तानरस खाँ को भी अपना उस्ताद मानते थे । एक बार यह तानरस खाँ के चहल्लुम के जल्से में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने दिल्ली गये । वहाँ तानरस खाँ के सारे शिष्य जमे हुए थे । इस जल्से में तानरस खाँ के शिष्य पटियाला वाले अली बख्श और फतह अली बहुत जम कर गाये और जल्से पर छा गये । उनके बाद जहूर खाँ गाने बैठे । यह ऐसा दबंग और जोरदार गाना गाये कि लोग इन्हें सुनकर दंग रह गये और अली बख्श और फतह अली का गाना फीका पड़ गया । अली बख्श और फतह अली भी इन्हें सुनकर इनके गाने से प्रभावित हुए और उनके मुँह से यह शब्द निकले : "आप तो हमारे खलीफा हैं और आपका दर्जा हमसे बहुत ऊँचा है ।" चालीस वर्ष बाद फतह अली के सर्वश्रेष्ठ शिष्य मियाँ जान खाँ ने भी बम्बई की एक महफिल में अपने बाद तरुण गायक फैयाज को सुनकर कहा था, "तुमी तो उस्ताद जादे हो । तुम्हारा क्या कहना ।" इन दोनों घटनाओं के बीच में एक तरह का समान्तर है अथवा एक तरह की अद्‌भुत समानता है । दोनों प्रशंसात्मक वाक्यों में उदारता की भावना छिपी है ।

सिकन्दराबाद के मशहूर गायक मुहम्मद अली खाँ के मंझले बेटे का नाम फिदाहुसैन खाँ था । इनको भी अपने पिता से शिक्षा मिली थी और यह परिश्रम करके बड़े नामी गायक बन गये थे । इनकी आवाज पतली और सुरीली थी और उसमें बड़ा लोच था । ऐसी सुरीली और लोचदार आवाज का असर श्रोताओं पर भी बहुत अधिक पड़ता है । कण्ठ तो भगवान की देन होती है और कुछ गायकों की आवाजें स्वाभाविक ढंग से सुरीली और मीठी होती हैं । हुनर ऐसी आवाज में चार चाँद लगा देता है । फिदाहुसैन को बहुत-सी रियासतों में बहुत सम्मान मिला था और बहुत-से पुरस्कार भी मिले थे । सन् 1910 में यह नाथद्वारा मठ के गुसाईं जी के पास रहने लगे थे । वह इनका बहुत अतिथि-सत्कार करते थे और इनकी गायन-कला के भक्त थे । यह 1920 तक वहीं रहे । बाद में जब यह कोटा चले गये तो इनका वहीं देहान्त हो गया । इनकी गणना भी प्रतिभासम्पन्न गायकों में होती थी ।

## मुहम्मद अली खाँ द्वितीय

सिकन्दराबाद में एक और गायक मुहम्मद अली खाँ नाम के हुए हैं जो कुदरतुल्ला खाँ के बड़े सुपुत्र थे और जिन्हें हम दूसरे मुहम्मद अली खाँ के नाम से पुकारेंगे। इन्हें अपने पिता से संगीत की शिक्षा मिली थी और अभ्यास करके यह बड़े प्रवीण गायक बन गये थे। आवाज इनकी बड़ी वजनदार और सुरीली थी। यह निजाम हैदराबाद के दरबार में नियुक्त हो गये थे। इन्दौर, मैसूर और गढ़वाल ऐसी रियासतों में भी इन्हें बहुत सम्मान मिला था और बहुत-से पुरस्कार भी मिले थे। माणिक प्रभु वाले गुसाईं जी भी इनके गाने से बहुत खुश थे और वह यात्रा के अवसर पर इन्हें प्रति वर्ष बुलाते थे और सोने के कड़े और दुशाले इत्यादि इन्हें भेंट करते थे। इनका देहान्त 1925 में हैदराबाद में हुआ।

सिकन्दराबाद के बदरुज्जमा किफायततुल्ला खाँ के लड़के थे। गाना इन्होंने अपने घराने के बुजुर्गों से सीखा था। इनका गला भी बहुत सुरीला और तैयार था। इनको बहुत-सी पुरानी बंदिशें याद थीं जिन्हें यह बहुत जम कर गाते थे और अपने श्रोताओं को आनन्दित करते थे। कुछ गायकों ने इनसे ऐसी दो-चार चीजें याद की थीं। यह स्वयं बंदिशों की रचना करते थे और इन्होंने बहुत-सी चीजें बनाई थीं। इनके बनाये हुए तराने भी अपने ढंग के निराले थे। शास्त्रीय संगीत के अलावा यह आमफहम गाना अथवा हल्की-फुल्की चीजें भी बड़े मजे में गाते थे और ठुमरी और दादरा ऐसी लोकप्रिय शैलियों की बड़ी भावुक व्याख्या करते थे और अपने श्रोताओं को बहुत आनन्द पहुँचाते थे। यह निजाम हैदराबाद के दरबार में भी रहे और इन्दौर, मैसूर, ग्वालियर, दुजाना और गढ़वाल ऐसी रियासतों से भी इन्हें बहुत-से पुरस्कार मिले। हैदराबाद में इन्होंने अपने बहुत-से शिष्य तैयार किये थे। अपनी विद्या को उदारता से देने में इन्हें कभी कोई संकोच नहीं होता था। लगभग 1929 में इनका स्वर्गवास हैदराबाद में हुआ।

दिल्ली के मशहूर गायक मुजफ्फर खाँ भी सिकन्दराबाद घराने के थे। यह मस्ते खाँ के बेटे थे और दिल्ली इनका निवास-स्थान बन गया था। पिछले जमाने के ख्याल गायकों में इनका बड़ा नाम हुआ था। हममें से बहुत-से लोग इनसे परिचित थे, बहुत-से लोगों ने इनका ख्याल-गायन सुना था। यह बहुत अच्छे ख्यालिये थे और इनका स्थाई और अन्तरा बड़ा असरदार था। आवाज भी इनकी सुरीली और साफ-शफाफ थी और सुनने वालों के दिलों

को खींचती थी। बहुत-सी बड़ी और छोटी रियासतों में इन्हें भी बड़ी इज्जत मिली और बहुत-से इनाम भी मिले। इन्होंने वहुत-से शिष्य बंगाल में बनाये थे। चंपानगर और महिशादल ऐसी रियासतों में इनका बड़ा नाम हुआ था। इनके बड़े बेटे मुनव्वर खाँ भी बड़े होनहार और प्रतिभाशील गायक थे और उनका भविष्य उज्जवल था। संगीत के वहुत-से प्रेमी अक्सर शाम को मुजफ्फर खाँ को जामा मसजिद के सामने वाली चाँदनी मुहाल की गली में अपने छोटे नवासे की उँगली पकड़े हुए बालाई खरीदते देखा करते थे। आगे चल कर एक गली के एक एकान्त कमरे में बुंदू खाँ सारंगी-नवाज और नत्थू खाँ तबला-वादक भी अपने एकान्त का, सत्संग का आनन्द लेते दिखाई पड़ते थे। यह चालीस वर्ष पहले वाली दिल्ली थी जो अब स्वप्न बन कर रह गयी है।

ऊपर दिये गये गायकों के अलावा सिकन्दराबाद में और भी अच्छे-अच्छे गायक हुए हैं। कुतुब अली खाँ के लड़के गुलाम अब्बास खाँ भी संगीत-कला में पारंगत थे और बड़े असरदार गवैये थे। यह उन्नीसवीं शताब्दी के गायक थे। जिन बुजुर्गों ने इन्हें सुना था वह इनकी बड़ी प्रशंसा करते थे। विशेषकर मथुरा के गुसाईं जी इन्हें बहुत मानते थे और इनके संगीत का बड़ा आनन्द लेते थे। यह अपने जीवन के अन्तिम काल में भोपाल के दरबार में रहे।

इसी तरह 1801 के लगभग सिकन्दरावाद में दो सगे भाई थे जो भोगा और भुनगा के नाम से मशहूर थे। यह भी कुशल संगीतज्ञ थे। परन्तु यह दोनों सच्चे भक्त थे और अपनी भक्ति अथवा साधना के रंग में चौबीसों घण्टे डूबे रहते थे। संगीत इनकी भक्ति का साधन अथवा इनकी धार्मिक कल्पनाओं और भावनाओं का कलायुक्त माध्यम था। यह अपनी भक्ति के रंग में ऐसे डूबे रहते थे कि स्वरों को यह ओम अथवा नाद ब्रह्म का सुन्दर प्रतीक मानते थे और उनकी साधना करके यह संसार से विरक्त हो गये थे और ईश्वरभक्ति में विलीन हो गये थे। इनकी समाधियाँ चिश्ती रहमतुल्ला की दरगाह में अभी भी मौजूद हैं। सूफी मत का अथवा मुसलिम रहस्यवाद का बड़ा गहरा प्रभाव इनकी चेतना पर पड़ा था।

# 14

# लखनऊ की ठुमरी का घराना

आमतौर से ठुमरी का कोई घराना नहीं होता परन्तु लखनऊ की ठुमरी के घराने को हम एक अपवाद ही मानेंगे। जब कभी संगीतज्ञ अथवा संगीत के कुछ श्रोता अपनी बातचीत में "लखनऊ की ठुमरी" ऐसे शब्दों को दुहराते हैं तो उनका संकेत उस विशेष ठुमरी की शैली की ओर होता है जिसका जन्म लखनऊ में हुआ था। लखनऊ की शाइस्ता गुफ्तगू की तरह और लखनऊ की नजाकत और लखनऊ के शिष्टाचार अथवा उसकी तकल्लुफ की तरह लखनऊ की ठुमरी भी सारे संसार में मशहूर हो गयी है। अभी भी जब लखनऊ का कोई कुशल गायक भारतवर्ष के किसी कोने में पहुँचता है तो बहुत-से भावुक श्रोता उससे लखनऊ की ठुमरी की फरमाइश करते हैं और उसे सुनने के इच्छुक होते हैं। यदि वह लखनऊ का कोई खास गायक होता है तो वह ऐसी फरमाइश पूरा कर देता है। परन्तु बहुधा लखनऊ का पढ़ा-लिखा संगीत-विशारद", "संगीत निपुण" अथवा "संगीताचार्य ऐसी फरमाइश को पूरा नहीं कर पाता। शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होना और बात है और ठुमरी गाना दूसरी बात है। यदि किसी गायक के पास ठुमरी गाने का मिज़ाज नहीं है और वह रंग के गाने से दूर है तो वह ठुमरी गाने में असमर्थ होता है। इसी तरह वह गायक भी जो झूमरा और तिलवाड़ा ऐसी तालों में बिलम्बित ख्याल आसानी से गा सकता है, दादरा और कहरवा ऐसी छोटी तालों में किसी दादरे के बोल को नहीं कह पाता। यह एक तरह से ऐसा विरोधाभास है जो आसानी से समझ में नहीं आता। इसी लखनऊ में 1936 की एक एकान्त की महफिल में जब बड़ौदे के उस्ताद फैयाज खाँ

के साथ कलकत्ते के मशहूर सितार-वादक इनायत खाँ सितार पर उनके बोलों की संगत कर रहे थे तो "चीन्हत नाहीं बदल गये नैना" ऐसे भावुक बोल सितार पर आसानी से नहीं निकल पा रहे थे। हिन्दुस्तान का वह बेजोड़ सितार-वादक जो टोड़ी, भैरवी और पीलू ऐसी लोकप्रिय रागों की अनोखी व्याख्या करता था और जिस की गत की तैयारी लाजवाब थी, अपने सितार पर उस दादरे के बोल आसानी से नहीं कह पाता था। यह माना कि सितार ऐसे साज पर ठुमरी या दादरे के बोल निकालना असम्भव होता है। परन्तु बोल कहने के लिए एक खास मिजाज, तबियत अथवा रुझान ही चाहिए। किसी गायक का गला सुरीला हो सकता है मगर यह जरूरी नहीं है कि वह ठुमरी अथवा दादरा के बोल भी कह पाये। जाकिरुद्दीन और अलाबन्दे खाँ ऐसे बेजोड़ ध्रुपद-गायक जो अपने कण्ठ से श्रुतियाँ भी निकाल सकते थे, ठुमरी और दादरे के बोल कभी नहीं कह पाते थे। संगीत के क्षेत्र में शायद ध्रुपद की कट्टरता और उसका शुद्धाचारवाद ठुमरी की भावुकता का सदैव विरोध करते रहे हैं। ध्रुपद गायकों में आमतौर से रंगीन मिजाजी नहीं होती। स्वर्गीय नसीरुद्दीन खाँ तो ठुमरी और गजल की भावुकता पर कभी-कभी झूमने लगते थे मगर वह स्वयं बोल नहीं कह पाते थे। यदि वह कहना भी चाहते तो नहीं कह सकते थे। ध्रुपद का मिजाज और उसका गाम्भीर्य और संयम ठुमरी की भावुकता और उसकी नजाकत से बिल्कुल अलग होता है।

तो क्या एक नामी ख्याल गायक ठुमरी नहीं गा सकता? इस प्रश्न के उत्तर में बहुत-से महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत होता है। यह जरूरी नहीं है कि ख्याल का कोई उस्ताद ठुमरी भी गा सके। भजन गाना तो और बात है मगर जो गायक अन्त में भजन ही गाते हैं वह ठुमरी के बोल नहीं कह पाते। प्रायः एक कुशल ख्यालिया आसानी से ठुमरी के बोल नहीं कह पाता। वह अपने गले से ठुमरी के नाजुक और दर्द भरे बोलों को कहने में असमर्थ होता है। हम अपनी पुस्तक "हमारा आधुनिक संगीत" में बता चुके हैं कि रामपुर के एक मशहूर ख्याल गायक जब एक महाराष्ट्र के रईस को बरेली में ख्याल के बाद ठुमरी सुनाने की चेष्टा करते थे तो वह रईस उन्हें ऐसा करने से रोक देता था। वह जानता था कि वह ख्याल गायक ठुमरी गाने का आदी नहीं था और उसके गले में ख्याल की सपाट ताने तो अवश्य थीं परन्तु उसे बोल बनाव की आदत नहीं थी। वह समझदार रईस अपने आनन्द को फीकी ठुमरी सुनकर खो नहीं देना चाहता था। उसमें एक श्रोता की हैसियत

से बड़ी समझ-बूझ थी और उसे शास्त्रीय संगीत से सच्चा प्रेम था। परन्तु ऐसे समझदार श्रोता बहुत कम होते हैं। आम तौर से जब कोई धनवान श्रोता किसी गायक को पैसा देकर सुनता है तो वह उससे फिल्मी गाने तक सुनने की चेष्टा करता है और इस तरह अपने पैसे वसूल करता है।

परन्तु यह देखा गया है कि बहुत-से कुशल ख्याल गायक ठुमरी को निम्न श्रेणी की एक गिरी हुई शैली समझते हैं और उसे गाने में अपना अपमान समझते हैं। न मालूम इस भ्रान्ति का जन्म कैसे हुआ। लोग तराने को तो शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु ठुमरी का बहिष्कार करते हैं। गायक तराने की "दिर दिर" की तैयारी को तो कला का एक चमत्कार मानते हैं परन्तु ठुमरी के बोल-बनाव को बच्चों का खिलवाड़ समझते हैं।

ऐसा विचार कभी भी तर्कसंगत नहीं माना जा सकता। एक प्रसिद्ध ख्याल गायक जिनका कण्ठ सुरीला था और जो अन्त में सूरदास के पद बड़ी तन्मयता से गाते थे और भावुकता की बहुत अतिशयोक्ति भी करते थे, अपनी लोकप्रियता का नाजायज फायदा उठाकर अपने श्रोताओं से मुँहफट होकर यह भी कह देता था कि "मैं ठुमरी नहीं गाता हूँ। वह तो वेश्याओं के गाने की चीज है।" शुद्धाचारवाद का ऐसा ढोंग अपने नाटकीय अभिनय में ऐसे मौके पर सफलता तो अवश्य प्राप्त करता था, परन्तु संगीत-सम्मेलन के बाहर निकल कर लोग ऐसी टिप्पणी भी करते थे, जैसे : "इन्हें ठुमरी गाने की आदत नहीं है, जभी उसे बुरा-भला कह रहे थे। बनारस की रसूलनबाई को सुना होता तो ऐसे अपशब्द मुँह से न निकालते।" उस गायक को जनता की ऐसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया का कोई पता नहीं हो पाता था। वह एक विशुद्धवादी गायक बनकर जनता के हृदय को नहीं टटोल पाता था और संगीत की शुद्धता का झूठा आडम्बर दिखाता था। ठुमरी की ऐसी बेतुकी और बिना सिर पैर वाली आलोचना कोई भी मूल्य नहीं रखती। वह गायक मीरा और सूर के पद तो प्रेम से गा सकता था परन्तु चेष्टा करने पर भी ठुमरी नहीं गा सकता था। उसने जिस ढोंग का सहारा लिया था वह उसके चरित्र में भी घुल मिल गया था। वह संगीत में शुद्धाचारवाद का नारा पुकारने लगा था और उसने काल्पनिक शुद्धता को भी एक नये मत के नाम से पुकारा था। आम जनता के बीच में वह ऐसे अभिनय को केवल अपनी ख्याति का साधन बनाता था।

ऐसे और भी गायक हैं जो ठुमरी ऐसी शैली को बुरा बताते हैं और उसका खुलेआम अपमान करते हैं। परन्तु कड़ुआ सच तो यह है कि यदि ऐसे गायक कोशिश भी करें तब भी वह ठुमरी नहीं गा सकते। वह अपने मन में जानते हैं कि ठुमरी गाना एक टेढ़ी खीर है अथवा ठुमरी गाना कोई दिल्लगी नहीं है। संगीत के क्षेत्र में जहाँ कहीं ऐसे भ्रान्तिमूलक मतों का प्रचार होता है वहाँ संगीत का मिथ्या निरूपण भी होता है। कदाचित् ऐसी धारणा का जन्म इसलिए भी हुआ कि शास्त्रीय संगीत ने अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए और अपने प्राचीन एकाधिकार को मजबूत रखने के लिये संगीत की लोकप्रिय शैलियां से अपना नाता नहीं जोड़ा और अपने क्षेत्र को लोक-संगीत के क्षेत्र से बिल्कुल अलग रखा। "शास्त्रीय संगीत" का अर्थ यही लगाया जाता है कि यह वह संगीत है जो संगीत के शास्त्रों से सम्बन्धित है और जिसमें आमफहम अथवा लोकप्रिय शैलियों के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। परन्तु आधुनिक युग में ऐसी परिभाषा ठीक नहीं मानी जा सकती।

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत अपने विकास की उस अवस्था पर पहुँच गया है जहाँ बेतुका प्रयोगवाद भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है। ऐसी हालत में जब परम्परागत संगीत परिवर्तनों की संकरी मंजिलों से गुजर रहा है तो यह असंभव है कि वह ठुमरी ऐसी लोकप्रिय शैली की उपेक्षा भी कर सके और उससे अपने संबन्ध किसी तरह भी न जोड़े। अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर ही वह लोकप्रिय शैलियों तथा लोकप्रिय संगीत के अस्तित्व को भूल सकता है। संगीत के सर्वव्यापक क्षेत्र को देखते हुए हम इनमें से बहुत-सी सुन्दर शैलियों को हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत ही मानेंगे। शास्त्रीय संगीत का एक नया पाकिस्तान बनाकर हम इस देश की अविभाज्य संगीत-कला को शुद्ध और अशुद्ध संगीत के खानों में नहीं बाँट सकते। हिन्दुस्तानी संगीत की भारती परम्परा में इन सब शैलियों की परम्परा समा गयी है और उसके दिल में बड़ी गुजाइश है। तो फिर इस बात को हम कैसे भूल जाते हैं? शायद इसलिये कि हम कैसे जानबूझ कर ठुमरी ऐसी शैली का तिरस्कार करते हैं और उसे अछूत समझते हैं।

शायद यह कहना गलत न होगा कि संगीत के आम श्रोता ठुमरी का आनन्द लेते हैं परन्तु उसके बारे में वह कोई विशेष जानकारी नहीं रखते। यह बात उन पर भी लागू है जो शास्त्रीय संगीत के अलावा और किसी संगीत को नहीं मानते अथवा वह गायक जो ध्रुपद और ख्याल को ही मान्यता देते

हैं, और उनका ही जोशीला समर्थन करते हैं परन्तु लोकप्रिय संगीत की ओर उदासीन से रहते हैं। इसलिए यह बताना आवश्यक हो जाता है कि ठुमरी क्या है और उसकी क्या विशेषता है। ऐसे वर्णन में हम किसी निरे भावनापूर्ण दृष्टिकोण का ही समर्थ नहीं कर रहे हैं परन्तु व्यावहारिक संगीत के अनुभव का ही सहारा लेते हैं। पहली बात जो ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि ठुमरी का संबन्ध ख्याल से तो रहा है परन्तु ध्रुपद से कभी नहीं रहा है। हमने ध्रुपद-गायकों को ठुमरी गाते नहीं सुना है परन्तु कुछ विशेष ख्याल गायक ठुमरी गाने का भी अभ्यास करते रहे हैं। राजस्थान के ध्रुपद-गायकों में दो-एक ऐसे भी थे जो फ़ुरसत के वक्त अपने मन-बहलाव के लिए लोक-संगीत की धुनों को अक्सर गुनगुनाया करते थे, जैसे "मत बाँध जंजीरा की पाग नजर तोहे लग जायेगी।" परन्तु ऐसे गायक अब बहुत कम हैं। स्वर्गीय नसीरुद्दीन खाँ तो कभी-कभी ठुमरी और गजल के बोलों पर अपना सिर भी हिलाते थे, परन्तु आमतौर-से और ध्रुपद-गायक ठुमरी–गायकों और गजल-गायकों पर तरस खा कर ही उनकी तारीफ करते हैं। परन्तु इनके साथ-साथ यह भी सच है कि हमने बहुत-से ध्रुपदियों को जोहरा बाई के राग जोगिया के रेकार्ड–"पिया के मिलन की आस" को सुनकर मस्ती से झूमते भी देखा है। वह विद्वान भी जो संगीत में शुद्धता का दम भरते हैं और भरत और शारंगदेव का नाम लेकर अपना कान छूते हैं और संस्कृत के श्लोक बोलने लगते हैं, ठुमरी का बोल सुनकर किसी एकान्त की महफिल में बेचैन हो जाते हैं और अपने मनोभावों की रोक-थाम नहीं कर पाते। यह वह भावुक विद्वान होते हैं जो खुफिया तरह से हारमोनियम पर भी पीलू की ठुमरी–"पपीहा रे पी की बोली न बोल" के बोल भी निकालते हैं। परन्तु आम जनता उनके इस खुफिया अभिनय से परिचित नहीं होती। यह वही विद्वान हैं जो अपने भाषणों में और समाचारपत्रों में अथवा अपनी बोझीली पुस्तकों में वैदिक और शुद्ध संगीत की ही व्याख्या करते हैं और संगीत के क्षेत्र में शुद्धाचारवाद का बड़ी कट्टरता से समर्थन करते हैं। सच तो यह है कि ऐसे विद्वान भी ठुमरी के बोलों को सुनकर बहुत मस्त हो जाते हैं परन्तु संसार के आगे वह अपना दूसरा अभिनय ही करते हैं। ऐसे विद्वानों के लिए भी यह आवश्यक है कि वह जानें कि ठुमरी है क्या बला।

ठुमरी सुनकर लखनऊ के एक कवि ने कहा था : "कूज़े में दरिया" अर्थात् "गागर में सागर।" इससे बेहतर परिभाषा ठुमरी की नहीं हो सकती। ठुमरी, विशेष रूप से लखनऊ की ठुमरी, मुसव्वरी अथवा चित्रकारी के समान

है। जैसे, कोई चित्रकार बहुरंगी चित्रकारी के माध्यम से अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उसी तरह एक कुशल ठुमरी-गायक भी अपनी ठुमरी की रचना में बोल-बनाव के अनेक रंग भरता है जिससे ठुमरी का शृंगार निखर जाता है। बोल-बनाव ठुमरी की जान है और लखनऊ की ठुमरी की खास पहचान है। ठुमरी का सारा हुनर बोल के बनाव में है। किस तरह से एक बोल कहा जाये, यही ठुमरी की कसौटी है। इस बोल-बनाव के लिए एक खास तरह के मिजाज की आवश्यकता होती है। जिस गायक में यह मिजाज नहीं होता वह लखनऊ की ठुमरी नहीं गा सकता। लखनऊ का गायक अथवा बनारस का गायक बोल को जिस अन्दाज अथवा कला-चातुर्य से कहता है वह दूसरा गायक नहीं कर पाता। तो पूछा जा सकता है कि ठुमरी है क्या? और इसके आविष्कारक कौन थे? वाजिद अली शाह के जमाने के मशहूर संगीतज्ञ सादिक अली खाँ अथवा "नवाब सादिक अली खाँ" ही इस शैली के आविष्कारक माने जाते हैं। सादिक अली खाँ कव्वाल बच्चों के घराने के थे। इस घराने की ख्याल गायकी का अन्वेषण शक्कर-मक्खन खाँ ने किया था जो लखनऊ के प्रसिद्ध गायक गुलाम रसूल की शिष्य-परम्परा में थे। शक्कर खाँ के सुपुत्र बड़े मुहम्मद खाँ ही आधुनिक युग में कव्वाल बच्चों की गायकी के प्रथम अन्वेषक माने जाते थे। सादिक अली खाँ इसी परम्परा के अनुयायी थे। शिक्षा भी उन्हें शास्त्रीय संगीत की मिली थी। परन्तु स्वभाव से वह एक भावुक जीव थे। लखनऊ के जिस विशेष कला संबन्धी वातावरण में उनका पालन-पोषण हुआ था, वह उसके प्रभाव से न बच सके। जिस नवाबी दरबार में भावुक स्वरों का प्रवाह होता था और कथक नाच की चहल-पहल होती थी वहाँ संगीत और कविता की गंगा बहती थी और भावुकता भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। संगीत के ऐसे वातावरण में लनखऊ ऐसे रंगीन शहर में ठुमरी ऐसी रोचक शैली का जन्म हो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि कव्वाल बच्चों की परम्परा का एक संगीतज्ञ ऐसी शैली का आविष्कार करे। ठुमरी सादिक अली खाँ की कल्पना और उनकी भावुकता की देन थी। उनमें मिजाजदारी की प्रवृत्ति जन्म से थी और इसलिए उन्होंने ठुमरी की रंगीन शैली का निर्माण किया। यह भी एक तरह का आकस्मिक संपात था। कला और प्रतिभा के क्षेत्र में ऐसा विरोधाभास अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता। सादिक अली खाँ के परम शिष्य भैया गनपत राव और उनके शिष्य मौजुद्दीन खाँ भी इसी तरह के अचंभे थे। कव्वाल बच्चों के घराने के सादिक अली खाँ ने ठुमरी का

आविष्कार लखनऊ में किया यह कोई अनहोनी-सी बात नहीं थी मगर फिर भी वह सच थी। लखनऊ के अलावा और कौन-सा शहर था जहाँ ठुमरी का जन्म हो सकता था ? इस ठुमरी से लखनऊ की नजाकत, उसकी तकल्लुफ (शिष्टाचार), उसकी शिष्टता, उसके शृंगार और उसकी अनूठी भावुकता का कलायुक्त प्रदर्शन होता था। जिस तरह लखनऊ की बातचीत में एक तरह की मिठास होती थी और कोमल शब्दावली का बाहुल्य होता था, उसी तरह ठुमरी में भी बोल-बनाव का माधुर्य और स्वरों का भावुक अनुक्रम होता था। वह भी एक तरह की स्वरों की बातचीत थी जिसमें भावों का सम्वाद होता था और सूक्ष्म कल्पनाओं का संकेत होता था। परन्तु भावों और कोमल भावनाओं की यह अनोखी भाषा अपने ढंग की निराली थी। उस पर लखनऊ की संस्कृति की छाप अंकित थी और उसमें लखनऊ की तहजीब और बातचीत की मिठास और सुकुमारता भी थी। वैसी बातचीत कहीं और नहीं सुनाई देती थी। उसमें एक अनोखा आकर्षण अथवा जादू था जो और किसी बातचीत में नहीं मिलता था—"आपके मिजाज तो अच्छे हैं ?" "तशरीफ लाइये" "आपका करम, आपकी नवाजिश।" "आपका शुक्रिया।" जहमत न फरमाइये, "गरीब खाना हाजिर है।" "यह तो आपकी जर्रानवाजी है।" "आपकी गुफ्तगू का अन्दाज, आपकी इंकसारी, आपकी बंदापरवरी।" "कभी गरीबखाने पर नानेखुश्क नोश फरमाइये।" "इस शैर का जवाब नहीं है।" "आपके बोल नस्तर का काम करते हैं।" "आपने तो सुरों के बाग सजा दिये।" "कहाँ आप और कहाँ मैं !" "कहाँ आफताब और कहाँ जर्रा" "आपके क्या कहने।" आप तो मासूम सिफत, भोले जाँपनाह इन्सान हैं।" "आपका शुक्रिया मैं कैसे अदा करूँ ?" "इंशाअल्ला कल दरे दौलत पर हाजिर हो जाउंगा।"—इस तरह के वाक्यांश लखनऊ की बातचीत के प्राण थे। यह बातचीत भी एक तरह की शायरी अथवा कविता थी। ठुमरी में ऐसी विनीत भावना होती है, जैसे—"आपके पावों के नीचे मेरा दिल। एक जरा आपको जहमत होगी।"

संगीत की और किसी शैली में भावों और सूक्ष्म कल्पनाओं का ऐसा सुहावना समा नहीं दिखाई देता। यदि कोई चित्रकार एक अंगूठी पर छोटे-छोटे बारीक चित्र अंकित करे जिसमें भावों के सूक्ष्म संकेत हों, तो ठुमरी भी इसी तरह की एक नाजुक चित्रकारी है जिसमें तरह-तरह के रंग भरे होते हैं। सादिक अली खाँ की विलक्षण प्रतिभा ही ठुमरी को जन्म दे सकती थी। आधुनिक युग में ग्वालियर के भैयासाहब गनपत राव अथवा "भैया जी" ही

लखनऊ की ठुमरी के अन्वेषक और मुख्य प्रचारक माने गये हैं। इनकी माता का नाम चन्द्रभागा बाई था और वह महाराजा ग्वालियर की प्रेयसी थीं और एक प्रवीण गायिका भी थीं। हम इस पुस्तक में उनकी ओर पहले संकेत कर चुके हैं। भैया जी हारमोनियम लाजवाब बजाते थे और उस पर ठुमरी और दादरे के बोल बड़े अनोखे ढंग से निकालते थे। ठुमरी में उनके सबसे बड़े शिष्य मौजुद्दीन खाँ थे जो कलकत्ता, गया और लखनऊ में ही अधिकतर रहे और भारत के संगीतज्ञों ने उन्हें इस विषय में बड़ी मान्यता दी। आधुनिक युग में भैया साहब गनपत राव ने ही ठुमरी की सबसे अनूठी व्याख्या की और बाजे पर उसके हसीन और बारीक बोलों को विलक्षण ढंग से निकाला। परन्तु सादिक अली खाँ ही से उन्हें प्रेरणा मिली थी और वही उनके असली गुरु थे। भैया जी तो ग्वालियर के रहने वाले थे जो ख्याल ऐसी शैली का केन्द्र था। यदि वह सादिक अली से प्रेरणा न पाते तो, न तो बाजे पर ठुमरी के बोल निकालते और न हारमोनियम ऐसे विदेशी बाजे को ऐसे ऊँचे पद पर बिठा सकते। जैसे बोल वह बाजे पर निकालते थे वह बहुत-से सारंगी बजाने वाले भी नहीं निकाल पाते थे।

भैया जी अपने जमाने के संगीतज्ञों में अद्वितीय थे और उनकी प्रतिभा भी विलक्षण थी। चन्द्रभागा ऐसी गायिका के सुपुत्र होकर उनका पालन-पोषण भी संगीत के वातावरण में हुआ था। उन्हें रागों का अच्छा ज्ञान था और वह बाद में सुना है कि वह बन्देअली खाँ ऐसे बेजोड़ बीनकार के शिष्य भी बन गये थे। परन्तु उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा अभिरुचि लोकप्रिय संगीत की ओर थी। स्वभाव से ही वह एक भावुक जीव थे और रंगीनमिजाजी की तरफ गये थे। लखनऊ की ठुमरी का नमूना सुनकर वह बेचैन हो गये थे। उसके बोलों की ओर वह बहुत अधिक आकर्षित हुए थे और उनको सुनकर वह हमेशा तड़प जाते थे। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए सब साजों को छोड़ कर उन्होंने हारमोनियम को ही अपना साज बनाया। इस साज में उन्होंने ऐसा कमाल दिखाया कि जो बोल केवल सारंगी पर निकल सकते थे वह हारमोनियम पर उसी कुशलता से निकालने लगे। उनके बाजे को सुनकर लोग अचम्भे में पड़ जाते थे और उनकी समझ में नहीं आता था कि हारमोनियम ऐसे विदेशी साज पर वह गले की हरकतों का ऐसा सुन्दर प्रदर्शन कैसे करते थे। जिस बाजे में काले और सफेद बारह पर्दे होते हैं और जिसके रीडों पर दाहिने हाथ की उँगलियों को दौड़ाना पड़ता है, उस पर स्वरों के सहारे बोल बनाये, जायें यह बात आसान नहीं थी। हिन्दुस्तानी संगीत में सारंगी ही गले

का साथ करती है। सारंगी के अलावा हमारा और कोई साज वाइलिन समेत, गले की ऐसी सच्ची नकल नहीं कर सकता। सारंगी पर सच्चा गला बोलता है और गाने का अपूर्व आनन्द भी आता है। वाइलिन में भी एक तरह की मिठास होती है परन्तु इसके साथ उसके स्वरों में एक तरह की धात्विक कर्कशता भी होती है। उस पर गले की संगत इतनी भली नहीं मालूम पड़ती और उसके स्वरों में गला सच्चा नहीं बोलता। मामूली रागें तो उस पर आसानी से बजाई जा सकती हैं परन्तु मारवा, टोडी, भैरव, श्री और दरबारी ऐसी रागें उस पर अच्छी नहीं मालूम पड़तीं। रही ठुमरी के बोलों की बात, वह वाइलिन पर ठीक नहीं लगते और उनमें एक बड़ी कमी-सी रह जाती है। कुछ वाइलिन-वादक गले की संगत के लिए मशहूर हो गये हैं। परन्तु जब वह ठुमरी की संगत करने बैठ जाते हैं तो अधिकतर असफल रहते हैं।

ठुमरी के बोल तो सारंगी पर ही भले मालूम पड़ते हैं। सारंगी की प्रशंसा में कहा भी गया है कि उसका असली नाम "सौरंगी" है अर्थात् जिसमें सौ रंग होते हैं। वाइलिन को लोग मिनिटों में मिला लेते हैं परन्तु सारंगी की तरबों को मिलाने के लिए घण्टा पौन घण्टा चाहिए। परन्तु जब वह मिल जाती है तो उसकी छेड़-छाड़ ही में बड़ा मजा आता है। शर्त यह है कि उसका बजाने वाला एक प्रवीण वादक हो। रही हारमोनियम की बात, उसे लोगों ने कई ढंग से बजाया है। कुछ लोग उस पर सरोद और सितार के तोड़े और उसकी गतें निकालते हैं और अपने हुनर में कमाल करते हैं। आधुनिक युग में पिछले पचास वर्षों में बनारस के लक्ष्मण दास "मुनीम" (मुनीम जी) इस तरह का गत और तोड़े का बाज बेजोड़ बजाते थे। उन्नीस सौ चौबीस के लखनऊ के संगीत सम्मेलन में, जब वह अपनी राग बिहारी की गत बजाये तो उनकी "दिर दिर" के चमत्कार को देखने के लिए स्व० राजा नवाब अली खड़े हो गये थे। राजा नवाब अली स्वयं हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे, परन्तु उनका रंग दूसरा था। वह किसी स्थाई को लेकर किसी विशेष राग की व्याख्या करते थे। उनके शिष्य गणेशीलाल नैपाली का भी बहुत नाम हुआ। इलाहाबाद के निलू बाबू भी जो मुनीम जी के शिष्य थे, बहुत अच्छा बाजा बजाते थे। परन्तु भैया गनपत राव का रंग सबसे अलग और निराला था। वह न तो गत-तोड़ा बजाते थे और न किसी रचना को बजाते थे कि किसी विशेष राग की बढ़त दिखायें। वह ठुमरी और दादरे के भावुक बोलों ही के विशेषज्ञ थे। लोग उनका आदर इसलिए नहीं करते थे कि वह महाराजा सिंधिया की संतान थे और

ग्वालियर के राजा-परिवार से संबन्धित थे। जहाँ तक उनके हारमोनियम-वादन का सम्बन्ध था, संगीतज्ञ उन्हें हुनर के तराजू पर ही तौलते थे और कला की कसौटी पर ही कसते थे। उनका दावा यही था कि वह बाजे पर ठुमरी और दादरे के सही बोल निकालते थे। इन्हीं बोलों को सीखने के लिए वह लखनऊ के सादिक अली खाँ के शिष्य बन गये थे। यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल की घटना है। भैया जी का निधन बीसवीं शताब्दी के आरम्भ-काल में लगभग अस्सी वर्ष की आयु में हुआ।

भैया जी कलकत्ता, गया, लखनऊ रामपुर और बिलसी ही ज्यादा रहे। कलकत्ते का यह वह जमाना था जब सेठ दुलीचन्द ऐसे संगीत के प्रेमी और संरक्षक मौजूद थे। यह मलका और गौहर जान का जमाना था। भैया जी और उनके शिष्य मौजुद्दीन खाँ का भी इसी जमाने में बहुत नाम हुआ। सेठ दुलीचन्द के यहाँ गायक, वादक और तबलिये सभी नौकर थे और गाने-बजाने की चहल-पहल थी। बम्बई के प्रसिद्ध ख्याल गायक अल्लादिया खाँ भी यहाँ कुछ काल तक रहे थे। उनके भाई बशीर खाँ भैया जी के बाजे में शागिर्द हो गये थे और वह भी सेठ दुलीचन्द के यहाँ रहते थे। बड़ौदे के सुप्रसिद्ध गायक फैयाज खाँ की उभरती जवानी थी और वह भी कलकत्ते में कुछ काल तक रहे। वह मलका के गुरु थे और उसे शिक्षा देते थे। उसी मशहूर गायिका मलका के मकान पर मौजुद्दीन खाँ भी एक दिन आ पहुँचे और प्रतियोगिता की भावना के वश में होकर राग मालकोश की एक स्थाई एक-ताल में गाने लगे जो असल में झूमरा ताल में बँधी थी। गाते-गाते मौजुद्दीन खाँ ने फैयाज खाँ की तरफ इशारा किया कि वह भी साथ में कुछ कहते जायें। फिर क्या कहना था। तरुण फैयाज खाँ उस स्थाई को झूमरा ताल में गाने लगे। मौजुद्दीन भी साथ में गाते रहे। मगर फैयाज खाँ के गाने में बहुत रंग थे—स्थाई और अन्तरे की बढ़त, स्वरों के बहलावे, लाग-डांग, तान, बोल-तान, मींड और गमक और राग मालकोश की उस्तादाना व्याख्या। मौजुद्दीन खाँ के पास गायकी नहीं थी और उन्हें कुछ आम, प्रचलित रागों की ही जानकारी थी। उनको कुछ क्षणों ही में पता चल गया कि फैयाज खाँ किस ऊँचे दर्जे के घरानेदार गायक थे। जब इस गाने का अंत हुआ तो मलका ने मौजुद्दीन खाँ की तरफ देख कर कहा : "यह तो उस्तादजादें हैं और घरानेदार उस्तादों की औलाद हैं। आपने तो आज इन्हें सुन लिया।" मौजुद्दीन खाँ इस बात को मान गये और उस दिन से वह घरानेदार गायकों के मुँह नहीं लगते थे।

मगर मौजुद्दीन खाँ की ठुमरी को सब मानते थे। ठुमरी गाने में उनका जवाब नहीं था। उस जमाने की याद करके बाद में उस्ताद फैयाज खाँ मौजुद्दीन खाँ की ठुमरी की बहुत प्रशंसा करते थे और कहते थे कि वह पूरब की ठुमरी बेजोड़ गाते थे। परन्तु भैया जी ने ही मौजुद्दीन खाँ को ठुमरी की शिक्षा दी थी। मौजुद्दीन खाँ तो पंजाब के निवासी थे और उन्हें पहले पूरब की ठुमरी के बोलों की आदत नहीं थी। भैया जी की प्रेरणा से ही वह प्रोत्साहित हुए थे और ठुमरी का अभ्यास करने लगे थे। कुछ ही समय के पश्चात् वह भैया जी के सर्वश्रेष्ठ शिष्य बन गये और देश भर में उनका नाम फैल गया। भैया जी खुद हारमोनियम इस अनोखे ढंग से बजाते थे कि वीणा, सितार और सरोद बजने के बाद भी उनका रंग जमता था और लोग उनके बोलों की अपने दिल से प्रशंसा करते थे। उनके प्रमुख शिष्यों का भी देश भर में नाम हुआ। गया के गफ़ूर खाँ और सोहनी बाबू, बशीर खाँ जोधपुर वाले, जंगी ग्वालियर वाले, सज्जाद हुसैन लखनऊ वाले, मीर इरशाद अली, कलकत्ते की गौहर जान और जद्दन बाई, आगरे की मलका जान और बाबू श्याम लाल उनके प्रसिद्ध शिष्य माने गये हैं। बाद में कलकत्ते की नूरजहाँ ने भी बाजे में बहुत ख्याति पाई थी। उन व्यक्तियों में जो भैया जी के हारमोनियम-वादन से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे उनमें बदाऊँ के प्यारे मियाँ का नाम भी उल्लेखनीय है। परन्तु जिस ढंग से भैया जी बाजे पर ठुमरी और दादरे के बोल निकालते थे यह उनके पूज्य गुरु सादिक अली खाँ की देन थी।

सादिक अली खाँ बड़ी विलक्षण प्रतिभा के संगीतज्ञ थे। यह कव्वाल बच्चों के घराने के थे और देश के प्रसिद्ध गायकों में उनकी गणना होती थी। अपने घराने की गायकी के विशेषज्ञ होते हुए भी इन्होंने ठुमरी ऐसी लोकप्रिय और सुहावनी शैली का आविष्कार किया। आधुनिक संगीत के लिए ठुमरी ही उनकी अनमोल देन है। नवाब वाजिद अली शाह के जमाने में वह लखनऊ में मौजूद थे और उनके दरबार के संगीत से भी संबन्धित थे। यह वह जमाना था जब लखनऊ में हैदरी खाँ ऐसे धुरन्धर गायक भी मौजूद थे। सादिक अली खाँ वाजिद अली शाह के बाद भी लखनऊ में जिन्दा रहे। वाजिद अली शाह के दरबार में बिन्दादीन के पिता ठाकुर प्रसाद नियुक्त थे और अवध के रंगीन बादशाह उनसे कथक नाच की शिक्षा लेते थे। ठुमरी और कथक नाच का चोली-दामन का साथ था। ठुमरी का अस्तित्व पहले से था परन्तु एक शैली की हैसियत से वह अधूरी और अपरिमार्जित थी। सादिक अली खाँ ने ही उसे कला के साँचे में ढाला और उसे एक सुन्दर और निर्दोष शैली

बनाया। उनको इस बात का श्रेय था कि उन्होंने ठुमरी की शैली का निर्माण किया और उस पर लखनऊ की संस्कृति की छाप लगाई। यह कोई मामूली बात नहीं थी। परन्तु इसके साथ-साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इस ठुमरी का जन्म लखनऊ के अलावा कहीं और नहीं हो सकता था। लखनऊ की शिष्टता और उसकी नजाकत दोनों उस पर अंकित थीं। कथक नाच के साथ लय-बोल की ठुमरियों का चलन तो पहले से था परन्तु सादिक अली खाँ ने ही बिलम्बित लय और मध्य लय की बोल-बनाव की ठुमरी का आविष्कार किया। इन्हीं से प्रेरणा पाकर "सनद" पिया भी ठुमरियों की रचना करने लगे। गदर के पश्चात् "सनद" पिया बहादुर हुसैन खाँ और अमीर खाँ ऐसे नामी सेनिया संगीतज्ञों के साथ रामपुर दरबार में भी कुछ काल तक रहे। ठुमरी के साथ-साथ इसी काल में लखनऊ में कथक नाच का भी उत्थान हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कथक नाच बिन्दादीन की नृत्य-कला में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा था। इसी तरह सादिक अली खाँ की ठुमरी को भी भैया गनपत राव ने अपनी चरम सीमा तक पहुँचाया था। यदि बिन्दादीन ने आधुनिक युग में कथक नाच की प्रामाणिक व्याख्या की और उसकी निर्दोष कला की परम्परा को स्थापित किया, तो भैया साहब गनपत राव ने भी लखनऊ की अथवा पूरब की ठुमरी का अपने बाजे पर सबसे अनोखा अनुवाद किया और फिर उसे मौजुद्दीन खाँ के कण्ठ में उतार दिया। मौजुद्दीन खाँ भैया जी के बाजे पर बजाई गई ठुमरी का अपने कण्ठ से अनुवाद करते थे। जिस तरह भैया जी अपने गुरु सादिक अली खाँ की ठुमरी का पाठान्तर करते थे, उसी तरह मौजुद्दीन खाँ भी अपने गुरु भैया जी की ठुमरी की अपने ढंग से व्याख्या करते थे।

इसलिए यह मानना पड़ेगा कि भैया गनपत राव ही सादिक अली की ठुमरी के सबसे बड़े अनुवादक थे। और जिस तरह भैया जी और बिन्दादीन दोनों समकालीन कलाकार थे और एक ही युग अथवा काल में मौजूद थे, उसी तरह सादिक अली खाँ और बिन्दादीन के पिता ठाकुर प्रसाद भी दोनों समकालीन संगीतज्ञ थे और एक ही काल में लखनऊ में मौजुद थे और एक दूसरे से परिचित भी थे। भैया जी और बिन्दादीन का आमना-सामना भी दो-तीन बार हुआ। इस तरह ठाकुर प्रसाद की नृत्य कला और सादिक अली खाँ की ठुमरी का साथ कभी नहीं छूटा। इसको हम आकस्मिक सम्पात न कहकर घटनाओं का ऐतिहासिक तथा सार्थक सम्पात मानेंगे। कला के क्षेत्र में सांस्कृतिक घटनाओं के ऐसे अनुक्रम को हम हर तरह से महत्वपूर्ण मानेंगे।

संगीत सम्बन्धी इन समकालीन प्रवृत्तियों को और सांस्कृतिक हलचलों को हम अदृश्य शक्तियाँ ही मानेंगे जो संगीत की अनेक शैलियों को प्रोत्साहित करती हैं और कला को भी प्रेरित करती हैं।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, लखनऊ की ठुमरी में लखनऊ की संस्कृति और यहाँ की बोल-चाल की झलक थी। उस पर लखनऊ की तहजीब और यहाँ की शाइस्तगी की छाप पड़ी हुई थी। किसी रचना के शब्दों को जब बोल बनाकर गले से कहा जाता था तो उसमें एक तरह की लुभाने वाली शिष्टता अथवा तहजीब होती थी, अथवा एक तरह का मीठा शिष्टाचार होता था। स्वर इस ढंग से लगाये जाते थे और शब्दों का उच्चारण इस सुहावने ढंग से किया जाता था कि मानों कोई गुदगुदी कर रहा है अथवा हँसी-हँसी में हलकी-सी चिकोटी ले रहा है या शरारत से चुटकी भर रहा है। बोल-बनाव में स्वरों की भी ऐसी छेड़-छाड़ होती थी, जैसे कथक नाच में भाव बताये जाते हैं, उसी तरह ठुमरी में भी बोल बनाये जाते हैं। दोनों में एक तरह की समरूपता है और दोनों एक सिद्धान्त से निर्धारित किये जाते हैं। गायक गले से बोल बनाकर रचना के भावों और सूक्ष्म संकेतों की व्याख्या करता है। एक कथक कलाकार भी अपनी भाव-भंगी और अपनी मुद्राओं के द्वारा अपने नृत्य-अभिनय की विषय वस्तु की अनुपम व्याख्या करता है। कला के यह दोनों अभिनय अपनी-अपनी जगह मुश्किल हैं और प्रवीण कलाकार ही अपने को इस विशेष कला का मर्मज्ञ सिद्ध कर सकते हैं।

"साँची कहो मोसे बतियाँ, कहाँ गवाई रतियाँ—

ठुमरी के इन शब्दों को कोई भी कुशल गायक राग खमाज के स्वरों में छोटे-छोटे बोलों के द्वारा भावुक शैली में कहेगा। इन्हीं शब्दों के अर्थ को एक कथक कलाकार भी अपनी भाव-भंगी के द्वारा समझायेगा। उसके शरीर की मुद्रायें और उनके संकेत इस रचना की अनोखी व्याख्या करते हैं। परन्तु एक गायक के पास स्वरों का ही साधन होता है और वह उनका सदुपयोग करके ही अपनी बात कह पाता है। एक कुशल ख्याल गायक अपनी बन्दिश की व्याख्या को अप्रधान बना सकता है और अपने राग की बढ़त की ओर ही अपना पूरा ध्यान दे सकता है। परन्तु एक ठुमरी गायक ऐसा नहीं कर सकता। वह अपनी रचना की विषय वस्तु की उपेक्षा कभी नहीं कर सकता। इसलिए उसके पास एक ही साधन है और वह है उसका बोल-बनाव। यदि उसमें कल्पना-शक्ति होगी और भावुकता भी होगी और इसके साथ-साथ उसके कण्ठ को स्वरों पर अधिकार होगा तो उसके बोल प्रभावोत्पादक होंगे।

यदि वह ठुमरी गायन में प्रवीण होगा तो वह अपने श्रोताओं को गुदगुदी करेगा, और उनको चुटकी लेगा और उन्हें हँसायेगा और रुलायेगा भी। यह वही कर सकता है जो एक भावुक जीव है और जिसके पास ठुमरी गाने का मिजाज है। जिसमें रंगीन मिजाजी नहीं है वह ठुमरी नहीं गा सकता।

भैरवी की मशहूर ठुमरी "सँवरिया ने जादू डारा बाजूबन्द खुल-खुल जाय" को कुछ गायकों ने बड़े अनोखे ढंग से गाया है। मौजुद्दीन खाँ ने इस ठुमरी को अपने ग्रामोफोन रेकार्ड में गाया है। परन्तु जब स्व० उस्ताद फैयाज़ खाँ ने इस ठुमरी को लखनऊ के 1936 वाले संगीत सम्मेलन में गाया था तो लोग मौजुद्दीन खाँ को कुछ क्षणों के लिए भूल गये थे। बारह वर्ष पहले लखनऊ के 1924 वाले संगीत सम्मेलन में जब वह वाजिद अली शाह की राग भैरवी की ठुमरी "बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय" को गाये थे तो बारादरी में बहुत-से लखनऊ के पहले शिया श्रोताओं के आँसू निकल आये थे। ठुमरी की गायन-कला का यह बड़ा ही सुन्दर उदाहरण था। यह सच है कि दिल वाला ही ठुमरी गा सकता है। ठुमरी दिमाग से सोची जा सकती है परन्तु दिमाग से गाई नहीं जा सकती। अथवा जिसके पास भाव नहीं है तथा सूक्ष्म कल्पनायें नहीं है वह ठुमरी नहीं गा सकता। और यदि वह गायेगा भी तो वह नीरस और बेजान होगी। इसलिए लखनऊ की ठुमरी परिमार्जित और निर्दोष होते हुए भी भावों और कल्पनाओं की बाढ़ के समान है। उसमें लखनऊ की तहजीब बोलती है परन्तु साथ-साथ गायक का दिल भी बोलता है। जो गायक संगीत में शुद्धता और शुद्धाचारवाद के सिद्धान्तों ही का समर्थन करते हैं वह ठुमरी नहीं गा सकते और इसलिए मजबूरन उसका विरोध और बहिष्कार करते हैं। अगर लोमड़ी अंगूरों को खट्टा बताती है तो इससे अंगूरों की मिठास में कमी नहीं आ सकती। शास्त्रीय संगीत के कट्टर समर्थक और उसके विशुद्धवादी विद्वान भी इस सम्बन्ध में अपनी असहिष्णुता का न तो प्रतिवाद कर सकते हैं और न उसकी सफाई दे सकते हैं। सच तो यह है कि शास्त्रीय संगीत के होते हुए भी ठुमरी का अन्त कभी नहीं हो सकता।

लखनऊ की ठुमरी को ही बाद में "पूरब की ठुमरी" के नाम से पुकारा गया। रही बनारस की ठुमरी की बात, वह लखनऊ की ठुमरी का ही अनुवाद है। परन्तु उसका चरित्र थोड़ा-बहुत अलग है। इसका एक विशेष कारण है। बनारस की ठुमरी और बनारस के दादरे पर लोक-संगीत का बहुत बड़ा जबरदस्त प्रभाव पड़ा है और लोक-गीतों की स्वतः प्रवृत्ति भी इन लोकप्रिय शैलियों में प्रवेश कर गयी है। लखनऊ की ठुमरी कला की दृष्टि

से शिष्ट और परिमार्जित है और उसमें इस शैली का औपचारिक शिष्टाचार कूट-कूट कर भरा है। परन्तु बनारस की ठुमरी में लोक-संगीत का भी पुट है। बनारस और मिर्जापुर की चैता-कजरी ने भी इस ठुमरी को प्रभावित किया है। जिस तरह लखनऊ की तहजीब और यहाँ की बोल-चाल लखनऊ की ठुमरी में प्रतिबिम्बित होती है, उसी तरह बनारस की ठुमरी में उस क्षेत्र की बोल-चाल वहाँ की भाषा और वहाँ के लोकगीतों की तर्जों और धुनों का भी थोड़ा-बहुत अनुवाद होता है। और जिस तरह कथक नाच में लोकनृत्य का आभास है, उसी तरह ठुमरी में भी स्वरों की अटपटी और अपरिमार्जित बोल-चाल सुनाई पड़ती है। पीलू, सारंग, मांड, देश, भैरवी और काफी के स्वर लोक-संगीत की धुनों में सुनाई पड़ते हैं जो आगे चलकर रागों का रूप धारण कर लेते हैं। तो जिस तरह कथक नाच में रास-लीला की छबि दिखाई देती है, उसी तरह ठुमरी के स्वरों के लगाव में भी एक तरह का अल्हड़पन और एक तरह की स्वाभाविक स्फूर्ति अथवा छेड़-छाड़ होती है जो अधिकतर बनारस की ठुमरी ही में पाई जाती है और जिसमें लोक गीतों की धुनें भी सुनाई पड़ती हैं। शास्त्रीय संगीत के बहुत-से रागों का उद्‌गम स्थान लोक-संगीत की धुनों में पाया जाता है। बनारस की ठुमरी में लोक-गीतों की धुनों की पुकार है और वह कोरी निर्दोषता और कला सम्बन्धी शुद्धता का दावा नहीं करती। उसने इन प्रभावों को बड़े हर्ष से अपनाया है और अपनी शैली के साँचे में ढाला है। शायद यह कहना गलत न होगा कि यदि लखनऊ की ठुमरी किसी बाग में लगे हुए गुलाब के फूल के समान है, तो बनारस की ठुमरी किसी फुलवारी में लगी हुई चमेली के समान है। परन्तु ठुमरी कोई भी हो, उसे गमले में लगे हुए फूल के समान नहीं होना चाहिए। स्वतः प्रवृत्ति ही उसकी षिशेषता है।

जहाँ तक लोक-संगीत का बनारस की ठुमरी से संबन्ध रहा है, उसकी जानकारी हमें तभी हो सकती है जब हम चैता, कजरी सावन, और वहाँ के लोक-गीतों का अध्ययन करें। जनता के साहित्य और लोकप्रिय संगीत की समीक्षा करने के लिए हम लोक-साहित्य और लोक-संगीत की उपेक्षा नहीं कर सकते। लोक-विश्वास, लोकरीति, लोक-कथा, लोक-आख्यान, लोक-गीत और लोक-कहानी यह सब लोक (चित्त) से संबन्धित होते हैं। समाज-विज्ञानी भी लोक-रीतियों की, छानबीन करते हैं। संगीत-अध्ययन के क्षेत्र में लोक-नृत्य और लोक-गीत अपना अलग महत्व रखते हैं। बनारस की ठुमरी की बोल-चाल में लोक-गीतों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। बनारस के दादरों में भी यही

रंग होता है जैसे "राजन गइला कौन देस कोयलिया बन बन बोलै", "मोरे जुबना पर आइ बहार बलम परदेस न जइहो", "रंग चुए चुनरिया मोरा सैंया खबरिया न लैं" इत्यादि। रही बनारस की ठुमरी की बात, उनका भी रंग निराला है। बनारस की रसूलन बाई की भैरवी की ठुमरी "फूलगेंदवा न मारो लगत करैजवा में चोट" हमारे कानों में मानो बस गयी है। "रस के भरे तोरे नैन", "नाहीं परत मौका चैन", और "रंग देख जिया ललचाये"— इन ठुमरियों को सिद्धेश्वरी देवी और मोती बाई ने भी अपने निराले ढंग से गाया है। गिरिजा देवी भी ठुमरी अपने ढंग से बहुत अच्छा गाती हैं। परन्तु पहली तीन गायिका प्रौढ़ मानी गयी हैं और उन्हें संगीत का बहुत अधिक अनुभव रहा है।

रही लखनऊ की बेगम अख्तर की बात, न तो वह लखनऊ का रंग गाती थीं और न बनारस का। उनकी शैली मिश्रित शैली थी और उसमें पंजाब की ठुमरी की अधिक झलक थी। अताखाँ से शिक्षा पाकर वह पंजाब के प्रभाव से बच न सकीं। उनको हम गजलों का ही विशेषज्ञ मान सकते थे और उनकी लोकप्रियता की दाद दे सकते थे। परन्तु जिन्होंने आगरे वाली जोहरा बाई की मशहूर गजल—"पीके हम तुम चले झूमते मयखाने से" सुनी थी अथवा जिन्होंने मलका पुखराज अथवा मुश्तरी फतेहाबादी को सुना था, वह समझ सकते हैं कि गजल के स्वर भी कितने प्रभावोत्पादक हो सकते हैं। यह सच है कि लखनऊ की ठुमरी अब सुनने में नहीं आती। इस ठुमरी के आखिरी गायक बाबा नसीर खाँ थे जो देहली के घराने से संबन्धित थे और ठुमरी भी बेजोड़ गाते थे। उनके शागिर्दों में स्व० शंभू महाराज में थोड़ी-बहुत प्रतिभा थी परन्तु उन्हें स्वरों का गहरा ज्ञान नहीं था और न उनके बोल-बनाव में कोई विशेष उपज थी। पुरानी गाने वालियों में अच्छन बाई और जली खुर्शेद के कण्ठ में ठुमरी के नक्शे जिन्दा थे और किसी हद तक खीरी की शमीम बाई भी अपने ढंग से ठुमरी की भावनापूर्ण व्याख्या करती थीं। परन्तु लखनऊ में बाबा नसीर खाँ की तरह किसी और ने नहीं गाया। जहाँ तक बनारस की ठुमरी का सम्बन्ध है, मोती बाई और सिद्धेश्वरी देवी ही उसकी प्रामाणिक अनु-वादक मानी जाती हैं। अभी बनारस की ठुमरी और वहाँ का दादरा दोनों जिन्दा हैं।

ठुमरी की एक तीसरी शैली भी है जिसे पंजाब अंग की ठुमरी कहते हैं। बड़े गुलामअली ही इस युग में पंजाब अंग की ठुमरी के अन्वेषक माने जाते थे। आजकल इस ठुमरी का बहुत रिवाज है और हमारे तरुण वर्ग के

गायक पंजाब अंग की ठुमरी का अधिक अभ्यास करने लगे हैं। जिसका गला आसानी से घूमता है वह इस ठुमरी को गाने का प्रयत्न करता है। पतली और सुरीली आवाजें इस प्रलोभन के पाश में आसानी से फँस जाती हैं और फिर उन्हें जब इस ठुमरी की आदत पड़ जाती है तो वह पूरब की ठुमरी के लिए बेकार हो जाती हैं। हमें खेद होता है जब बनारस और लखनऊ की तरफ के रहने वाले भी अब पंजाब अंग की अधूरी और भद्दी नकल करने लगते हैं और अपने को हर तरह से अयोग्य साबित करते हैं। वह जानबूझ कर ऐसा करते हैं जब उनके पास पूरब की ठुमरी गाने का मिज़ाज नहीं होता। एक तरह से वह अपने स्वभाव अथवा अपनी प्रकृति का भी विरोध करते हैं। यदि वह पूरब की ठुमरी के बोलों को नहीं कह पाते तो उनको बहाना मिल जाता है कि वह पंजाब की ठुमरी की नकल करने लगे। संगीत में इस तरह के मनमाने प्रयोगवाद के लिए बहुत गुंजाइश है। इसका उलटा भी होता है जब कोई पंजाब का गायक पूरब की ठुमरी गाने की जबरदस्ती चेष्टा करता है। फलस्वरूप उसकी ठुमरी में पंजाब और पूरब का अप्राकृतिक समिश्रण होता है और वह न तो पंजाब की ठुमरी मानी जा सकती है और न पूरब की। इस बात को हम उदाहरण देकर ही अच्छा समझा सकते हैं। एक पंजाब के गायक जो अपनी किशोर अवस्था में पंजाब के बाहर निकल आये थे, एक प्रसिद्ध ख्याल गायक के साथ हारमोनियम की संगत ही करने लगे थे और उनके साथ तंबूरा छेड़ कर साथ में गाने का काम कभी नहीं करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वह उनसे ख्याल की असली शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके। जो बंदिशें वह बाजे पर निकाल लेते थे वही उन्हें थोड़ी-बहुत याद हो गई थीं। परन्तु वह उस गायक की गायकी से वंचित रह गये। उस गायक के निधन के पश्चात् वह एक और प्रसिद्ध गायक के शिष्य बन गये।

परन्तु इस गायक की गायकी को भी वह अपने कण्ठ में न उतार सके। इसका परिणाम यह हुआ कि वह इन दो प्रसिद्ध गायकों की कुछ बंदिशों को अपने ही ढंग से गाने लगे और गायकी के अनुशासन के प्रति उदासीन हो गये। जो स्वर-उच्चारण उन्होने पंजाब के अपने मामूली गुरुओं से सीखा था उसी के आधार पर उन्होंने अपनी फिरत और तैयारी का निर्माण किया। वह पंजाब अंग की तानों को तीसरी सप्तक तक घुमाने लगे और सच्चे स्वरों से दूर भागने लगे। तैयार गाने को वह सुरीले गाने से अच्छा समझने लगे और अपनी निजी गायकी अलग गढ़ कर उसे ही गाने लगे।

संगीत के सम्बन्ध में जब वह किसी संकट में फंस जाते थे तो वह अपने इन दो नामी गुरुओं का नाम लेकर अपना कान छूते थे और आलोचकों का मुँह बन्द कर देते थे। परन्तु सच तो यह था कि वह इन प्रसिद्ध ख्याल गायकों की गायकी का अनुवाद नहीं कर पाते थे और केवल उनकी दुहाई देते थे। एक तरह से इन दोनों गायकों की ख्याति और यश का रोजगार ही करते थे और उनका नाम लेकर अपनी ख्याति को स्थापित करते थे।

पंजाब के इस सुयोग्य और मेहनती गायक ने जब पूरब की ठुमरी को बनारस की बाइयों से सुना तो वह भी अपने ढंग से ठुमरी गाने लगे। अपनी पतली और लचीली आवाज को तीसरी सप्तक तक घुमाकर वह उत्तर प्रदेश की ठुमरी में पंजाब अंग के अनेक रंग भरने लगे। उनकी यह नई ठुमरी थिगड़ों से भी गयी एक भड़कीली रजाई बन कर रह गयी। बोल-बनाव तो उनके गले में था नहीं परन्तु वह अपनी ठुमरी को बहुरंगी चित्रकारी बनाने लगे और अपने श्रोताओं को किसी तरह खुश करने लगे। उनकी ठुमरी का शरीर तो पूरब की ठुमरी होता था परन्तु उसकी आत्मा पंजाब की ठुमरी होती थी। पंजाब अंग और बिहार अंग की बेतुकी मिलावट से वह अपने बोलों को कहते थे परन्तु बोल बनाव को नहीं जानते थे। अपनी आवाज को दबा कर और उसमें नकली भावुकता भर कर वह लोगों के कुतूहल की तृप्ति करते थे। यथार्थ में वह पूरब की ठुमरी के बोलों को नहीं कह पाते थे। वह अपने नकली स्वभाव से काम लेते थे और इसलिए वह पूरब की ठुमरी के मिज़ाज को न समझ पाये। एक गायक की हैसियत से उनका नाम भी हुआ और उन्हें ख्याति भी अच्छी मिली परन्तु वह ख्याल की असली गायकी और ठुमरी के बोल-बनाव से बहुत दूर रहे। गुणी जन उनके जोश अथवा उत्साह की तो दाद देते थे परन्तु संगीत के क्षेत्र में उन्हें एक विवादास्पद कलाकार ही मानते थे। बाद में वह भी संगीत-संसार से विरक्त होकर संगीत-शिक्षा के काम ही में जुट गये। बहुत से श्रोतागण उनकी मशहूर ठुमरी—"अनारी सैंया क्या जाने पीत की रीति", को अब तक याद करते हैं कि वह किस ढंग से ठुमरी को पंजाब अंग की हरकतों से सुशोभित करते थे और उसे एक हसीन धोखा बनाते थे।

यह तो हुई ठुमरी के मिजाज की बात। परन्तु हमें यह मानना पड़ेगा कि पंजाब अंग की ठुमरी पंजाब के गायकों के कण्ठ से ही अच्छी लगती है। पंजाब के गायक आम तौर से पूरब की ठुमरी के खालिस बोल-बनाव को नहीं कह पाते। यहाँ के गायक भी पंजाब अंग की ठुमरी की सही व्याख्या नहीं कर

पाते। परन्तु पंजाब अंग की ठुमरी में भी एक अनोखा आकर्षण होता है। जिस तरह बनारस की ठुमरी लोक-संगीत से प्रभावित हुई है, उसी तरह पंजाब की ठुमरी में भी पंजाब के लोकगीत पहाड़ी और माहिया का पुट है। जिस तरह बंगाल का बाउल और वहाँ की पटियाली होती है, उसी तरह पंजाब का माहिया और वहाँ की पहाड़ी होते हैं। बड़े गुलाम अली खाँ ने पंजाब के लोक-संगीत का सबसे अधिक लाभ उठाया और पंजाब की ठुमरी को बड़े अनोखे ढंग से गाया। उन्हीं के आदर्श का अनुकरण पंजाब के सारे गायक करते हैं। उनके छोटे भाई बरकत अली भी पंजाब के लोक गीतों को बहुत अच्छा गाते थे। परन्तु जिस तरह से बड़े गुलाम अली खाँ ने पंजाब की ठुमरी की भावुक व्याख्या की वैसा किसी और गायक ने नहीं किया। उनके उस ठुमरी-गायन की प्रामाणिकता पर कोई आक्षेप नहीं कर सकता था। ऐसी भद्दी आलोचना वही गायक करते हैं जो अपने ठुमरी गायन में अवांछनीय प्रयोगों का सहारा ढूंढते हैं।

सच तो यह था कि उनके कंठ से लोकप्रिय संगीत विशेष रूप से पंजाब का माहिया और वहाँ की पहाड़ी बहुत सुन्दर लगता था। उनका गला इस तरह के भावुक संगीत के लिए ही बना था। हम उनके ख्याल-गायन पर टिप्पणी नहीं करना चाहते। परन्तु इतना कहना आवश्यक है कि वह पटियाला घराना के होते हुए भी फतह अली और अलीबख्श की असली गायकी नहीं गाते थे। वह गायकी देहली के घराने की गायकी पर आधारित थी जिसके जन्मदाता तानरस खाँ माने गये हैं। न वह देहली घराने की गायकी से भली-भाँति परिचित थे और न वह उस घराने की बंदिशों को गाते थे। गायकी के मामले में वह एक आजाद गायक थे और वह अपनी निजी गायकी ही को गाते थे। परन्तु जो कुछ वह गाते थे वह कानों को सुरीला लगता था और उसमें कला की दृष्टि से एक प्रभावोत्पादक भावुकता भी होती थी। उनकी तैयारी भी दोषरहित थी और उनका गला स्वरों की मुश्किल जगहों पर भी घूमता था। पंजाब की ठुमरी ऐसे सुन्दर कण्ठ से ही भली मालूम पड़ती है। पंजाब के एक दूसरे गायक का यह दावा था कि वह बाजे पर बड़े गुलाम अली खाँ की सब हरकतों को निकाल सकते हैं। परन्तु यह केवल उनकी झूठी चुनौती थी और इसमें कोई सत्य नहीं था।

यह मानना पड़ेगा कि आधुनिक युग में बड़े गलाम अली खाँ ने ही पंजाब की ठुमरी को बेजोड़ गाया। इसकी प्रेरणा उन्हें अपने पिता अली-बख्श से मिली थी। अलीबख्श ने ही सबसे पहले पूरब की ठुमरी को सुना था

और उसकी शैली से प्रेरित हुए थे। उन्होंने ही सबसे पहले पंजाब के लोक-गीतों के सहारे उसका अनुवाद पंजाब अंग में किया था। उन्हीं की प्रेरणा से उनके दोनों लड़कों ने–गुलाम अली खाँ और बरकत अली खाँ ने–इस रंग को गाना शुरू किया था। बरकत अली खाँ की अकाल मृत्यु के पश्चात् गुलाम अली खाँ ही इस नई शैली की सबसे सुन्दर व्याख्या करते थे। अपने जीवन के अन्तिम काल तक वह इस ठुमरी के बेजोड़ गायक थे। उनकी रचना—"का करूँ सजनी आयें न बालम" देश भर में मशहूर हो गयी थी। वह पंजाब अंग के सबसे बड़े अनुवादक थे और जिस निराले ढंग से उन्होंने पंजाब की ठुमरी अथवा पंजाब अंग की ठुमरी को गाया वैसा किसी और ने नहीं गाया। बरकत अली और गुलाम अली पंजाब अंग के प्रसिद्ध अनुवादक माने जायेंगे। इस सम्बन्ध में पंजाब की गायिका इलाही जान का नाम भी उल्लेखनीय है। परन्तु आम जनता में इन्हीं दो प्रतिभाशील भाइयों को सबसे अधिक ख्याति मिली थी। पंजाब के सुप्रसिद्ध गायक श्री दिलीप चन्द्र वेदी ने भी इस अंग को अच्छा-खासा गाया है परन्तु बड़े गुलाम अली खाँ की बात ही कुछ और थी और न ऐसा सुरीला कंठ वेदी जी के पास था।

पंजाब के बाहर और प्रान्तों में भी कुछ तरुण कलाकार पंजाब अंग की ठुमरी गाने का प्रयत्न करने लगे हैं। परन्तु कहाँ तक उनको ऐसे प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई है यह बताना मुश्किल है। कुछ गायक जो इस शैली की नकल करते हैं शायद इसलिए कि उन्हें पूरब की ठुमरी की कोई जानकारी नहीं होती और उनके गले भी अपने लिए एक आसान रास्ता ढूँढ़ते हैं। यह मानना पड़ेगा कि पंजाब अंग की ठुमरी की तुलना में पूरब की ठुमरी का बोल-बनाव बहुत मुश्किल है। गले को आसानी से स्वरों पर घुमाना फिर भी आसान है, परन्तु उसकी रोक-थाम करना और उसे बोल-बनाव की तरफ डालना बड़ी मुश्किल बात है। पूरब की ठुमरी की विशेषता, चाहे वह लखनऊ की हो अथवा बनारस की, बोल-बनाव ही में है। बोल-बनाव ठुमरी की जान है। नये-नये बोल बनाना और उन्हें नये-नये ढंग से कहना कोई आसान बात नहीं है। शब्दों का सही और भावुक उच्चारण और आवाज का लगाव यह सब बोल-बनाव को सजाते हैं। शब्दों को किस ढंग से कहा जाये और उनकी तोड़-मरोड़ किस अनोखे ढंग से की जाये, यह सब गायक नहीं कर पाते। प्रायः यह देखा गया है कि उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त बंगाल, गुजरात, बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब, मध्यप्रदेश और दक्षिण के लोग ठुमरी के बोल निर्दोषता से नहीं कह पाते। जिस सरल, भावुक और लोचदार शब्दा-

वली में ठुमरी की रचनायें होती हैं उसको बोल-बनाव के साँचे में ढालना कोई मामूली बात नहीं है। बहुत-से गायक ठुमरी तो अच्छा गा लेते हैं परन्तु उनके बोलों में भाषा, उच्चारण और स्वरों के लगाव का दोष होता है। यह आलोचना उन बंगाली गायकों पर भी लागू है जिन्होंने ठुमरी गाने में बहुत कुछ नाम कमाया है। यह उनकी भाषा और उनके उच्चारण का दोष है जिसे वह नहीं जानते। स्व० शंभू महाराज जिन्हें ठुमरी गाने का अच्छा अभ्यास था, इन पंक्तियों के लेखक से बहुधा इस विषय पर विचार-विनिमय करते थे और ऐसे गायकों की तीव्र आलोचना करते थे। वह जबान के ऐसे खरे और मुँहफट थे कि अपने खास शिष्यों के साथ भी रियायत नहीं करते थे और उनका विकृतीकरण करते थे अथवा कभी-कभी उनकी हँसी भी उड़ाते थे। परन्तु उनकी आलोना निर्मूल नहीं होती थी। जहाँ तक ठुमरी में शब्दों के सही उच्चारण और बोल-बनाव का सम्बन्ध है हमें यह कहने में, कोई संकोच नहीं होता कि बंगाल और महाराष्ट्र के कुछ नामी ठुमरी गायक भी ऐसे दोषारोपण से मुक्त नहीं हैं। सच तो यह है कि उत्तर प्रदेश के गायकों ने ही पूरब की ठुमरी को सब तरह से प्रामाणिक बनाया है। मौजुद्दीन खाँ तो इस क्षेत्र में अपवाद माने जायेंगे। पंजाब के होते हुए भी पूरब के बोल बनाव पर उन्होंने अधिकार प्राप्त किया था। इसका श्रेय उनके पूज्य गुरु भैया साहब गनपत राव को ही था जो लखनऊ के सुप्रसिद्ध गायक और ठुमरी के आविष्कारक और अन्वेषक सादिक अली खाँ के शिष्य थे। ऐसा दूसरा उदाहरण ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा।

अन्त में हम यही कहेंगे कि लखनऊ की ठुमरी का घराना आज भी जिन्दा है। जहाँ-जहाँ पूरब की ठुमरी गाई जाती है वह लखनऊ की ठुमरी का ही अनुवाद है। बनारस की ठुमरी भी लखनऊ की ठुमरी का पाठान्तर है। ठुमरी का मूल स्रोत लखनऊ है और इस लोकप्रिय शैली के आदि पुरुष सादिक अली खाँ थे। पंजाब की ठुमरी भी पूरब की ठुमरी का एक अधूरा अनुवाद है। और प्रान्तों में भी इस ठुमरी के अलग-अलग रूप दिखाई देते हैं जिनमें यह ठीक से पहचानी नहीं जाती। न तो लखनऊ की ठुमरी के घराने का अन्त हुआ है और न उसकी शैली का अन्त हुआ है। वह आज भी जिन्दा है परन्तु उसकी वेश-भूषा बहुत-कुछ बदल गयी है। बनारस की ठुमरी जिन्दा है। जब तक लोकप्रिय संगीत जिन्दा है तब तक ठुमरी का अन्त नहीं हो सकता। ठुमरी के साथ दादरा भी जिन्दा है। माना कि अब हमें लखनऊ के पुराने दादरे—"जिया में लागी आन बान।" "चीन्हत नाहीं बदल गये

नैना।" "पानी भरे री कौन अलबेले की नार"—सुनाई नहीं पड़ते परन्तु फिर भी उनकी यादगार ताजा करने वाले गायक अभी भी इधर-उधर मौजूद हैं। लखनऊ में ठुमरी और दादरे के एक सुयोग्य और प्रतिभासम्पन्न गायक बाबा नसीर खाँ ही थे। उन्हीं की नकल शंभू महाराजा भी किसी हद तक उतारते थे परन्तु भाव-अभिनय ही उसकी विशेषता थी। ठुमरी तो उनके भाव-अभिनय की विषयवस्तु थी और वह उसके विशेषज्ञ नहीं थे।

लखनऊ की ठुमरी का रूप बदल गया है और उसका विस्तार भी कम हो गया है। संगीत के कुछ क्षेत्रों में तो उसका बड़ी आजादी से अनुवाद किया जा रहा है और कहीं-कहीं उसका असली रूप भी बिगाड़ा जा रहा है। यदि हमारे ख्याल-गायक उसके साथ मनमानी करेंगे तो ठुमरी में भी तान और सरगम का प्रवेश हो सकता है और वह द्रुत लय का ख्याल बनकर ही रह जायेगी। वह गायक जो कल्पनामय और भावनापूर्ण कलाकार हैं अथवा जिनमें कल्पना शक्ति है और सूक्ष्म कल्पनायें भी हैं और इसके साथ-साथ जिन्हें स्वरों का सूक्ष्म ज्ञान भी है और जो उच्चारण और बोल-बनाव के भेदों को जानते हैं, वही ठुमरी अच्छी गा सकते हैं। सहृदय और भावुक गायक ही ठुमरी गा सकता है। ठुमरी की नजाकत, उसका शृंगार और उसकी बोलचाल सब अपने ढंग के निराले होते हैं, दिलवाला ही ठुमरी गा सकता है। दिमागी गवैया ठुमरी के नजदीक भी नहीं आ सकता। जो गायक गागर में सागर भर सकता है और भावों और सूक्ष्म कल्पनाओं की चित्रकारी कर सकता है वही ठुमरी गा सकता है। लखनऊ की ठुमरी स्वरों और शब्दों से यही कहती है :

"मेरी आँखों से होकर खानयेदिल में उतर आओ।
मकाँ छोटा है लेकिन आपके रहने के काबिल है।"

15

# लखनऊ के कथक नाच का घराना :

प्रस्तुत वर्णन का उद्देश्य लखनऊ के कथक नाच के घराने की वंशावली बताना नहीं है, परन्तु यह बताना है कि व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में उसका क्या महत्व रहा है। घराने की इस पुस्तक का अन्त हम लखनऊ के कथक घराने के संक्षिप्त वर्णन से करेंगे। कंठ संगीत और वाद्य संगीत के घरानेदार कलाकारों का वर्णन करने के पश्चात हम घरानों की इस चर्चा का अन्त कथक नाच के घराने से करेंगे। परन्तु न तो यहाँ हम कथक नाच की ऐतिहासिक समीक्षा कर रहे हैं और न लखनऊ घराने के पूर्वजों का वर्णन कर रहे हैं। आधुनिक युग में यह नाच प्रगतिशील कैसे बना और अपनी प्रौढ़ता पर कैसे पहुँचा, इसी के बारे में हम इस अध्याय में दो-चार बातें कहेंगे। आधुनिक युग में हम बिन्दादीन को ही इस नाच का सर्वश्रेष्ठ कलाकार और मार्गदर्शक मानते हैं। उनके पिता का नाम ठाकुर प्रसाद था और वह नवाब वाजिद अली शाह को कथक नाच की शिक्षा देते थे। ठाकुर प्रसाद एक विद्वान शिक्षक और प्रौढ़ कलाकार थे और अपने बेटे बिन्दादीन को आठ-नौ वर्ष की अवस्था से नाच की शिक्षा दे रहे थे। हम इस अध्याय को वाजिद अलीशाह के दरबार की एक ऐतिहासिक घटना के वर्णन से आरम्भ करते हैं।

वाजिद अली शाह को संगीत और कविता दोनों से हार्दिक प्रेम था। वह शायर थे और उनका उपनाम "अख्तर पिया" था। देहली के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह "जफर" को भी संगीत से इतना गहरा प्रेम था कि वह देहली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक तानरस खाँ को अपना गुरु मानते थे। लख-

नऊ और देहली के यह दोनों आखिरी बादशाह एक दूसरे के समकालीन थे। जैसे, देहली के दरबार में अनेक सुप्रसिद्ध गायक और वादक नियुक्त थे, उसी तरह लखनऊ के नवाबी दरबार में भी बड़े-बड़े कलाकार मौजूद थे। गायकों में हैदर खाँ, सादिक अली खाँ और दूल्हे खाँ ऐसे प्रतिष्ठित गायक लखनऊ के दरबार से सम्बन्धित थे। बहुत-से नामी वादक भी इस दरबार में मौजूद थे। कथक नाच के प्रकाण्ड पंडित और अद्वितीय कलाकार ठाकुर प्रसाद अवध के बादशाह वाजिद अली शाह के गुरु थे और उन्हें नाच की शिक्षा देते थे। एक कलमी तसबीर में वाजिद अली शाह कथक नाच के अनोखे अन्दाज में खड़े हुए दिखाये गये हैं। दरबार में गाने-बजाने और नाच की चहल-पहल थी और शेरो-शायरी का रंगोन समा था। संगीत और कविता की गंगा-जमुना इस दरबार में सदा बहती थी और नवाब वाजिद अली शाह अवध के कन्हैया और रसिया थे। लखनऊ के इस दरबार की अन्तिम घड़ियाँ नाजो-अदा और राग-रंग के वातावरण में कट रही थीं। एक दिन इस दरबार में एक ऐसी शानदार महफिल का आयोजन हुआ जिसमें बालक बिन्दादीन के नाच का और कुदऊ सिंह ऐसे अद्वितीय पखावज-वादक की पखावज का मुकाबला हुआ। अवध के बादशाह ने हुक्म दिया कि ऐसी महफिल का आयोजन किया जाये जिसमें नौ बरस का बालक बिन्दादीन प्रौढ़ कलाकार कुदऊ सिंह की पखावज के साथ अपना नाच नाचे। यह ऐसी प्रतियोगिता थी जिसमें एक नन्हा बालक एक जवान और नामी पखावजिये का मुकाबला कर रहा था। इसलिए इस शाही दरबार में एक भीड़ जमा हो गयी थी और बड़े-बड़े गायक और वादक इस निराली संगीत-गोष्ठी में जमा हो गये। नवाब वाजिद अली शाह स्वयं इस महफिल में विराजमान थे और उनके गुरु ठाकुर प्रसाद अपने बेटे बिन्दादीन के पास चिंता में डूबे हुए बैठे थे। कहाँ नौ बरस का अबोध बालक बिन्दादीन और कहाँ कुदऊ सिंह ऐसा बेजोड़ पखावजिया। इसलिए श्रोता और दर्शक और भी उत्सुक थे कि देखें इस मुकाबले का क्या नतीजा होता है। ठाकुरप्रसाद को सबसे बड़ी चिंता इस बात की थी कि कहीं बिन्दादीन लय और ताल में कुदऊ सिंह से मार न खा जायें। तब तो उनकी प्रतिष्ठा पर कलंक लग जायेगा और वह बादशाह को और दरबार के सामंतों और समझदारों को अपना मुँह नहीं दिखा सकेंगे। ऐसी हार उनके लिए मृत्यु के समान थी। उसके बाद उनका जीना भी व्यर्थ था। इसलिए निराशा के इस अंधकार में उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा। अंत में उन्होंने अपने मन में ठान लिया कि यदि उनके बेटे बिन्दादीन की

हार हुई तो वह आत्म-हत्या कर लेंगे। उनका यह फैसला अटल था और वह अपने कुर्ते की जेब में जहर की एक छोटी-सी पुड़िया छिपा कर लाये थे। परन्तु किसी को इस बात का पता नहीं चला था।

थोड़ी ही देर में महफिल का आरम्भ नवाब वाजिद अली शाह के इशारे पर हुआ। कुदऊ सिंह ने अपनी पखावज की बाईं तरफ आटा मढ़ लिया और उसकी थाप से महफिल चौंक पड़ी और उसका उत्साह बढ़ गया। ठाकुर प्रसाद ने भी अपने नौ बरस के बेटे के पैरों में पाँच-पाँच सेर के खूबसूरत घुंघरू बाँधे और अब वह बालक नाच के अंदाज में बालक कृष्ण के रूप मे खड़ा था। कुछ ही समय के पश्चात् उसके पैर के घुंघरू सुनाई पड़े और वह तीन ताल की सोलह मात्राओं में नाचने लगा। कुदऊ सिंह भी अपनी पखावज पर इस ताल के बोलों को बड़ी निपुणता से निकाल रहे थे। जब बालक बिन्दादीन पखावज के साथ सम पर आता था तो महफिल फड़क उठती थी। मुद्राओं और भावों के प्रदर्शन के साथ-संगत कानों और आँखों को बड़ी भली मालूम दे रही थी। छोटे-छोटे टुकड़े कह कर जब यह बालक सम पर आता था तो कुदऊ सिंह भी अपनी पखावज पर उसका जवाब देते थे और घुंघरुओं की गति उनकी पखावज पर ठीक-ठीक उसी तरह सुनाई पड़ रही थी। तीन ताल की संगत का अपूर्व आनन्द नृत्य-कला के इस अनोखे प्रदर्शन में आ रहा था। मात्राओं की बोल-बाँट और मुद्राओं का बनाव और श्रृंगार दर्शकों के उत्साह को उत्तेजित कर रहे थे। कुदऊ सिंह भी सहयोग की भावना से इस संगत में चार चाँद लगा रहे थे। सम आने पर महफिल फड़क जाती थी और "वाह वाह" और "सुभान अल्ला" के नारे महफिल में गूंज जाते थे। वाजिद अली शाह के ओठों पर आनन्द की एक हल्की सी मुस्कान आती थी और फिर हर्ष से उनका चेहरा दमक जाता था। उनकी आँखें बिन्दादीन के पैरों पर और कुदऊ सिंह की पखावज पर टिक गई थीं। सारी महफिल की नजर बिन्दादीन के पैरों पर थी। यह दो हाथों और दो पैरों के बीच की लड़ाई थी। कुदऊ सिंह बड़ी दया और सहानुभूति की दृष्टि से बिन्दादीन की ओर देख रहे थे। ठाकुर प्रसाद की आकृति पर अनेक भाव आते थे जिनसे दुविधा, शंका, चिंता, आशा और निराशा के संकेत प्रदर्शित होते थे। जब बिन्दादीन सम पर बेधड़क आता था और महफिल खुशी से चीख पड़ती थी और बादशाह की भाव-भंगी में एक नयी स्फूर्ति दिखाई देती थी, तो ठाकुर प्रसाद की आँखों में भी गर्व उमड़ पड़ता था और वह आत्म-सम्मान की भावना से महफिल की तरफ देखते थे। बिन्दादीन भी बड़ी

निर्भीकता के तेवर से कुदऊ सिंह की तरफ देखता था और अपने नाच की लय को बढ़ाता चला जाता था।

इस नाच के साथ लखनऊ के प्रसिद्ध सारंगी–नवाज उस्ताद मखमूर लहरा छेड़ रहे थे। राग केदारा में बँधा हुआ यह लहरा कथक नाच के लिए ही बना था। जब वह मध्यम पर जोर देते थे तो महफिल में एक अजीब समा छा जाता था। कुदऊ सिंह भी इस नगमे से प्रोत्साहित होकर अपनी पखावज का असली हुनर दिखा रहे थे। यह वही मशहूर पखावजिये कुदऊ सिंह थे जिनकी 'गजपरन' सुनकर हाथी मस्त हो जाते थे और फीलखाने के बाहर निकल आते थे। यह वही कुदऊ सिंह थे जिन्हें जगदम्बे का इष्ट था और जब वह अपनी पखावज को ऊपर उछाल देते थे तो वह ठीक समय पर उनके हाथों में लौट आती थी। उनकी तीन ताल की संगत लाजवाब थी। बिन्दादीन भी उसको सुनकर जोश से भर जाता था और बेथकान नयी-नयी परनों और नये-नये टुकड़ों को पैर से निकालता था। जिस तरह घुँघरू सोलह मात्राओं को लय में बिठाते थे, उसी तरह पखावज पर भी "धा धिन-धिन ता" के बोल बड़ी खूबसूरती से निकल रहे थे। यदि यह बालक बिन्दादीन टुकड़े और परन न कह कर केवल सीधा-सीधा तीन ताल नाचता और भावों का अनोखा अभिनय ही करता तब भी महफिल घण्टों बैठ कर उसके नाच को देख सकती थी। ठाकुर प्रसाद पीछे बैठे हुए बिन्दादीन को इशारा करते जाते थे और अपने हाथ से ताल भी दे रहे थे। वाजिद अली शाह इस अभिनय को बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। उनकी नजरों में कुतूहल था परन्तु कभी-कभी वह एक तरह के भय से भी सहम जाती थीं। कुछ क्षणों के लिए वह अपने मन में पछताते थे कि उन्होंने ऐसी महफिल के आयोजन का हुक्म क्यों दिया। कुदऊ सिंह की पखावज सुनकर वह अपने मन में कुछ क्षणों के लिए सहमे। मगर जब उन्होंने बिन्दादीन की निर्भीकता के तेवर को देखा और उसके लय के चमत्कार को देखा तो वह चिंता से मुक्त हो गये। महफिल में बैठे हुए बड़े-बड़े सम्मानित दरबारी और सामंत वाजिद अली शाह की बदलती हुई मुद्राओं को देख रहे थे। और जब नवाब साहब अपनी उँगलियों से लय की रफ्तार को गिनने लगते थे और उनके पैर की उँगलियों में भी हरकत होने लगती थी, तो खुशामदी दरबारी भी हर्ष और उमंग से उछल पड़ते थे। ठाकुर प्रसाद भी जब अवध के बादशाह का यह भावुक अभिनय देखते थे तो कुदऊ सिंह की तरफ देखकर अपने बेटे बिन्दादीन की हिम्मत बढ़ा कर कहते थे : "शाबाश। अब अपनी लय बढ़ाओ।" इतना सुनते ही बिन्दादीन अपनी

18

लय को वहुत बढ़ाकर नाचने लगा और अब वह नये-नये टुकड़ों और परनों को भी धुँआधार नाच रहा था।

जब लय और बढ़ी और तीन ताल हवा हो गयी तो कुदऊ सिंह ने बड़े अचम्भे से बिन्दादीन के पैरों की तरफ देखा। उसने अपने मन में सोचा कि उस बच्चे को भी किसी देवता का वरदान मिला था जो वह उस तेज लय पर भी इतनी आसानी से नाच रहा था और अपने पैरों से मुश्किल परनों को भी ले रखा था। कुदऊ सिंह भी सावधान होकर बजाने लगे। इसको देखकर बिन्दादीन बड़े जोश में भर गया और तीन ताल की रफ्तार और अधिक बढ़ गई। ठाकुर प्रसाद के संकेतों की उपेक्षा करके वह अपनी इस अनहोनी लय पर नाचने लगा। ऐसा मालूम पड़ता था कि ठाकुर प्रसाद के साथ अवध के नवाब भी चिंता में डूब गये। दोनों के मन में एक ही विचार उठा; "अब क्या होगा ?" मगर बालक बिन्दादीन के घुंघुरू आँधी की तरह उड़ रहे थे। पखावज पर तीन ताल के बोल उस रफ्तार पर भी साफ-साफ चार-चार अलग सुनाई पड़ रहे थे। यही हाल बिन्दादीन के पैरों का था। उन पर "ना धिन नाधिन ना" साफ-साफ सुनाई पड़ रहा था। परन्तु इस लय पर बहुत देर तक नाचना बिन्दादीन ऐसे छोटे बालक के लिए असम्भव था। ठाकुर प्रसाद नहीं चाहते थे कि लय इतनी बढ़ा दी जाये कि उससे कोई खतरा पैदा हो। नवाब वाजिद अली शाह भी यही सोच रहे थे। महफिल में बैठे हुए समझदार श्रोता और दर्शक भी यही सोच रहे थे। कुदऊ सिंह और बिन्दादीन की नजरें भी आपस में मिल रही थीं। कुदऊ सिंह ने बिन्दादीन की तरफ देखकर कहा : "शाबाश। वाह वाह। सुखी रहो।" यह सुनकर ठाकुर प्रसाद की बाछें खिल गयीं और वह गर्व से फूले न समाये।

दोनों कलाकार लय के पुतले थे। कुदऊ सिंह का ऐसी तेज लय पर बजाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। परन्तु बिन्दादीन का इस लय पर नाचना अचम्भे की बात थी और जब बिन्दादीन छोटे-छोटे टुकड़ों को लेकर सम पर आने लगा तो लोग हैरत में पड़ गये। बादशाह ने देखा कि बिन्दादीन कुछ थका सा दिखाई दे रहा था। जब उन्होंने हाथ से इशारा किया कि उस संगत का अब अन्त हो तो बिन्दादीन एक लम्बी और मुश्किल परन लेकर सम पर इस अचानक ढंग से आया कि अगर कुदऊ सिंह सावधान न होता तो सम से अलग हो जाता। महफिल के अन्त होने पर कुदऊ सिंह ने बालक बिन्दादीन को अपनी गोद में ले लिया और ठाकुर प्रसाद से बोले, "लड़का क्या है कुदरत का एक अचम्भा है। इसे भगवान कृष्ण का वरदान

है।" इसके बाद नवाब वाजिद अली शाह की तरफ से दोनों को बराबर-बराबर पुरस्कार बाँटे गये। अवध के बादशाह को इस बात पर गर्व था कि उनके पूज्य गुरु ने अपने सुपुत्र बिन्दादीन को बाल्यावस्था में ही एक प्रवीण कलाकार बना दिया था। कुछ क्षणों तक उनके हाथों और पैरों में गति होती रही और उनकी आँखों में ऐसी मस्ती छा गयी मानों वह कथक नाच का कोई भाव बता रही थीं।

आगे चलकर यही नन्हाँ बालक बिन्दादीन अपने घराने का सर्वश्रेष्ठ कलाकार और कथक नाच का अद्वितीय विद्वान और मार्गदर्शक माना गया। आज भी यह घराना इन्हीं "महाराज बिन्दादीन" के नाम से चल रहा है। लुच्छू महाराज कभी-कभी विद्रोह की भावना से प्रोत्साहित होकर कह बैठते हैं कि "बिन्दादीन कोई वेद-वाक्य नहीं थे।" परन्तु कदाचित वह इसलिए ऐसा कहते थे और वह शायद इस बात के कायल थे कि कथक नाच का शीघ्रता से आधुनिकीकरण किया जाये। जो कुछ भी हो, वह अपने मन में अभी भी जानते हैं कि उनके चाचा महाराज बिन्दादीन ने कथक का अवतार लिया था और इस घराने के जन्मदाता और मार्गदर्शक थे। वही इस नाच के सर्वोच्च कलाकार थे और उनके पूज्य पिता कालका प्रसाद उनके नाच की संगत तबले पर करते थे। इन्हीं महाराज बिन्दादीन से शिक्षा पाकर कालका प्रसाद के सुपुत्र अच्छन महाराज ने अपने छोटे भाइयों को-लुच्छू महाराज और शंभू महाराज को कथक नाच की पूरी शिक्षा दी थी। बिन्दादीन का कथक नाच आधुनिक प्रयोगवाद की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। यह प्रतिष्ठित और परम्परागत नृत्य शैली अपनी पुरानी परम्परा से विभाजित नहीं की जा सकती। आधुनिक नृत्य-कला के सारे मूल्य उस पर लागू नहीं किये जा सकते। जिस मनोविज्ञान को बिन्दादीन लेकर चले थे उसका चरित्र भारतीय था और उनकी नृत्य-कला हिन्दुस्तानी संगीत के सिद्धान्तों पर आधारित थी। आधुनिक प्रयोगवाद का नारा बुलन्द करके हम बिन्दादीन की नृत्य-कला की ठीक व्याख्या नहीं कर सकते और न हम उसका सही अन्दाजा ही लगा सकते हैं। कथक नाच अपनी परम्परा से अलग नहीं किया जा सकता।

यह बात कौन नहीं जानता कि आधुनिक युग में बिन्दादीन ही इस घराने के जन्मदाता माने जाते हैं। जो कुछ विद्या उन्हें अपने पूज्य पिता से मिली थी उसी के आधार पर उन्होंने अपनी नृत्य-कला का निर्माण किया था और उसे एक लय साँचे में ढाला था। उनकी विलक्षण प्रतिभा ने ही कथक

नाच को नया जीवन प्रदान किया था और उसमें जान डाली थी। जो कुछ उन्होंने अपने पूज्य पिता ठाकुर प्रसाद से सीखा था वह उनके ज्ञान की पूँजी थी। यदि वह अपनी पैतृक संपत्ति को केवल सेंत कर रखते और उस धन से ज्ञान और व्यावहारिक कला की और दौलत न कमाते तो इस घराने के नाच की इज्जत का अब तक सर्वनाश हो गया होता। उनकी प्रतिभा अद्भुत थी और उनकी सृजनात्मक कल्पना भी विलक्षण थी। आविष्कारक और खोजबीन की प्रवृत्ति उनमें बाल्यावस्था से थी। हम देख चुके हैं कि जब वह नौ वर्ष के बालक थे उस समय भी उनमें कितनी निर्भीकता और आत्म-निर्भरता थी और किस तरह उनके नन्हें पैरों ने कुदऊ सिंह की पखावज को चुनौती दी थी वह ताल और लय की इस कड़ी की जाँच में सच्चे उतरे थे और यह उनकी पहली कठिन परीक्षा थी। जो बालक कुदऊ सिंह ऐसे प्रौढ़ और बेजोड़ पखावजिये की संगत में अपना नाच बेथकान नाच सके और जिसके पैर हवा में उड़ सकें, वह लय का अनोखा मर्मज्ञ था और उसमें एक तरह की अकाल प्रौढ़ता थी। उसने एक अनहोनी बात को भी संभव बना दिया और इतनी छोटी अवस्था में भी अपने अनोखे ताल-ज्ञान का सबूत दिया था। उसने उस शानदार महफिल में ठाकुर प्रसाद की चेतावनी की भी उपेक्षा की और कथक नाच के बँधे-टके अनुशासन का भी विरोध किया। वह अपने सामर्थ्य ही पर कुदऊ सिंह की पखावज के साथ बेजोड़ नाचा था और ताल के उस घातक संकट से बच कर निकल आया था। महफिल में बैठे हुए गुणीजन पर इसका समक्ष संघात हुआ और महफिल अचम्भे में पड़ गई। कथक-सम्राट् ठाकुर प्रसाद ने जब यह सब देखा तो उन्होंने मन ही मन अपने बेटे बिन्दादीन को "शाबाश" कहा और उसे आशीर्वाद दिया। आत्महत्या के विचार को छोड़ कर वह कथक नाच के भविष्य की बात सोचने लगे। उन्हें संतोष हुआ कि बिन्दादीन के हाथों वह कथक नाच के भविष्य को सौंप सकते थे और उन्हें कोई भय नहीं था। वह विद्वान जो कला का विवेचनात्मक चिंतन करने की क्षमता रखते हैं, इस घटना की सार्थकता पर ठीक विचार कर सकते हैं। बिन्दादीन ने आगे चलकर जिस नृत्य-कला की बागडोर अपने हाथ में ली, उसकी प्रगति को कोई शक्ति नहीं रोक सकती थी। इस विश्वास की प्रेरणा ने ही ठाकुर प्रसाद के जीवन के बचे हुए वर्षों को सुखी बनाया और उनका नाच बिन्दादीन के नाच में जिन्दा रहा।

इसलिए बिन्दादीन को ही हम इस घराने की नृत्य-कला का निर्माता

मानते हैं। नृत्य-कला की जिस बपौती को उन्होंने अपनी विरासत में पाया था वह उनके हाथों में दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती ही चली गयी। कला का वह पुराना मकान जो उन्होंने अपने पूर्वजों से पाया था, आगे चल कर एक आलीशान और गगनचुम्बी अट्टालिका बन गया और उनके नाच की लय आसमान से बात करने लगी। ठाकुर प्रसाद की नृत्य-कला के बारे में हमारी जानकारी अधूरी है। कथक नाच की मौखिक परम्परा, उसके अधूरे इतिहास और उसकी प्राचीन कथा से जो कुछ ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है, उनके द्वारा ही हमें इस घराने के पूर्वजों की भी थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त अवश्य होती है। लल्लू जी, परकाश जी, रामसहाय और ठाकुर प्रसाद एक गुफा की दीवार के ऊपर अंकित चित्रों के समान हैं। हमें उनकी नृत्य कला का कोई विशेष ज्ञान नहीं हैं। ठाकुर प्रसाद की नृत्य-कला की जो कुछ जानकारी हमको मिल सकती थी वह बिन्दादीन के नाच से ही मिल सकती थी। परन्तु यह बताना असम्भव है कि इस कला-प्रदर्शन में बिन्दादीन की अपनी प्रतिभा का कितना बड़ा हाथ था। बिन्दादीन के नाच में ठाकुर प्रसाद की खालिस नृत्य-कला कहाँ तक मौजूद थी और बिन्दादीन के आविष्कार का आरम्भ कहाँ से होता था, यह बताना मुश्किल है। इतना कहना ही ठीक होगा कि बिन्दादीन ने ठाकुर प्रसाद के नाच को नये वस्त्र पहनाये और कथक नाच की पुरानी मदिरा को कला की नई बोतलों में भर कर उसे और सौंधा बनाया और अधिक मादक भी बनाया। बिन्दादीन सात्विक पुरुष थे और कोई नशा नहीं करते थे। परन्तु उनकी नृत्य-कला में एक अनोखा नशा था जो चढ़ कर जल्दी नहीं उतरता था। लखनऊ के बहुत-से बड़े-बूढ़े आज भी इस बात की गवाही दे सकते हैं।

बिन्दादीन ने अपनी ख्याति और अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का अलग निर्माण किया। जो नृत्य-कला उन्हें विरासत में मिली थी उसका अनुवाद उन्होंने अपनी प्रतिभा के सहारे ही किया। उनमें अपूर्व बुद्धि थी और वह लकीर के फकीर नहीं थे। कला में वह रुढ़िवाद का विरोध करते थे। उनकी नृत्य-कला के दो विशेष पक्ष थे और उनके नाच की दो मुख्य विशेषतायें थीं—भाव-अभिनय और लय और ताल का अनोखा चमत्कार। इसके पहले कि हम इन दो विशेषताओं पर कुछ कहें, हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि उनकी संतान न होते हुए भी उनके भतीजों को ही उनकी कला पहुँची। कालका प्रसाद के बड़े लड़के अच्छन को उनका ताल-ज्ञान पहुँचा और उनके छोटे लड़के शंभू को उनके भाव-अभिनय की कुशलता मिली। अंतर केवल

यह था कि अच्छन ने ही अकेले बिन्दादीन से शिक्षा पाई थी और शंभू को अच्छन ही ने नाच की शिक्षा दी थी। परन्तु कुदरत के भेदों को कौन जान सकता है? शंभू में जन्म से भाव-अभिनय की प्रवृत्ति थी और बिन्दादीन की अज्ञात और अदृश्य प्रेरणा से वह भाव बताने लगे थे। अच्छन पर बिन्दादीन का साया था और उनके ताल-ज्ञान की निपुणता का आवरण उनकी प्रतिभा के कलेवर पर ढँका हुआ था। कोई दैवी शक्ति ही अच्छन की प्रतिभा को प्रोत्साहित करती थी। हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में अच्छन महाराज और शम्भू महाराज के नाच का खुलासा वर्णन कर चुके हैं। इसलिए हम इन दोनों की नृत्य-कला पर विस्तारपूर्वक टिप्पणी न करेंगे और जो कुछ भी कहेंगे वह बहुत संक्षेप ही में कहेंगे।

बिन्दादीन के बारे में यह सुना है कि जब वह अपने बुढ़ापे में भी कृष्ण का रूप धारण करते थे तो लोगों की आँखों के सामने बृज के कन्हैया का रूप आ जाता था। मुद्राओं के द्वारा भाव अभिनय जो कथक नाच की गतों का प्राण है, बिन्दादीन की देन थी और उनका अपना आविष्कार था। उन्होंने इस विशेष कला का कलात्मक निर्माण किया था और उसके मूल सिद्धान्तों को स्थापित किया था। कृष्ण और राधा के जीवन की मार्मिक घटनाओं का चित्रण, उनके प्रेम, विरह और मिलन की कथा का अनोखा अनुवाद जिसमें मुद्राओं की संकेत भाषा का प्राधान्य होता था और इसके साथ-साथ मानव जीवन की परिस्थितियों का भावुक निरूपण और सूक्ष्म विचारों और कल्पनामय और भावनापूर्ण प्रदर्शन—यह सब बिन्दादीन के भाव—अभिनय की विशेषतायें थीं। नृत्य की और शैलियों में भी मुद्राओं का विलक्षण प्रदर्शन होता है जैसे, भरत नाट्यम और कथाकली। वह भी अपने ढंग की निराली मुद्रायें होती हैं और प्राचीन भारतीय संस्कृति से उनका विशेष संबन्ध है। परन्तु कथक नाच की अनन्यता इस बात में है कि इस नाच में जो कुछ भी भावों और विचारों का अभिनय होता है वह सब ताल और लय में होता है। तबले पर ताल बजती जाती है और लय की रफ्तार चलती रहती है और इस नाच का कोई विशेषज्ञ अपने नाच में ही भावों का अभिनय करता जाता है। इसलिए एक प्रवीण कथक को ताल और लय का बड़ा अच्छा ज्ञान होता है। बिन्दादीन तो इस विशेष गुण में सबसे निराले थे। कथा मशहूर है कि रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ मर्दों का नाच नहीं देखते थे। जब बिन्दादीन रामपुर पहुँचे और नवाब साहब को पता चला कि बिन्दादीन नाम का एक बेजोड़ नाचने वाला आया है जो अपनी कला में अद्वितीय है, तो नवाब साहब

कुछ समय तक तो उदासीन रहे। जब लोगों ने बहुत आग्रह किया कि वह बिन्दादीन का नाच देखें तो वह एक शर्त पर राजी हुए कि बिन्दादीन को केवल दस मिनट का समय दिया जावेगा और उसके बाद दरबार के संगीतज्ञों का गाना-बजाना होगा जिसमें उन्हें असली दिलचस्पी थी। सुना है कि जब बिन्दादीन नगमें की संगत के साथ दरबार में कृष्ण बन कर आये और बाँसुरी लेकर बड़े अनोखे अन्दाज से खड़े हुए तो दस मिनिट हो जाने पर उन्होंने अपने नृत्य-अभिनय का अंत किया। इस पर नवाब साहब से न रहा गया और वह बेचैन होकर बिन्दादीन से बोले "नाचते रहो। अभी जी नहीं भरा है।" उस समय बिन्दादीन की अवस्था सत्तर वर्ष से अधिक थी। रामपुर के दरबार ने कथक नाच के इस कौतुक को देखा और विन्दादीन को नाच का एक अद्वितीय कलाकार कह कर पुकारा। नवाब साहब स्वयं उस नाच को देख कर हैरत में पड़ गये थे।

बिन्दादीन के जीवन की और बहुत सी घटनायें मशहूर हैं। बेगम भोपाल तो उनके नाच से इतनी खुश हुई थीं कि इनाम में उन्हें बहुत धन दिया और यहाँ तक कि पखावजों और तबलों के अन्दर अशर्फियाँ भर कर उनको ऊपर से बंद कर दिया गया था कि लोगों को पता न चले। यह सच्ची घटना है और कोई मनगढ़न्त किस्सा अथवा कहानी नहीं है। भाव-अभिनय के अतिरिक्त जिस बात का प्रभाव दर्शकों पर सबसे अधिक पड़ता था वह था बिन्दादीन की ताल और लय का चमत्कार। उन्होंने अपने पैर के घुँघरुओं पर ऐसा असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था कि वह लय के अति सूक्ष्म दर्जे भी आसानी से दिखा सकते थे। वास्तव में वह लय और ताल के सम्राट थे और उसकी असंभव बोल-बाँट को भी बड़ी सुगमता से दिखा सकते थे। यह कहना गलत न होगा कि यदि शंभू महाराज के नाच में उनके भाव-अभिनय क़ी थोड़ी-बहुत झलक थी, तो अच्छन महाराज के नाच में बिन्दादीन के ताल–चमत्कार का थोड़ा बहुत सुबूत मिलता था। जिस तरह शंभू महाराज को अपने पिता कालका प्रसाद से मिजाजदारी और रंगीन मिजाजी का वरदान मिला था, उसी तरह अच्छन महाराज को अपने चाचा बिन्दादीन से कथक नाच की घोर तपस्या और उसकी लय विरासत में मिले थे। परन्तु यह भी सच है कि यदि अच्छन महाराज ने बिन्दादीन से शिक्षा पाकर अपने दोनों छोटे भाइयों–लुच्छू और शम्भू–को न बताया होता तो इस घराने के नाच का अंत हो गया होता। अच्छन के भाइयों में शंभू में ही असाधारण प्रतिभा थी। यदि शंभू महाराज पैर का काम न छोड़ देते और मंच पर

नाचते रहते तो उनके घराने में उनसे ज्यादा खूबसूरत कोई और नहीं नाचता। जब उन्होंने बैठ कर भाव बताना ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाया, तो उन्होंने अपने भाव–अभिनय की समस्त कला को भी उसी साँचे में ढाला। परन्तु अज्ञात रूप से उन्होंने यह प्रेरणा अपने चाचा बिन्दादीन से ही पाई थी। किसी घराने की असली प्रतिभा अपने लिए नये–नये मार्ग खोज लेती है। अच्छन महाराज को बिन्दादीन की अनोखी लय मिली और शंभू महाराज को उनका खड़ा होने का अंदाज।

जहाँ तक लुच्छू महाराज (जिन्हें लखनऊ के पुराने निवासी "लुच्चू" के नाम से ही जानते हैं) का संबन्ध है, उन्हें भी अपने बड़े भाई अच्छन महाराज से घराने की पूरी शिक्षा मिली थी। परन्तु बाद में वह लखनऊ के बाहर चले गये थे और उन्होंने अपनी प्रतिभा को बहुमुखी बनाया और प्रयोगवाद के आविष्कारों में संलग्न होगये। फिल्म के नाच की ओर भी उनका ध्यान गया और उस हिसाब से भी उन्होंने बहुत-से नये नाचों की रचना की। बहुत वर्षों के बनवास के बाद अब वह लखनऊ लौट आये हैं और अब वह अपने नाच घराने के नाच की सेवा बड़ी कर्त्तव्य-परायणता की भावना से कर रहे हैं। हमें आशा है कि अच्छन और शम्भू के निधन के पश्चात वह इस घराने के पथ-प्रदर्शक बनेंगे और उसकी घरानेदार कला को जीवित रखने में अपना हाथ बँटायेंगे। किसी अवसर पर कदाचित् हम उनपर भी विस्तार-पूर्वक टिप्पणी करें। अभी तो हम उनके प्रति अपनी सद्‌भावना–प्रकाशन ही कर रहे हैं। हमें आशा है कि इस घरने के- नाच के लिए वह अपने पूरे सामर्थ्य को अर्पित करेंगे।

हम फिर इस बात को दुहरायेंगे कि यदि अच्छन महाराज न होते तो इस घराने के नाच का अंत हो गया होता। यह कुदरत की देन थी कि अच्छन महाराज ने बिन्दादीन के नाच का अपने ढंग से पाठान्तर किया और उसे जीवित रखा। हम अपनी दूसरी पुस्तक "हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न" में उनके नाच का खुलासा वर्णन कर चुके हैं। बात जो ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि बिन्दादीन के नाच की पैतृक सम्पत्ति अच्छन महाराज को ही पहुँची थी। इसलिए हम अच्छन महाराज को ही महाराज बिन्दादीन का सर्वश्रेष्ठ शिष्य मानते हैं। परन्तु अच्छन महाराज के अलावा हम जयपुर के घराने वालों को भी बिन्दादीन का शिष्य मानते हैं। बिन्दादीन के नाच का जो प्रत्यक्ष संघात जयपुर के नाच पर पड़ा, वह जाहिर है। परन्तु यह बताना भी आवश्यक है कि नाच की एक विशेषता में जयपुर घराने का नाच लखनऊ

के नाच से थोड़ा-बहुत अलग हो गया था। जयपुर घराने में प्रबंधों और छन्दों की तकनीक का बाहुल्य था। पिछले पचीस-तीस वर्षों में सुन्दर प्रसाद ही जयपुर घराने के बेजोड़ कलाकार और विद्वान थे। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष देहली के "कथक केन्द्र" ही में कटे। शंभू महाराज की तरह उनका देहान्त भी "कथक केन्द्र" की सेवा करते-करते हुए हुआ। प्रबन्धों और छन्दों का सदुपयोग ही जयपुर घराने की विशेषता है। सुन्दर प्रसाद को जयपुर घराने का विद्वान और अनुभवशील कलाकार मानेंगे। परन्तु शंभू महाराज की तरह वह भी खुद नाचते नहीं थे परन्तु नाच की केवल शिक्षा देते थे। एक विशेष गुण में वह अच्छन महाराज का अनुकरण करते थे और यह था उनका ताल-ज्ञान। अन्तर केवल इतना ही था कि अच्छन महाराज के चित और स्वभाव में लय बस गयी थी और सुन्दर प्रसाद अपनी बुद्धि से ही लय की बोल—बाँट करते थे। अच्छन महाराज की लय में परश्रिम अथवा प्रयास नहीं था। परन्तु सुन्दर प्रसाद अपनी बुद्धि से लय और ताल की बोल—बाँट करते थे। सुन्दर प्रसाद स्वयं इस बात को जानते थे और कहते थे कि अच्छन लय के बादशाह थे और तत्कारों के सम्राट थे। इस पंक्ति के लेखक से उन्होंने कई बार इस बात को बड़े बिनीत भाव से दोहराया। जयपुर घराने में और प्रतिभाशाली कलाकार हुए हैं जिनमें हनुमान प्रसाद, कार्तिक राम और जय-लाल ने बहुत ख्याति पाई थी।

लखनऊ घराने के अन्तिम गुरु और मार्गदर्शक अच्छन महाराज ही थे। जो कुछ कला की बचीखुची पूँजी अब इस घराने में रह गयी है, उसका श्रेय अच्छन महाराज ही को था। हमने अपनी पहली पुस्तक "हमारा आधुनिक संगीत" में लखनऊ घराने के नाच के बारे में अपने कुछ विचार प्रकट किये हैं। उसी संबन्ध में हम यह कहना चाहते हैं कि कथक नाच कोई बंधा-टका नाच नहीं है और उसमें ईजाद अथवा आविष्कार की गुंजाइश भी है। परन्तु शर्त केवल यह है कि जो कुछ नई बातें, नये सुधार अथवा नये आविष्कार इस घरानेदार के नाच में किये जायें वह उसकी मौलिकता तथा प्रामाणिकता का विरोध न करें और उसकी आत्मा पर कुठाराघात न करें। यह सोचना गलत है कि बिन्दादीन तथा उनके पूर्वजों में सृजनात्मक कल्पना नहीं थी अथवा वह एक तरह के रूढ़िवाद के समर्थक थे। अभी तो इस घराने की प्रामाणिक कला का पुनरुद्धार करना रह गया है और उसको पुनरुज्जीवित करना इस घराने का कर्तव्य बन गया है। यदि इस घराने के शिष्य पुनरुद्धार-वृत्ति की भावना से प्रोत्साहित हों तो इस घराने की मर्यादा में चार चाँद

लग जायेंगे। सच तो यह है कि बिन्दादीन की नृत्य–कला की बात न करके अभी तो इस घराने के शिष्यों ने अच्छन के ताल-चमत्कार को भी पूरी तरह से नहीं घंगाला है। क्या अच्छन महाराज के प्रतिभासंपन्न सुपुत्र बृजमोहन (बिरजू महाराज) और सितारा देवी इस बात का दावा कर सकते हैं कि उन्हें अच्छन का ताल-ज्ञान है ? लुच्छू महाराज भी ऐसा दावा करने को तैयार न होंगे। इस घराने के नाच की समीक्षा करना अथवा उसका पुनरावलोकन करना तो और बात है और उसको हम सुसंगत मान सकते हैं। परन्तु घराने के वह सदस्य जो पुनरीक्षणवादी बन कर इस नाच का पुनरीक्षण अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा के सहारे करना चाहते हैं वह प्रयोगवाद की आड़ में ही यह सब करना चाहते और अपने मनमाने आविष्कारों का अनुमोदन चाहते हैं। जहाँ तक यह आविष्कार कथक की प्रामाणिक कला से पूर्ण रूप से संबन्धित हैं, उनको पूरी मान्यता गुणी-जन-समाज की ओर से मिलेगी। बिन्दादीन और अच्छन के नाच में ऐसे आविष्कारों के लिए पूरी गुंजाइश ही नहीं थी परन्तु अनोखी प्रेरणा भी थी। हम कथक नाच में नये-नये आविष्कारों और नई-नई सूझों का स्वागत करते हैं परन्तु इन आविष्कारों को किसी कीमत पर भी कथक नाच के मूल अथवा सैद्धान्तिक आधार का विरोध नहीं करना चाहिए और न उसमें नृत्य की और शैलियों की अस्वाभाविक मिलावट होना चाहिए।

इस घराने की नृत्य-कला का वर्णन करते समय हमें तरुण कलाकारों को सचेत करना है कि वह सावधान रहें और अपने को दो खतरों से बचा कर रखें। कथक नाच के सामने दो ही बड़े खतरे हैं। पहला खतरा तो यह है कि आज बहुत-से अशिक्षित और बाजारू ढंग के शिक्षक कथक नाच की शिक्षा देते हैं और उसका केवल रोजगार करते हैं। यह वह लोग हैं जो, इधर-उधर से थोड़ी-बहुत अधूरी शिक्षा पाकर अपने को किसी नामी विद्वान का शिष्य बताते हैं कि जनता को उन पर विश्वास हो जाता है। बड़े-बड़े बाल, लंबा कुर्ता और धोती अथवा पायजामा, माथे पर चंदन, पान से रँगा हुआ मुँह, चेहरे पर बनावटी मुस्कान अथवा बेबाक हँसी, बातचीत में झूठा गाम्भीर्य और विद्वत्ता का नाटकीय ढोंग, और दूसरे शिक्षकों और कलाकारों की तीव्र आलोचना, बेमौके परनों और टुकड़ों के पढ़ने की आदत, किसी गुरु का नाम लेकर अपना कान छूना, किसी विद्वान के समीप पहुँच कर उसके पैर छूना, खुद कभी न नाचना और केवल अपने शिष्यों अथवा शिष्याओं को नचाना, डींग और शेखी मारना और अपनी ही प्रशंसा करना, अशिष्ट

आचरण, कला की अपना रोजगार बनाना और अपने शिष्यों को पथ–भ्रष्ट करना–यह सब ऐसे बहुत-से शिक्षकों की विशेषतायें होती हैं। अपने को इस घराने का शिष्य बता कर यह अशिक्षित वर्ग कथक नाच का धंधा करता है और उसकी कला का मिथ्या निरूपण और विकृतीकरण भी करता है। कथक नाच के मननशील विद्यार्थियों को इनसे सावधान रहना चाहिए और इनके पाश में नहीं फँसना चाहिए।

दूसरा खतरा इससे भी अधिक खतरनाक है। जब इस नाच के विशेषज्ञ अथवा मर्मज्ञ नये-नये आविष्कार करने लगते हैं और अपनी खोजबीन को प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न करते हैं तो कभी-कभी बस उसके सहज चरित्र पर प्रतिकूल प्रवृत्तियों की ठूँस-ठाँस करते हैं और उसे अनोखा और अस्वाभाविक बनाते हैं। हम ऐसे मनमाने आविष्कारों को कथक नाच का दूसरा बड़ा खतरा मानते हैं। कथक नाच के वह विद्वान अथवा कलाकार जो आविष्कारों को अपना लक्ष्य बनाते हैं घरानेदार शैली के प्रति अक्सर उदासीन रहते हैं अथवा उसकी उपेक्षा भी करते हैं। कला के आधुनिक विचारों और मतों का सहारा लेकर वह इस नाच का नया निर्माण करना चाहते हैं और उसमें नया जीवन संचारित करना चाहते हैं और आधुनिक प्रयोगवाद की प्रशंसा में घण्टों बकवास कर सकते हैं और उसे विद्या और ज्ञान की चर्चा कह कर ही पुकार सकते हैं। शिक्षित समाज के संपर्क में आकर ऐसे बनावटी विद्वान अंग्रेजी भाषा के दो-चार शब्दों की जानकारी भी प्राप्त कर लेते हैं और बात-बात पर उनका प्रयोग करते हैं। विद्वत्ता और आविष्कार के ऐसे ढोंग से इस घराने के नाच का कुछ भला न होगा। जो लोग केवल ऐसी मनमानी खोज–बीन में लगे रहते हैं, वह इस नाच के अनुशासन का विरोध करते हैं और विद्रोह और अराजकता के नारे बुलन्द करते हैं। प्रगति और उन्नति के नाम पर वह कथक नाच की प्रयोगशाला में नये-नये आविष्कारों का निर्माण करते हैं जिनका इस नाच की विचारधारा से कोई विशेष संबन्ध नहीं होता। जो इस कला से अनभिज्ञ होते हैं और इसकी परम्परागत शैली में पारंगत नहीं होते, वह लोग ही अधिकतर ऐसे आविष्कारों में जुटे रहते हैं और अपनी खोज–बीन को समर्थ बनाने का पूरा प्रयत्न करते रहते हैं।

यदि कोई पूछे कि क्या कथक नाच में नये-नये आविष्कारों की गुंजाइश नहीं है? तो इस प्रश्न के उत्तर में हम यही कहेंगे कि कथक नाच ने अपने दरवाजे और अपनी खिड़कियाँ नहीं बन्द कर दिये हैं कि नये

विचारों और नयी कल्पनाओं की ठण्डी और ताजी हवा उसमें न आ सके। ऐसा नहीं है। कथक नाच में सदैव आविष्कार होते चले आये हैं परन्तु वह सब उसकी प्रामाणिक कला की सीमाओं के अन्दर होते थे और उसके अनुशासन और उसकी कला सम्बन्धित मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा का खण्डन नहीं करते थे। अब जो आविष्कार हो रहे हैं वह उनके विपरीत हैं और वह कथक नाच के वास्तविक चरित्र की उपेक्षा करते हैं। हम ऐसी खोजों और तरकीबों के कायल नहीं हैं। कथक नाच के अनुशासन का और उसके सिद्धान्तों का परित्याग करके जो व्यक्ति अपनी बुद्धि और सूझ-बूझ से ऐसे नये चमत्कारों का आविष्कार करते हैं अथवा विषयवस्तु की अनन्यता पर ही अधिक जोर देते हैं, वह कथक नाच की सच्ची सेवा नहीं करते। कदाचित वह अपनी ख्याति को स्थापित करने का ही आयोजन करते हैं। वह अपने अहम् को सर्वोच्च स्थान देते हैं और उनका चरित्र अहंकेन्द्रित बन जाता है। ऐसी अहंकेन्द्रित भावना और ऐसी अस्मिता इस घरानेदार नाच के लिए घातक और नाशकारी सिद्ध होंगी। इस तरह का अहंवाद अथवा स्वार्थवाद स्वार्थवादी नीति का ही सूचक होता है और इससे इस नाच को कोई प्रेरणा नहीं मिल सकती। यदि नृत्य-कला के अनुशासन का विरोध करके ही यह सब किया जाता है, तो इन आविष्कारों का कोई विशेष मूल्य नहीं है। अच्छन महाराज की कला और उनके व्यक्तित्व ने जिस आदर्श को अपने घराने के सामने रखा था, उसमें कर्तव्य-परायणता और विनय का आभास था। उनका भोलापन और उनकी कर्तव्य-निष्ठा उनके व्यक्तित्व की छाप थी। घराने के सदस्य उसी ऊँचे आदर्श का पालन करके इस नाच की सेवा कर सकते हैं और उसके स्तर को और ऊँचा कर सकते हैं। इस नाच की कला के क्षेत्र में अच्छन महाराज का अथाह ज्ञान और उनकी विनीत भावना दोनों अपने ढंग के निराले थे। यथार्थ में अच्छन इंसान ही नहीं थे, परन्तु कथक नाच की एक प्रतिष्ठित संस्था के समान थे और परम्परागत कला के सुनहरे प्रतीक थे।

कथक नाच की आलोचना करते समय कभी-कभी आलोचक इसे पैरों की ही कसरत बताते हैं और उसके ताल-बिस्तार की ही प्रशंसा करते हैं। किसी हद तक यह आलोचना ठीक है और बहुत-से लोग इसका उत्तर आसानी से नहीं कर सकते। ऐसा दोषारोपण केवल द्वेष की भावना से प्रेरित नहीं होता। इसमें थोड़ा-बहुत सच भी है। परन्तु यह आलोचना उन पर ठीक बैठती है जो सामान्य श्रेणी तथा निम्न श्रेणी के कलाकार होते हैं। कड़ुवा सच तो यह है कि ऐसे अयोग्य कलाकारों की सख्या बहुत अधिक है और

आम जनता इन्हीं को कला की कसौटी बना लेती है। परन्तु ऐसी तीव्र आलोचना सितारा देवी बिरजू महाराज (अच्छन महाराज के सुपुत्र बृज-मोहन) ऐसे प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों पर लागू नहीं होती। नृत्य की भिन्न-भिन्न शैलियों के विशेषज्ञ और विद्वान जब कथक नाच की ऐसी आलोचना करते हैं तो वह उसकी दुखती रग को पकड़ लेते हैं। उसका कारण केवल यह है कि वह अधिकतर सामान्य श्रेणियों के कलाकारों के नृत्य-अभिनय को ही मन्च पर देखते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि कथक नाच घुँघरू और तबले की एक तकरार है और पैरों की वर्जिश है। भरत नाट्यम, (कथाकली और मनीपुरी) ऐसी सम्मानित शैलियों के नीरस और उटपटांग अभिनय को देख-कर भी उत्तर भारत के लोगों को ऐसा ही लगता है। ऐसी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक और तर्कसंगत है। यह एक तरह की चेतावनी है कि लोग सावधान हो जायँ और कथक नाच को घुँघुरुओं की ही वर्जिश न बनायें तथा उसे कोई शारीरिक व्यायाम न समझें।

परन्तु इस तरह की आलोचना के प्रति इस घराने के विद्वान तथा अनुभवशील कलाकार उदासीन अथवा तटस्थ नहीं रह सकते। यह तो एक तरह की चुनौती है। जिसको वह टाल नहीं सकते और न उसका तिरस्कार कर सकते हैं। उनका कर्तव्य है कि वह इस चुनौती का सामना करें और अपने नृत्य-अभिनय से उसे झूठा साबित करें। यह जभी हो सकता है जब कथक नाच की अधूरी और अव्यवस्थित शिक्षा पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया जाये और ऐसे अयोग्य और अधकच्चे शिष्य न बनाये जायें। जब वह कथक नाच की प्रचलित शिक्षा-पद्धति पर नियन्त्रण लगायेंगे तब इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। इस सम्बन्ध में इस घराने के सुयोग्य कलाकारों और शिक्षकों का भी बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। जहाँ कहीं कथक-केन्द्रों को स्थापित किया गया है वहाँ के निदेशकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वह इस महान् कार्य में अपना हाथ बटायें। जब तक ऐसा नहीं होता इस घराने का भविष्य अनिश्चित रहेगा। अव्यवस्था और अराजकता के इस युग में जब संगीत के क्षेत्र में एक तरह का निरंकुश शासन है और प्रयोगवाद का आधिपत्य है तो कथक नाच की मर्यादा को सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। कथक़ नाच को पुनर्जीवित करना और उसकी सही व्याख्या करना यह इस घराने के प्रमुख सदस्यों और शिष्यों का पुनीत धर्म है और उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

आज जब ख्याल और ध्रुपद ऐसी प्रतिष्ठित शैलियों में भी क्रान्तिकारी

परिवर्तन हो रहे हैं और अराजकता का राज्य है तो यह अचम्भे की बात नहीं है कि कथक नाच भी अपने संकट काल के बीच में से गुजर रहा है और इस क्रान्तिक अवस्था में उसे बहुत सावधान रहना चाहिए। आधुनिक प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आज उसको चुनौती दे रहे हैं। यदि यह घराना भी इन वादों और मतों का शिकार बन जायेगा और कला के आधुनिक विचारों का गुलाम बन जायेगा, तो इसका भविष्य अगम्य और अज्ञात होगा और परम्परा फिर इसकी पथ-प्रदर्शक नहीं बन सकती। अभी भी यह घराना जिन्दा है और घराने की सारी विशेषतायें इसको सुशोभित करती हैं। ठाकुर प्रसाद-बिन्दादीन अच्छन-लुच्छू और शम्भू-बिरजू और सितारा देवी-यह इस घराने की सामान्य वंशावली है। इनके बाद आने वाले शिष्य इस घराने की अगली पीढ़ी माने जायेंगे। ऐसे प्रतिष्ठित घराने का अंत कभी नहीं हो सकता यदि उसकी परम्परा शैली जीवित रहेगी और उसमें तरह-तरह के अनायास परिवर्तन किये जायेंगे।

कथक नाच की घरानेदार शिक्षा जभी जीवित रह सकती है जब उसकी पद्धति का भी पालन किया जाये। शिक्षा को सफल और सार्थक बनाने के लिए उसको व्यवस्थित बनाना और उसकी कड़ी जाँच करना—दोनों अनिवार्य हैं। इस अनुशासन का बहिष्कार किसी कीमत पर नहीं किया जा सकता। परम्परा की उपेक्षा करना भी इस नाच के लिए घातक साबित होगा। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर ही हम इस नाच का पुनरुत्थान कर सकते हैं और इसके दोषों को दूर करके इसे हर तरह से निर्दोष बना सकते हैं। इस कला की उन्नति इसकी परम्परागत शैली की उत्तम व्याख्या करके ही हो सकती है। इस नाच के चरित्र को बिना बिगाड़े हुए जो कुछ प्रयत्न इसकी उन्नति के लिए किये जायेंगे उन सबको विद्वानों और गुणियों से मान्यता मिलेगी। सृजनात्मक कल्पना से प्रेरित आविष्कारों को भी अनुमोदन देना उपयुक्त है। परन्तु इसके साथ-साथ मनमाने और अस्वाभाविक आविष्कारों का विरोध करना भी परम आवश्यक है।

कोई भी घराना हो उसको हम प्रामाणिक इसी शर्त पर मान सकते हैं कि उसके घराने की मुख्य विशेषतायें उसमें विद्यमान हों। जो कुछ व्याख्या हमने घरानों की पहले अध्याय में की है उसी को ध्यान में रखकर हम लखनऊ के कथक घराने की समीक्षा कर रहे हैं। हम प्रयोगवाद का विरोध नहीं करते और न उस पर कोई प्रतिबन्ध लगाते हैं। हम केवल उसकी अव्यवस्था अथवा अराजकता का विरोध करते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत की आधुनिक

परिस्थितियों और उसकी प्रबल प्रवृत्तियों को देखकर ही हम यह सब कह रहे हैं। हम अपनी शुभ कामनाओं को इस घराने के प्रति प्रकाशित करते हैं। परन्तु इसके साथ-साथ हम उन खतरों की भी चर्चा करते हैं जो उसके सामने मौजूद हैं। उनसे बचकर और उन पर विजय पाकर ही यह घराना अपने नाच को जीवित रख सकता है और उन्नति कर सकता है। उसकी परम्परागत शैली का मिथ्यानिरूपण करके अथवा उसका मनमाना अनुवाद करके यह घराना अपनी मर्यादा का प्रतिवाद तथा समर्थन नहीं कर सकता। यह बात जयपुर घराने पर भी लागू है। नाच के शिक्षकों और उसके प्रचारकों को भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह भी अपने कर्तव्य का पालन करें।

परन्तु कथक नाच से सम्बन्धित एक और वर्ग है जो घरानेदार शैली को नहीं मानता और न उसके परम्परागत अनुशासन को मानता है। हम इस विशेष वर्ग से आग्रह नहीं कर सकते कि वह ऐसा न करें। हम उससे केवल यह निवेदन कर सकते हैं कि वह भी इस काम में अपना हाथ बँटायें। विद्रोह को हम सहयोग में परिणत नहीं कर सकते। परन्तु फिर भी हम यह आशा कर सकते हैं कि ऐसे बागी लोग भी इस बात पर विचार करके अपना मत बदल सकते हैं और अपनी सद्भावना प्रकाशित कर सकते हैं। हम आशावादियों को यही विचार अपने मन में रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त तरुण वर्ग के बहुत-से लोग भी कथक नाच को सीखते हैं और उसका अभ्यास करते हैं। उनके शिक्षक घरानेदार कलाकार नहीं होते परन्तु सुयोग्य, अनुभवशील शिक्षक ही होते हैं जो परिश्रम से इस नाच को दूसरों तक पहुँचाते हैं। हम ऐसे शिक्षकों के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं कर सकते। वह भी कथक नाच को जीवित रखते हैं और जनता में उसका प्रचार करते हैं। उनसे भी हमें आशा है कि वह इस महान कार्य में अपना हाथ बँटायेंगे।

इन सबके सहयोग से ही कथक नाच की उत्तम व्याख्या हो सकती है। परन्तु इस प्रतिष्ठित घराने को जीवित रखने का एक ही उपाय है। इस घराने के कलाकारों और होनहार तथा प्रतिभाशील शिष्यों का यह धर्म है कि वह सब मिलकर इस कार्य में जुट जायें और अपने-अपने ढंग से इस घरानेदार नाच की सेवा करें और उसे जागृत अवस्था में रखें। जो लोग इस घराने से किसी भी रूप में संबन्धित हैं उन सबका भी उत्तरदायित्व है कि वह इस बोझ को उठाने की हिम्मत रखें और अहम् त्याग करके लोककल्याण की भावना से अपनी कर्तव्य परायणता का प्रमाण दें।

ठाकुर प्रसाद की शिष्य-परम्परा के मार्गदर्शक बिन्दादीन थे और उनको ही अपने पिता से इस कला का एकाधिकार मिला था। बिन्दादीन की शिष्य-परम्परा के उज्ज्वल प्रतीक अच्छन थे और उनको अपने चाचा से इस कला की पैतृक सम्पत्ति मिली थी। अच्छन के दो प्रतिभासम्पन्न शिष्य उनके भाई लुच्छू और शम्भू थे। उनसे और उनके भाइयों से प्रेरणा पाकर बिरजू ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया और अपनी प्रतिभा का पूरा सबूत दिया। अच्छन् लुच्छू और शम्भू की शिष्य-परम्परा के निजी घराने में सितारा देवी ने भी इस घराने की कला की शानदार व्याख्या की और इसकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाये हैं। इन सबके अलावा अब इस घराने के अनेक शिष्यों का भी कर्तव्य है कि वह भी अपने ऋण को चुकाएँ और इस नाच की मर्यादा को सुरक्षित रखें। जब सब मिलकर अपनी यह स्वार्थहीन सेवा करेंगे तो कथक नाच कदाचित् फिर से अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच सकता है। ठाकुर प्रसाद और बिन्दादीन की अदृश्य प्रेरणा ही इस नाच को उन्नति के पथ पर अग्रसर करेगी। अच्छन की आत्मा भी इस घराने के साथ है। "कथक जिन्दाबाद" का नारा अभी-भी हमें दूर-दूर तक सुनाई पड़ता है।

ISBN : 978-93-82175-33-9

मूल्य : ₹ 115=00